सूरज की शीतल छाँव

आचार्य श्री रामलालजी म.सा.

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

सूरज की शीतल छाँव

आचार्य श्री रामलालजी म.सा.

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, 2020 प्रतियाँ 4,000

मूल्य : 100/–

ISBN 978-93-86952-94-3

प्रकाशक :
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत– श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड
गंगाशहर, बीकानेर 334401 (राज.)
दूरभाष : 0151-2270261, 3292177, 0151-2270359
visit us : www.sadhumargi.com

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड
बीकानेर 334003 (राज.)

शीतल छाँव में शांति

रात का अंधियारा खत्म होने के लिए व्यक्ति सूरज के निकलने का इंतजार करता है। सूरज निकलकर अंधियारे को भगा देता है। लोग प्रसन्न होते हैं। वही सूरज आगे बढ़ते हुए जब प्रचण्ड रूप लेता है तो लोग उसकी गरमी से बचाव का रास्ता ढूंढ़ते हैं... छाँव की तलाश करने लगते हैं... शीतलता की ओर भागते हैं...

मंजिल की तलाश में निकला पथिक भी दोपहरी में वृक्ष की छाँव तलाशने लगता है। पथिक ही छाँव नहीं तलाशता। घरों के अंदर बैठे लोग भी गरमी से राहत के उपाय करते हैं। जवान हो या बुजुर्ग... झोंपड़ी में रहने वाला हो या महलों में... सबको राहत चाहिए... यहां तक की नवजात को भी... उसे चाहिए ममता की छाँव...

अलग-अलग लोग... अपने-अपने तरीके... अपनी-अपनी सुविधा... पर मंजिल एक... चाहत एक... छाँव की तलाश... राहत की खोज... प्रत्येक सामान्य व्यक्ति की यही कहानी...

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आदमी अनजान है... अपने आप से अनजान... सत्य के बोध से अनजान... ऐसा होने का कारण व्यक्ति का अज्ञान है... सत्य-असत्य का अज्ञान... हानि-लाभ का अज्ञान... कर्तव्य-अकर्तव्य का अज्ञान...

यदि उसे इन सब का बोध हो जाये, ज्ञान हो जाये तो उसकी परेशानी ही दूर हो जाये। सत्य का बोध उसे गुरु कराते हैं। गुरु के चरणों में ऐसी शीतल छाँव मिलती है जो सभी प्रकार की गरमी को दूर करती है।

आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. इस भूतल पर सूरज के रूप में जनमानस को प्रकाशित कर रहे हैं। सूरज में स्वाभाविक गरमी होती है लेकिन आचार्य श्री प्रकाश के साथ लोगों को छाँव भी प्रदान करते रहते हैं। सूरज और शीतल छाँव एक साथ सुनने में कबीर की उलटबांसी जैसा जरूर लग सकता है पर यह सच है। जोधपुर में सन् 2019 में चातुर्मास काल में

लगातार चार मास तक ऐसी उलटबांसी देखने को मिलती रही, जब आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. ने लोगों को एक साथ प्रकाश और छाँव प्रदान की। उन चार महीनों के कुछ समय की छाँव को हम **सूरज की शीतल छाँव** के नाम से पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

यह छाँव क्रोधाग्नि को दूर कर शांति की शीतलता का अहसास करायेगी... ईर्ष्या से बचायेगी... मोह और राग के लिए आवरण का कार्य करेगी...

यह 'शीतल छाँव' आपको भी मिल सकती है। बस, इसके लिए चाहिए आस्था का भाव। सभी आस्थावान लोग गुरु चरणों में ठंडक महसूस करते हैं... सुरक्षित महसूस करते हैं... गुरु चरणों में अहिंसा का बोध प्राप्त करते हैं...

आप भी आस्थावान बनिए और–

जब ईर्ष्या की आग जलाये तो गुरु चरणों की शीतल छाँव में आइए...

जब कामाग्नि भड़के तो गुरु वाणी से निकले शीतल फुहारों का सहारा लीजिए...

जब क्रोध अपने पाश में लेने को व्याकुल हो तो इस शीतल छाँव में आइए...

जब मोह सताये तो गुरु चरणों की शीतल छाँव में बैठिए...

सूरज की शीतल छाँव 2019 के चातुर्मास के प्रवचनों के पुस्तकों की शृंखला की पांचवीं पुस्तक है। पूर्व की भांति इसके प्रकाशन में भी गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्य श्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्य श्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहो भाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हे चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**सूरज की शीतल छाँव**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

अर्थ सहयोगी

अशोक कुमार, विजय कुमार, आदेश कुमार लोढा
मदुरांतकम

॥ सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें॥

अनुक्रमणिका

1.	सुख देता दुःख	7
2.	अचूक दवा	20
3.	जी रहे हो या जान भी रहे हो	30
4.	खाल सिंह की, है सियाल	38
5.	प्रज्ञा से धर्म समीक्षा	51
6.	राख हो जाने की साधना	66
7.	दो शक्तियों का मेल	77
8.	कागज काला स्याही सफेद	90
9.	'स' को समझें-साधें	105
10.	अपना दर्पण देख	113
11.	हंसा तो मोती चुगे	127
12.	सिद्धि का द्वार साधुता	141
13.	जैसा खाए अन्न	147
14.	सही दिशा में लगे ये तन-मन	164

1

सुख देता दुःख

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे...

रास्ता जिधर है, उधर व्यक्ति बढ़ता नहीं है और जिधर रास्ता नहीं है, उस दिशा में आगे बढ़ता रहता है। शांति की चाह व्यक्ति दर्शाता रहता है। यदि पूछेंगे तो बताएगा कि मुझे शांति चाहिए पर वह शांति की राह पर चलता नहीं है। प्रिय मार्ग शांति का है किंतु अशांति का मार्ग पूर्व परिचित है, जन्मों-जन्मों से परिचित है, इसलिए वह उसी मार्ग पर चलता है। उसी मार्ग पर चलता रहेगा तो वह शांति नहीं पा सकेगा। उसको शांति नहीं मिलेगी।

कौन-सा मार्ग शांति का है और कौन-सा मार्ग अशांति का है?

आशा, अभिलाषा, तृष्णा हमें अशांति की ओर ले जाने वाली होती है और व्यक्ति न आशा छोड़ पाता है न अभिलाषा। वह अनेक प्रकार की 'इच्छाएं' अपने भीतर संजोता रहता है। वे इच्छाएं ही उसके दुःख का कारण होती हैं। वे इच्छाएं उसके अशांति का कारण होती हैं। अनेक बार व्यक्ति ने अनुभव किया है और वह जान रहा है कि इससे मुझे शांति मिली नहीं। चक्रवर्ती सम्राट छः खण्ड के राज्य को प्राप्त करके, पर्याप्त धन-वैभव को प्राप्त करके, इतना ही नहीं देवकृत नव-निधियां प्राप्त करने के बाद भी शांति को प्राप्त नहीं कर पाये।

फिर भी आज हमारा रुझान धन की तरफ होता है। आज भी हमारा रुझान मान-सम्मान की ओर होता है। मेरी प्रशंसा मुझे बड़ी प्रिय लगती है। मुझे कोई आदर देता है, सम्मान देता है तो मेरा मन बाग-बाग हो जाता है। मेरे दिल की कली-कली खिल जाती है। पर विचार कीजिए! यह मान-सम्मान, प्रशंसा क्या शांति देने वाली है? हमें लगता है कि इसकी तासीर ठंडी है। बर्फ की डली मुंह में रखने पर, हाथ में रखने पर बड़ी ठंडी लगती है

किंतु वैज्ञानिक लोग मानते हैं कि उसकी तासीर गर्म है। उसका परिणाम गर्म होता है। वैसे ही मान-सम्मान और प्रशंसा जब कानों से सुनी जाती है तो बड़ी ठंडी लगती है, सुहावनी लगती है किंतु हकीकत में यह मान-सम्मान और प्रशंसा की चाह हमें शांति देने वाली नहीं है। यह हमें अशांत बनाएगी और हम अशांति के झूले में झूलेंगे। ऐसा सुख दुःख ही पैदा करेगा।

भगवान महावीर कहते हैं कि मान और सम्मान को पीठ पीछे रखकर चलो। उसकी आकांक्षा मत करो। उसके पीछे दौड़ो मत। जैसे व्यक्ति छाया को पकड़ने के लिए दौड़ता है लेकिन छाया उसके हाथ में नहीं आती है, वैसे ही मान-सम्मान, प्रशंसा की चाह के पीछे दौड़ने वाला शांति को प्राप्त नहीं कर पाएगा। जहां तक मैं विचार करता हूं, हर व्यक्ति के मन में यह चाह होती है कि मेरे विषय में दो प्रशंसात्मक शब्द कहे जाएं। मेरा मान हो। मेरा सम्मान हो। दुनिया मुझे आदर दे। हम आदर के योग्य हैं या नहीं हैं? किसी ने झूठा मान-सम्मान, आदर दे दिया तो भी हम फूले नहीं समाते हैं। हमें लगता है कि मैं बहुत-ही आदरणीय हो गया। लोग मुझे आदर दे रहे हैं।

लोगों के आदर देने से क्या मेरा कल्याण हो जाएगा? यदि कोई कहे कि तू सिद्ध हो गया, तू अरिहंत बन गया तो क्या किसी के कहने से मैं अरिहन्त या सिद्ध हो जाऊंगा? कोई कहेगा कि तू अरबपति है, तुम्हारे पास करोड़ों-अरबों की संपत्ति है, तो किसी के कहने से मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि मेरे पास अरबों की संपत्ति है। यदि मेरे पास अरबों की संपत्ति है तो मैं विश्वास करूंगा कि मेरे पास अरबों की संपत्ति है। यदि मेरे पास वह धन नहीं है, वैभव नहीं है तो मैं विश्वास नहीं करूंगा। चक्रवर्ती के पैरों के निशान देखकर रेखाओं के विज्ञाता एक ज्योतिषी ने सोचा कि इधर से कोई चक्रवर्ती सम्राट निकला है। वह बड़ी तमन्ना और आशा लेकर आगे बढ़ा कि उनको मैं आशीर्वाद दूंगा तो मुझे बहुत धन मिलेगा। सम्राट को आशीर्वाद किसलिए देंगे? ब्राह्मण सम्राट को आशीर्वाद किसलिए देता है? इसलिए देता है कि दक्षिणा मिलेगी, पैसा मिलेगा, धन मिलेगा। जब वह आगे पहुंचा तो ब्रह्मदत्त को असहाय हालत में देखा। न कोई लिवाजमा, न कोई राजसी ठाठ-बाट। एकदम एकाकी। देखा कि कुछ भी उसके पास नहीं है। वह सोचने लगा कि क्या मेरे ग्रंथ झूठे हैं? क्या मेरा ज्ञान, मेरी विद्या झूठी है? व्यर्थ में मैंने इतना अध्ययन किया। आज मुझे लगता है कि ये विद्याएं निकम्मी हैं। किसी काम की नहीं हैं।

उसको दुविधा में पड़ा देख ब्रह्मदत्त कहता है, ब्राह्मण देवता क्या बात है? तुम विचारमग्न क्यों हो गए? बड़े उत्सुक भाव से आ रहे थे, बड़ी खुशी से आगे बढ़ रहे थे। क्या कारण है कि तुम एकदम उद्विग्न हो गए? तुम्हारा चेहरा मलिन हो गया। ब्रह्मदत्त अभी चक्रवर्ती सम्राट नहीं बना था। ब्रह्मदत्त से उसने कहा कि भाई, आज मुझे भयंकर निराशा हो रही है कि मैंने अपनी जिंदगी का बहुत सारा समय जिस विद्या के लिए लगाया, वह विद्या झूठी है। वह सही नहीं है। ब्रह्मदत्त ने कहा कि तुम कैसे यह निर्णय कर रहे हो कि तुम्हारी विद्या झूठी है? उसने कहा– मैंने यहां पर चरणों के निशान देखे और उसमें रही हुई रेखा को देखकर मैं अपनी विद्या के बल पर यह निर्णय कर पाया कि आगे जाने वाला कोई चक्रवर्ती सम्राट होगा किंतु यहां आने पर तुम्हारे जैसे दीन-हीन व्यक्ति को देख रहा हूं। इसलिए मुझे लगता है कि मेरी विद्या व्यर्थ है। ब्रह्मदत्त कहते हैं कि ब्राह्मण देवता तुम्हें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा ज्ञान झूठा नहीं है। तुम्हारी विद्या व्यर्थ नहीं है। तुम्हारी विद्या सही है। तुमने यदि किसी चक्रवर्ती सम्राट के पैरों के निशान देखे हैं तो वे गलत नहीं हैं। जब मैं चक्रवर्ती बनूं तब तुम मेरे पास आना। उस समय तुम्हें उपकृत किया जाएगा।

ब्राह्मण विचार करने लगा कि मैंने तो जल्दी निर्णय कर लिया कि मेरी विद्या गलत है। कहने का आशय है कि चाहे कितना भी वैभव आदमी को मिल जाए और कितना भी विज्ञान कर ले किंतु उसकी फलश्रुति समय पर होती है। एक समय आया जब ब्रह्मदत्त, चक्रवर्ती बन गया फिर उस ब्राह्मण के आने पर उसको बहुत बख्शीश दी गई। पर बताइए, क्या वह धन-दौलत, वह मान-सम्मान उसके जीवन को शांति देने वाला बनेगा? थोड़ी देर के लिए हमें अच्छा महसूस होता है। थोड़ी देर के लिए हमें प्रसन्नता होती है। कानों में प्रशंसा और मान-सम्मान के शब्द मुझे प्रिय लगते हैं, मधुर लगते हैं। वहीं पर यदि किसी ने दो गालियां दे दी, चांटा दिखा दिया तो उस समय हमारी हालत क्या होगी? उसके चांटा दिखाने से मेरा क्या बिगड़ गया और उसने मुझे अरबपति कह दिया तो मुझे कहां धन मिल गया? किसी के कहने से न मैं धनी हो गया और न किसी के कहने से मैं निर्धन हो गया।

जो दूसरों के शब्दों के आधार पर चलता है, दूसरों के शब्दों की आकांक्षा करता है, दूसरों के शब्दों की अपेक्षा करता है, वह सुखी कैसे होगा? यदि आगम पृष्ठों का अन्वेषण करें, आगम पृष्ठों का अवलोकन करें,

आगम में आए हुए महापुरुषों का जीवन चरित्र देखें तो हमें उनके भीतर मान-सम्मान की कोई चाह नहीं मिलेगी। सेठ सुदर्शन के लिए हम कहते हैं कि शूली का सिंहासन हो गया। अभया महारानी ने प्रकारांतर से उन्हें अपने राज्य में, अपने महल में बुलवा लिया जहां षड्यंत्र रचा गया। सेठ सुदर्शन पौषध-व्रत में है। महारानी ने जब देखा कि मेरा काम नहीं हो रहा है तो उसने दोषारोपण किया। इल्जाम लगाए। सेठ मौन धारण कर लेता है। वह कोई प्रतिक्रिया नहीं करता है। विचार करेंगे तो स्पष्ट होगा। सच्चाई को स्पष्ट करने की कहां जरूरत होती है?

सच्चाई छुप नहीं सकती बनावट के उसूलों से
खुशबू आ नहीं सकती कागज के फूलों से।

हो सकता है कि आज कागज पर स्प्रे कर दें, सेंट लगा दें तो उसमें सुगंध आ जाए किंतु सच्चाई नहीं छुप सकती। सम्राट ने बहुत प्रयत्न किया किंतु उन्होंने अपने मान-सम्मान की कोई परवाह नहीं की। मेरी कितनी बदनामी हो जाएगी, धर्म की कितनी बदनामी होगी, लोग क्या विचार करेंगे। कोई चिंता की कोई विचार करने की बात नहीं है। यह बताया जाता है कि बार-बार कहने के बाद भी सेठ कोई खुलासा (स्पष्टीकरण) नहीं करता है। यदि सेठ ने उस समय कुछ बोल दिया होता तो सम्राट उस बात को महत्त्व देते किंतु सेठ कुछ नहीं बोला। वह पौषध में था और पौषध का विधान है कि शत्रु पर भी वार नहीं करना।

श्रावक के पहले व्रत में आक्रांता, स्व-शरीर के लिए पीड़ाकारी, ऐसे व्यक्ति, ऐसे अपराधी को दंडित करने का विधान है। किंतु पौषध में अपने शरीर पर पीड़ा देने वाले, आघात पहुंचाने वाले के प्रति भी समभाव रखने की बात होती है। इसलिए सेठ सुदर्शन उन्हीं भावों में रहे। जब उन्हें वध-स्थान पर ले जाया जाने लगा तो लोगों ने उनकी पत्नी से कहा कि मनोरमा आओ, तुम कम से कम पति के अंतिम बार दर्शन तो कर लो। किंतु वह भी उतनी ही निष्ठा रखने वाली है। वह कहती है– मैं लांछित पति का मुंह नहीं देखना चाहती। मुझे पूरा भरोसा है कि मेरे पति ऐसे नहीं हो सकते हैं। यह 'भरोसे की' बात बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आज बाप को बेटे पर भरोसा नहीं होता है। थोड़ा-सा उसके विपरीत कुछ बात कह दो पिता को तो वो डाउट में आ जाएगा। संशय में आ

जाएगा। यदि कोई आकर बोल दे कि आज तुम्हारे बेटे को मैंने होटल में, बार में देखा। शराब के बार में देखा तो बाप सोचेगा होना तो नहीं चाहिए पर जमाना आजकल ऐसा हो गया है कि कुछ नहीं कहा जा सकता। क्या सोचेगा? कितना भरोसा है? कितना भरोसा है? पर मनोरमा यह विश्वास करके चलती है, भरोसा करके चलती है कि मेरे पति ऐसे नहीं हो सकते और लांछित पति का मुंह मैं नहीं देखूंगी। अंतिम बार दर्शन कर लेना कोई महत्त्व की बात नहीं है। सेठ सुदर्शन के मन में किसी प्रकार की कोई ऊहापोह नहीं है। किसी प्रकार का कुछ-भी विचार नहीं है। आनंद में है, अपने आप में ही है।

कहना तो बहुत आसान है। शब्दों से कहने में जोर क्या लगता है? किंतु ऐसे प्रसंग पर हम कैसे रहते हैं? हमारे भीतर क्या घटना घटती है? हमारा भीतर हिलता है या शांत बना रहता है? एक प्रश्न कल ही रात्रि में पूछा गया था कि मन बहुत विचलित हो जाता है, चंचल हो जाता है, उसको स्थिर कैसे करें, उसकी चंचलता को कैसे दूर करें? मैंने बहुत संक्षिप्त जवाब दिया था कि 'नैतिकता, प्रमाणिकता, ईमानदारी, ये तीन चीजें यदि हमारे जीवन में आ जाएं तो मन चंचल नहीं रहेगा।' अन्यथा चाहे कितनी-भी सामायिक कर लें मन स्थिर नहीं होगा। आज मैंने 8 सामायिक कर ली, आज मैंने 9 सामायिक कर ली, मेरी 11 सामायिक हो गई। कितनी हो जाती है? दिन भर में तो बहुत सामायिक हो जाती है। दिन भर करना क्या है? पर मन सामायिक में होता है या नहीं होता है? सामायिक करने पर मन शांत होता है या नहीं होता है? मन में सामायिक उतरी या नहीं उतरी? सेठ सुदर्शन औपचारिक धर्म की आराधना नहीं कर रहा था। केवल दिखावे की मुंहपत्ती और पौषध नहीं कर रहा था कि मुंहपत्ती बांध ली और पौषध कर लिया। इस प्रकार का दिखावा सेठ सुदर्शन नहीं कर रहा था।

आचार्य पूज्य गणेशलाल जी म.सा. के पिता सायब लाल जी पौषध में थे और मालूम पड़ा कि उनकी पुत्री का स्वर्गवास हो गया। कोई हड़कंप नहीं, मन में कोई उद्वेग नहीं। उन्होंने कहा कि संसार है, जन्म-मरण होता रहता है। वे अपने पौषध में रहे। पौषध छोड़कर नहीं गए। आज हम पौषध में नहीं रह पाते हैं। बाहर से पौषध में रह भी गए तो मन उद्विग्न हुए बिना नहीं रहता। मन में उछाला आ जाता है। यही बात है, यही समझने की मूल भित्ति है। सायबलाल जी पौषध में रत रहे। पौषध की पालना करना और कुछ भी नहीं। सेठ सुदर्शन पौषध में स्थिर रहा। मन में कोई ऊहापोह नहीं। क्यों मेरे साथ

ऐसा हो रहा है जबकि मैं निरपराधी हूं। वो बोलते तो निरपराधी सिद्ध भी हो जाते किंतु नहीं बोले। इसी को कहते हैं 'धर्म की दृढ़ता।'

तन जाए तो जाए, मेरा सत्य धर्म न जाए।

शरीर चला जाए तो चला जाए। शरीर तो वैसे ही जाने वाला है। कौन-सा रह जाएगा? लाख उपाय कर लो, चाहे स्वर्ण भस्म खिला दो, चाहे मकरध्वज खिला दो किंतु होगा क्या? आखिर तो एक दिन आएगा, आखिर वो एक दिन आएगा। कौन-सा दिन आएगा? आप बोल रहे हो कि आखिर एक दिन मौत का आएगा। आप बोल रहे हो तो पक्की बात है ना? या कोई डाउट है? है कोई उपाय दूसरा बचाव का? कोई भी बचाव का उपाय नहीं है। बीमारियों की दवाइयां निकली हैं/इजाद हुई हैं। एक जमाने में टी.बी. की बीमारी लाइलाज मानी जाती थी। कैंसर की बीमारी लाइलाज मानी जाती थी किंतु डॉक्टर कहते हैं कि हमने कैंसर को भी मुट्ठी में, हाथ में बंद कर लिया है। टी.बी. की बीमारी का इलाज कर लिया। और भी ढेर सारी गंभीर बीमारियों को उन्होंने अपनी मुट्ठी में कर लिया। काबू में कर लिया। अर्थात् उनके लिए इलाज ढूंढ लिया। बीमारियों के इलाज ढूंढे जा सकते हैं किंतु मौत का इलाज? मौत का इलाज कोई ढूंढ पाया है? मौत का इलाज एक ही है– संलेखना-संथारा। हमारी दृष्टि बदले तो मौत हमारे बाहर-बाहर, आर-पार घूमती रहेगी। हमारी फेरी, प्रदक्षिणा लगाती रहेगी। संलेखना अर्थात् तृप्ति। मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।

सुन ही गए अभी आप गुलाब मुनि जी म.सा. के विषय में। परिवार वालों के प्रति कोई राग नहीं कि परिवार वाले आ जाएं तो उनकी आवाज सुनते ही उनकी आंखें खुल जाएं। वैसे ही शांत। एक दिन परिवार वाले रूम में आ गए तो लिखकर बोला कि मोह नहीं बढ़ाना। मोह को बढ़ाना नहीं। कहना बहुत आसान होता है किंतु हकीकत में जीना मुश्किल है। सेठ सुदर्शन को देखिए। चले गए वध स्थल पर। वहां पूछा गया कि तुम्हारी अंतिम इच्छा क्या है? बस, नवकार मंत्र का स्मरण करना है और क्या चमत्कार हो गया?

शूली का सिंहासन हो गया, शीतल हो गई ज्वाला,
शील जिसने पाला, सच्चा है रखवाला,
फेरो एक माला, हो हो फेरो एक माला।

मेरे ख्याल से 5-6 लाइन से आगे आवाज आई नहीं होगी। 5-6 लाइन आगे वालों की आवाज आई होगी। पीछे वालों ने शायद विचार किया होगा कि अपने को बोलना थोड़ी है। अरे! बोलने से भी रसायन पैदा होता है। उससे भी कर्मों के बंध टूटते हैं। उससे भी कर्मों की निर्जरा होती है। तथारूप श्रमण-महन के नाम-गोत्र श्रवण करने से उत्कृष्ट रसायन आता है तो उससे कर्मों की महान निर्जरा होती है। उनका नाम, गोत्र सुनते हैं। यदि भगवान महावीर का नाम भी सच्चे दिल से सुनते हैं तो वह भी कर्मों की निर्जरा कराने वाला होता है। ऐसे परम पुरुष सेठ सुदर्शन की ऐसी सत्य निष्ठा, ऐसी धर्म निष्ठा कि शरीर जाए तो भले ही जाए। शरीर की कोई ममता नहीं है। शरीर से कोई मोहब्बत नहीं है। **जे ना चाले संगाथे, तेनी ममता शा माटे,** अर्थात् जो साथ में चलने वाला नहीं है, उसकी ममता किसलिए? ऐसे उत्तम पुरुषों के यदि नाम सुनते हैं, उनकी विरुदावली गाते हैं तो कहते हैं कि **कर्मों की क्रोड़ खपावे, उत्कृष्ट रसायन आवे** तो तीर्थंकर गोत्र बांधे।

शूली का सिंहासन हो गया, शीतल हो गई ज्वाला,
शील जिसने पाला, सच्चा है रखवाला,
फेरो एक माला, हो हो फेरो एक माला।

अब सभी लोग गा रहे हैं। पहले किसने मना किया था? बिना मनुहार के मन बनता नहीं है। भूख है फिर भी मनुहार तो चाहिए ही। कहना पड़ेगा कि नहीं, नहीं, पधारो सा, पधारो सा। पधारना पड़ेगा सा, पधारना पड़ेगा सा। सोचें, सेठ सुदर्शन केवल नवकार मंत्र का स्मरण करते हैं। न किसी देव को बुलाते हैं, न किसी भैरूंजी को याद करते हैं। न कोई नाकोड़ा जी को याद करते हैं, न किसी तीर्थंकर देव को बुलाते हैं। ऐसा नहीं कहते हैं कि हे भगवान! अब तो तेरा ही आसरा है। क्या बोलेंगे?

म्हाने अबके बचा लो जिनराज, म्हाने तो थारो आसरो।

हम अपनी भक्ति का अहसान जताएंगे कि मैं तुम्हारा भक्त हूं भगवान। यदि तुम्हारा भक्त इस प्रकार से विपत्ति में आता है और उसकी रक्षा के लिए तुम तैयार नहीं हो, धर्म रक्षा के लिए तैयार नहीं हो तो ऐसे धर्म से क्या मतलब? किंतु धर्म की सच्चाई क्या है? हम लोग धर्म को कहीं से कहीं जोड़ लेते हैं और धर्म से जो नहीं मिलने वाला होता है, उस चीज को मांगते हैं। उस चीज को धर्म से चाहते हैं। धर्म न तो धन देता है, न आयु देता है। ये

तो पुण्य योग से होता है। धर्म तो एक मात्र हमें मान-सम्मान से ऊपर उठाता है। वह हमें आत्म-भावों में रमण कराने वाला होता है। ऐसे धर्म की पहचान जिसको हो जाती है, वह भला क्या दूसरी चीजों की ओर ताकेगा?

'छवि अंतर की देखी जिसने, वह फिर बाहिर क्या देखे'

जिसने भीतर की छवि को देख लिया है, वह बाहर की छवि या दुनिया में दिखने वाली चीजों को क्या देखेगा? अब देखने को कुछ रह ही नहीं जाता है।

सेठ सुदर्शन केवल नवकार मंत्र का स्मरण करता है। इतने में देव का आसन हिल जाता है। देव विचार करते हैं कि क्या हो गया? क्या बात है? देव अपने अवधि ज्ञान में देखते हैं और जैसे ही सेठ सुदर्शन को शूली पर चढ़ाया जाता है तत्काल वहां पर सिंहासन बन गया। क्या बन गया?

शूली का सिंहासन हो गया, शीतल हो गई ज्वाला,
शील जिसने पाला, सच्चा है रखवाला,
फेरो एक माला, हो हो फेरो एक माला

संत एक घर में पहुंचे गोचरी करने के लिए। देखा कि कोई नीचे नजर नहीं आया। आवाज लगाई कि कोई है घर में। ऊपर आरती हो रही थी। आवाज सुनकर उस घर की एक औरत आरती करते-करते नाल तक आ गई। वह हाथ से घंटी बजाती हुई यह देखने के लिए आयी कि कौन आ गया? आरती हो रही है, धूप लगा रही है, दीया कर रही है, एक हाथ से घंटी बजा रही है। गन, गन, गन और गनगनाते हुए, हाथ में ली हुई घंटी को हिलाते हुए नाल तक आ गई सामने। ऐसी माला, ऐसी भक्ति, ऐसी पूजा से क्या प्रयोजन? क्या कर रहे हैं हम? किसको ठग रहे हैं? अपने आपको भी ठग रहे हैं, साथ ही देवता और भगवान को भी ठग रहे हैं।

साथियो! विचार करना, धर्म इतना आसान नहीं है। जब तक मन की भाव धाराएं परिवर्तित नहीं होंगी, तब तक हम केवल औपचारिक रूप से धर्म के किनारे-किनारे घूमते रहेंगे। जैसे कोई मंदिर में जाता है और बाहर-बाहर फेरी लगा लेता है वैसे ही हम बाहर-बाहर परिक्रमा लगाने वाले होंगे। हम उस गर्भ गृह के भीतर उतरने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। इसलिए पहले धर्म के स्वरूप को जानो तो मालूम पड़ेगा कि शांति क्या होती है, समाधि क्या होती है? जान लेने के बाद न मान की आकांक्षा रहेगी और न सम्मान की। न पद की आकांक्षा रहेगी और न ही प्रतिष्ठा की।

सेठ सुदर्शन को प्रतिष्ठा का भय नहीं लगा कि मेरी इज्जत, मेरी प्रतिष्ठा के तो कांकरें हो जाएंगे। 'सांच को कभी आंच नहीं'। सांच को आंच नहीं होती है। क्या है इतना भरोसा? कितना है भरोसा? पीछे से कुछ लोग बोल रहे हैं। क्या बोल रहे हो, समझ नहीं आ रहा है। कुछ लोग बोल रहे हैं कि पूरा भरोसा है। पक्की बात? कभी परीक्षा होगी तो मालूम पड़ेगा।

'धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी, आपद काल परिखिअहिं चारी'।

तुम धर्म में कितने गहरे उतरे हुए हो, यह तो विपत्ति के क्षण आने पर मालूम पड़ता है। तब मालूम पड़ता है कि वह धर्म में कितना गहरा उतरा हुआ है? भरोसा होगा, बढ़िया है। यदि हमारी नींव बहुत गहरी है तो बहुत अच्छी बात है। नहीं तो कभी देखना कि मैंने धर्म के जो महल बनाए हैं, वे बिना नींव के तो नहीं हैं? आज कल मोबाइल घर बनते हैं। यहां से लिए और वहां ले जाकर रख दिए। वहां से उठाकर कहीं और रख दिया। उनको एक-दूसरे के साथ जोड़ दिया और घर बना लिया। उसमें नींव की आवश्यकता नहीं होती। वैसे ही हमारा धर्म, हमारी धर्म क्रियाएं, हमारी धर्म आराधना सचमुच में नींव वाली है या बिना नींव वाली है? यदि बिना नींव की होगी तो देख लो, उसका क्या असर होने वाला है?

सेठ सुदर्शन की धर्म आराधना नींव वाली थी। कितनी भी विपत्ति आ गई, मृत्यु का क्षण आ गया, प्रतिष्ठा का भय आ गया किंतु किसी से किसी प्रकार का कोई भय नहीं है। न प्रतिष्ठा का भय, न मृत्यु का भय। ऐसी जय, ऐसी जीत उनकी होती है जो धर्म में रमे हुए होते हैं। उनको मृत्यु का भय नहीं होता है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' जिसके द्वारा धर्म की रक्षा की जाती है, धर्म स्वतः उसकी रक्षा करने वाला बन जाता है। हम धर्म की रक्षा करने के लिए तैयार नहीं हैं। सौगन, पच्चक्खाण ले लेते हैं लेकिन उसमें क्या-क्या खुला रख दिया। ये आगार, ये आगार, ये खुला, वो खुला। सारे आगार ही हो गए फिर पच्चक्खाण क्या हुआ? दृढ़ता से हमें पच्चक्खाण का पालन करना चाहिए। प्रतिज्ञा का पालन दृढ़ता से करना चाहिए। चाहे कैसी भी कठिनाई आ जाए। एक बार जैसे मौत भी आ गई तो घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि मौत तो एक दिन आएगी ही।

मौत एक दिन आएगी या नहीं आएगी? बुलाओगे तो आएगी या बिना बुलाए आ जाएगी? बुलाना पड़ेगा क्या? मनुहार करना पड़ेगा क्या? न्यौता

देना पड़ेगा क्या? नहीं, तो फिर हम धर्म ध्यान में क्यों न्यौते की आवश्यकता रखते हैं कि धर्म ध्यान के लिए कोई न्यौता देगा। तपस्या करने के लिए कोई न्यौता देगा। संवर करने के लिए कोई न्यौता देगा। क्यों मदन मुनिजी को रोज-रोज कहना पड़ेगा कि 'संवर, संवर।' क्या मिलेगा इनको?

हमें क्यों आमंत्रण देना पड़े? मेरे ख्याल से ये इतनी प्रेरणा नहीं करते तो नीति की बात बताओ, जोधपुर वाले कितने संवर करने वाले होते? चार-पांच होते करने वाले। वे तो हमेशा ही करते हैं लेकिन बाकी के लोग? आप कह रहे हो कि गिनती के होते, तो अभी कौन-से बिना गिनती के हो रहे हैं? अभी तक जो हो रहे हैं, संवत्सरी से हो रहे हैं वे गिनती के ही हो रहे हैं। वे सारे गिनती के ही हैं। जब हम स्वयं ही गिनती के हैं तो गिनती के ही संवर होंगे। किंतु चाहे गिनती के हों चाहे कैसे भी हों, खाने के लिए भी हमको मनुहार करो और धर्म ध्यान के लिए भी मनुहार करनी पड़े, ऐसी अपेक्षा, ऐसी आकांक्षा हमारे मन में नहीं रहनी चाहिए।

धर्म हमारा प्राण है। धर्म हमारा जीवन है। धर्म रहेगा तो जीवन रहेगा। धर्म प्राण है। प्राण है तो हमारा जीवन टिकेगा। ऐसी भावना से यदि हम चलते हैं और बिना किसी के कहे हमको अपना धर्म करना है, तो करना है। खाने के लिए खाना रोज चाहिए। रोटी रोज चाहिए। भोजन रोज चाहिए और धर्म करने के लिए कहेंगे कि नहीं, नहीं बापजी, रोज-रोज तो नहीं होती है सामायिक। अच्छा ये बताओ कि कितना समय व्यर्थ में जाता है? या नहीं जाता है? फिर हम क्या करते हैं?

ग्रेटा, पर्यावरण प्रदूषण के खिलाफ आवाज उठाने वाली स्वीडन की लड़की है। उसने पर्यावरण आंदोलन के लिए अपनी पढ़ाई छोड़ दी। कहा कि मैं पढ़ाई नहीं करती। मुझे पर्यावरण को बचाना है। लोगों की जिंदगी बचानी है। उसने लोगों को बताया कि हम पर्यावरण की सारी हानि को ठीक नहीं बना पाएंगे किंतु श्वास ले सकें– वैसी हवा, वैसा पर्यावरण तो बना ही सकते हैं। उसने अनेक देशों के राजनेताओं को अपना संदेश दिया। उस लड़की ने अकेले कार्य प्रारंभ किया और आज अनेक देशों के हजारों बच्चे उसके साथ पर्यावरण की रक्षा के लिए तैयार हो गए। ग्रेटा कहती है कि पर्यावरण प्रदूषण के कारण पूरे विश्व में एक वर्ष में लगभग 70 लाख मौतें हो जाती हैं। कितनी? 70 लाख मौतें। 70 लाख लोग प्रदूषण के कारण से मरते हैं। इसमें एशिया की गिनती आई है 40 लाख लोगों के मरने की। केवल एशिया

में मरने वाले कितने हैं? कितने लोग? चालीस लाख लोग। किससे मरने वाले हैं? पर्यावरण प्रदूषण से। हवा भी शुद्ध नहीं है। शुद्ध हवा नहीं। शुद्ध खाना नहीं। शुद्ध रहना नहीं। कोई भी चीज शुद्ध नहीं है। अब हम कहेंगे कि जब सारी चीजें शुद्ध नहीं हैं तो धर्म कैसे शुद्ध हो? फिर क्या करें कि धर्म शुद्ध हो जाए? ध्यान रहे, धर्म हमारा है, हवा बाहर की है। बाहर की चीजें प्रदूषित हो सकती हैं। हम उसको रोक नहीं सकते लेकिन हम अपने धर्म को, अपने विचारों को क्यों प्रदूषित करें? जिस पर हमारा अधिकार है उसे तो हम प्रदूषित नहीं करें। ग्रेटा कहती है कि 40 लाख लोग एशिया में मरते हैं।

सोचें! इतने लोग मरते हैं। कौन किसके वियोग से दुःखी हो रहा है? किसको किसके वियोग से दुःख है? दुःख होगा, किंतु किसे? यदि हमने किसी व्यक्ति से मन से अटेचमेंट कर लिया है तो दुःख होगा। जिसके साथ हमारा कोई अटेचमेंट नहीं है, वह मर गया, पीड़ित हो गया, दुःखी हो गया, रोगी हो गया, हॉस्पीटलाइज हो गया, उसका एक्सीडेंट हो गया तो हमको क्या दुःख होता है? रोज खबरों में देखते हो कि वो मरा, वो मरा। उसने ऐसा किया। उसका ऐसे एक्सीडेंट हो गया। यह सब सुनकर, देखकर कितनी पीड़ा होती है? कितना दुःख होता है मन में? नहीं होता है। किंतु जिसके साथ हमारा अटेचमेंट हो गया, जिसके साथ हमने जुड़ाव कर लिया, उसके साथ कुछ भी घटना घटती है तो मन में पीड़ा होती है। ये पीड़ा मानसिक है। काल्पनिक है। हमने कल्पना में जिसके साथ अपना संबंध जोड़ लिया, उसके नहीं रहने से हमको पीड़ा होती है। यह काल्पनिक-कल्पनाजन्य नहीं तो और क्या है?

एक बात पर जरूर ध्यान दें। हठ-आग्रह धर्म नहीं है। हठ-आग्रह नासमझी का परिणाम है। धर्म दृढ़ता देता है जो समझ से पैदा होती है। एक ब्राह्मण का बेटा पढ़ाई-लिखाई नहीं करता था। उसकी माता उसको कई बार बोलती कि बेटा, ब्राह्मण का तो अध्ययन ही मुख्य आधार होता है। वह यदि पढ़ेगा नहीं तो ब्राह्मण कैसे होगा? एक बार माता ने कहा कि देखो हरिश्चंद्र ने कैसे टेक निभाई? श्री राम ने कैसे टेक निभाई? अमुक ने कैसे टेक निभाई?

यह सुनकर उसने पूछा कि माता तुम क्या चाहती हो? माता ने कहा, मैं चाहती हूं कि तुम भी पढ़ाई करो। उसने कहा कि मां, मैं जाता हूं और अब पढ़कर ही लौटूंगा। वह निकला घर से और निकल गया राह पर। उसकी मां ने

कहा था कि हरिश्चंद्र ने टेक निभाई, रामचंद्र ने टेक निभाई, सब ने अपनी-अपनी टेक निभाई। तुमको भी अपनी टेक निभानी चाहिए।

उस बालक के मन में भी आ गया कि जाना है तो जाना ही है। हरिश्चंद्र ने ठान लिया तो वे चांडाल के हाथ बिक गए और अपनी टेक निभाई। रामचंद्र जी भी वन गये और उन्होंने भी अपनी टेक निभाई। इसी तरह उस बालक ने भी हठ कर लिया कि कुछ भी हो जाए किंतु मैं पीछे लौटने वाला नहीं हूं। मैं तो अब पढ़ाई करके ही लौटूंगा। वह कुछ दूर चला तो उसे एक गधा दिखाई दिया। गधा आवाज कर रहा था, 'ढेंचू, ढेंचू, ढेंचू'। उसने उस गधे की आवाज सुनी और सोचा कि गधा मुझे बुला रहा है। वह गधे के पास गया और गधे की पूंछ पकड़ ली। पूंछ पकड़कर उसने कहा कि अब मैं आपसे पूरा ज्ञान लेकर ही छोड़ूंगा। मैं भी टेक क्यों छोड़ू? मैं भी अपनी टेक छोड़ने वाला नहीं हूं। जब तक आपसे ज्ञान नहीं ले लेता मैं टेक छोड़ूंगा नहीं। गधे के द्वारा उसको घसीटा जाता है किंतु वह सोचता है कि कुछ भी कर लो मैं इस टेक को निभाने वाला हूं। घसीटते-घसीटते वह गधा मंडी में चला गया। लोग देख रहे हैं कि क्या तमाशा हो रहा है? किसी ने पूछा तो उसने कहा कि माता ने कहा है कि टेक निभानी है तो मैं टेक निभा रहा हूं। अब मैं पीछे नहीं रहूंगा। मैं गधे से ज्ञान हासिल करके रहूंगा। उसने हठ की और गधे के द्वारा बुरी तरह घसीटा गया पर क्या वह गधे से सीख लेगा? नहीं।

वैसे ही ऐसा हठ करना उचित नहीं है। धर्म ऐसे हठ की बात नहीं करता। वह पहले जानने की बात कहता है। हम अभी सुन ही रहे थे कि जिसके साथ हमारा अटेचमेंट होता है, उसी से हमको पीड़ा मिलती है। यदि हमारा अटेचमेंट नहीं हो तो हमें कोई शोक नहीं होगा। कोई गम नहीं होगा। कोई दुःख नहीं होगा। कोई पीड़ा नहीं होगी। हमारे भीतर पारिवारिक जनों के प्रति जो ममत्व का भाव रहा हुआ है, अटेचमेंट-जुड़ाव का जो भाव रहा हुआ है, उसको दूर करने का हम प्रयत्न करें।

सोचें कि जैसे आप यहां उपस्थित हुए हैं जोधपुर में। कोई गंगाशहर से आया, कोई बीकानेर से आया। कोई सैंथिया से, कोई बंगाल से आया। कोई पंजाब से आया, कोई हरियाणा से आया है। आप यहां पर कितने दिन के मेहमान हैं? आज यहां सबसे मिले, जय जिनेंद्र, जय जिनेंद्र और शाम को क्या हो जाएंगे? सुबह आए और दोपहर को क्या हो जाएंगे? शाम, दोपहर, सुबह और नहीं हो तो कल या परसों जैसा भी कार्यक्रम है, आप जाएंगे या

यहीं पर रुके रहेंगे? (प्रत्युत्तर– जाएंगे) और यदि मन हो जाएगा तो? ये बात बोली नहीं कि यदि मन लग गया तो नहीं जाएंगे।

यदि मन बदल गया तो फिर जाने का काम क्यों? हम अपना प्रयत्न करें कि जो हमारा अटेचमेंट है, जैसे यहां हम सारे लोगों से मिले हैं और यहां से अपने-अपने गंतव्य की ओर चले जायेंगे, वैसे ही परिवार में सब लोग मिलते हैं और वापस अपने गंतव्य की ओर, दूसरे लोक की ओर चले जाते हैं। इस प्रकार से यदि हम उस बात को लेंगे, उसका विचार करेंगे तो हमें बोध मिलेगा। हमारा शोक दूर होगा, हमारी पीड़ा दूर होगी। तीर्थंकर देवों की वाणी हमारे लिए आधारभूत है। हम स्वाध्याय से अपने आपको प्रेरित करें। अपने आपको प्रभावित करें।

ऐसा यदि हम करेंगे तो हमारा शोक, हमारा गम दूर होगा। हम शांति को प्राप्त करेंगे, समाधि को प्राप्त करेंगे। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूं।

22 सितम्बर, 2019

2

अचूक दवा

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे...

दुःख दो प्रकार के माने गए हैं। एक शारीरिक दुःख और दूसरा मानसिक दुःख। यदि हम विचार करें तो दुःख एक ही प्रकार का है। वह केवल मानसिक है। शारीरिक कष्ट होता है, पीड़ा होती है। दुःख का संवेदन मन से जोड़ा गया है। फिर भी ऐसा कहा गया है कि शारीरिक-मानसिक दुःखों का छेदन-भेदन करना। धर्म की चर्चा सुनते हुए हमने यह तो सुना है कि 'साया-सोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ' यानी साता और सुख से विरक्त हो जाना, अलग हो जाना। यह धर्म श्रद्धा का लाभ है। साथ ही यह भी बताया गया है कि वह शारीरिक-मानसिक दुःखों का छेदन-भेदन करता है और वह अव्याबाध सुख को प्राप्त करता है। प्रश्न होता है कि धर्म श्रद्धा होने से या धर्म क्षेत्र में प्रवेश होने से शरीर की पीड़ा, मन की पीड़ा कैसे दूर हो जाती है?

हमारे हाथ पर यदि नमक या मिर्च कुछ गिर जाए या कोई डाल दे तो कितनी जलन होगी? शरीर की चमड़ी चाहे हाथ की चमड़ी हो या शरीर के अन्य किसी-भी भाग की चमड़ी हो उस पर कोई नमक या मिर्च डाल दे या गिर जाए तो उसकी जलन, उसकी पीड़ा कितनी होती है? उससे पीड़ा या जलन नहीं होती है। किंतु यदि कहीं से थोड़ी-सी चमड़ी उधड़ी हुई है, थोड़ी-सी चमड़ी हटी हुई है और वहां पर कोई नमक-मिर्च डाल दे तो वह जलन पैदा करती है।

हम किस निष्कर्ष पर पहुंचे? यदि चमड़ी में, शरीर में, हाथ में कोई घाव नहीं होता तो नमक या मिर्च डालने पर पीड़ा या जलन नहीं होती। यदि वहां घाव हो गया और उस घाव पर नमक-मिर्च पड़ी या डाली गई तो वह जलन करती है। स्वयं डालेंगे तो जलन करेगी या दूसरा व्यक्ति डालेगा तो जलन

करेगी? कोई भी डाले जलन करेगी। अपने हाथ से नमक डालेगा तो भी जलन होगी, अपने हाथ से मिर्च डालेगा तो भी जलन होगी और कोई दूसरा डालेगा तो भी जलन होना है। हो सकता है कि थोड़ा फर्क हो। थोड़ा फर्क यह होगा कि अपने हाथ से डालोगे या जानकर डालोगे तो थोड़ी कम जलन होगी और कोई जबरन डाल देगा तो उसका संवेदन ज्यादा होगा। पर यह निश्चित है कि घाव होगा तो उसका संवेदन होगा। घाव नहीं होगा तो उसकी पीड़ा नहीं होगी।

वैसे ही हमारे मन में घाव पड़े हुए होते हैं तो थोड़ा-सा नमक, थोड़ी-सी मिर्च भी बहुत कष्टदायी हो जाएगी। यदि मन में कोई घाव नहीं है, मन में कोई अल्सर नहीं है तो कितना भी नमक डालो और कितनी भी मिर्च डाल दो वहां पर जलन नहीं होगी। वहां पर कष्ट नहीं होगा। पीड़ा नहीं होगी।

शरीर और मन में पीड़ा और कष्ट होने का मतलब है कि हमारा उसमें कहीं न कहीं लगाव रहा हुआ है। हमने वहां कुछ ऐसी चीज छोड़ रखी है, जिससे जलन पैदा होती है, जिससे कष्ट पैदा होता है। वह चीज यदि वहां से हटा लें तो हमें पीड़ा नहीं होगी। हमें कष्ट नहीं होगा। मेरी कोई चीज, मेरी कोई सामग्री, जो मुझे बड़ी प्रिय है, वह कोई लेता है और फाड़ देता है तो कैसा लगेगा? और जिससे मेरा कोई संबंध है ही नहीं, मेरा जिससे कोई लगाव है ही नहीं, उस चीज को तोड़ दे, फोड़ दे तो कोई पीड़ा नहीं होगी।

दिगंबर मत के प्रवर्तन होने के पीछे एक कारण यही बताया जाता है कि गुरु महाराज ने कीमती कम्बल के टुकड़े कर दिए जिससे शिष्य को आक्रोश आ गया कि मेरी कम्बल के टुकड़े क्यों कर दिए गए? राजा के द्वारा सम्मानित करके वह कम्बल दी गई थी तो कहीं न कहीं मन में यह बात जमी हुई थी कि राजा के द्वारा मुझे सम्मानित किया गया है। यह कम्बल राजा के द्वारा भेंट मिली है। वी.आई.पी. आदमी यदि हमें कोई चीज देता है तो वह चीज मूल्यवान हो जाती है। चीज का इतना कोई मूल्य नहीं है किंतु देने वाला व्यक्ति कितना समर्थ है, कितना वी.आई.पी. है, उसके आधार पर उस वस्तु का मूल्य हो जाता है।

अभी दो-चार दिन पहले की बात होगी। मोदी का फोटो कितने में गया? (प्रत्युत्तर– एक करोड़ में) आप लोग कह रहे हो कि एक करोड़ में गया मतलब आप अखबार तो देखते ही हैं। एक करोड़ में गया वह फोटो। करोड़ की कीमत थी क्या? (प्रतिध्वनि– 500 रुपये की) पांच सौ रुपये की कीमत

थी और बिका कितने में? एक करोड़ में बिक गया। एक करोड़ में चला गया। एक करोड़ में क्यों चला गया? बीच में यह भी सुना था कि महात्मा गांधी की कई चीजों की बिक्री हो रही है। उनके कई कागजात मिले। एक-दूसरे से जो पत्र-व्यवहार हुए होंगे, वे भी बहुत कीमतों में बिके। लोग कहते हैं कि कागज की कीमत नहीं है। कीमत है महात्मा गांधी के हैंड राइटिंग की। कीमत है उनके द्वारा लिखे गए शब्दों की। कीमत है उस व्यक्ति की, जिसके कारण से उस पत्र को भी मूल्य मिला।

वैसे ही यदि कोई वी.आई.पी. आदमी, बड़ा आदमी हमें कोई वस्तु देता है तो हमारे मन में उसका मूल्य हो जाता है। हमारे मन में मूल्य होने का मतलब है कि हमारे दिल में वह चीज जम गई। वैसे ही वह कम्बल जम गई कि यह राजा के द्वारा मिली हुई है। कम्बल कैसी है से मतलब नहीं है। राजा के द्वारा मिली हुई है इसलिए मूल्य है और गुरु महाराज ने उसके टुकड़े कर दिए। गुरु महाराज ने टुकड़े क्यों किए थे? उन्होंने कहा था कि लंबे समय तक इसको मत रखना। वापर लेना। चूंकि जो चीज मन में जम जाती है, वह जल्दी वापरी नहीं जाती है। हर कोई चीज, हर समय वपरास में नहीं आती है। कुछ ऐसे वस्त्र होते हैं जिसको विशेष प्रसंगों पर ही पहना जाता है। हर समय नहीं पहना जाता है। वैसे ही कुछ चीजें हर समय उपयोग में नहीं ली जातीं। कभी-कभार ही ली जाती हैं। ऐसा जब गुरु महाराज ने देखा और जाना तो विचार किया कि यह ममत्व की पोटली बन जाएगी और यह भीतर फोड़ा बन जाएगी। वह फोड़ा भीतर रहेगा तो कोई भी कुछ कहेगा तो पीड़ा होगी। दर्द होगा। फोड़े को आदमी हाथ लगाने नहीं देता। क्योंकि हाथ लगाने पर दर्द होता है। उस फोड़े को सहेजकर रखता है। इसी कारण से वह शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी बनता है।

धर्म श्रद्धा से वह शारीरिक-मानसिक दुःखों का छेदन-भेदन करने वाला हो जाता है। धर्म श्रद्धा से क्या लाभ हुआ? भीतर जो फोड़ा पड़ा हुआ है, उसको वह हटाने की कोशिश करता है। भीतर जो आसक्ति पड़ी हुई होती है, उसको दूर करने का प्रयत्न करता है। आसक्ति बहुत भयंकर होती है। वह जब तक जमी रहती है तब तक पीड़ा देती है। कष्ट देती है। दुःख देती है। कोई कारण नहीं है कि वह दुःख नहीं दे। उसको तो हटाना ही पड़ेगा।

आसक्ति किसको कहते हैं? लगाव को आसक्ति कहते हैं। उसी लगाव, उसी आसक्ति से मन पीड़ित होता है। उसी से मन में दुःख पैदा होता

है किंतु धर्म की श्रद्धा या धर्म की प्राप्ति उसका छेदन-भेदन करने वाली हो जाती है जिससे वह आसक्ति रह नहीं पाती है। जब आसक्ति रहती नहीं है तो दर्द भी पैदा होगा नहीं। जब तक आसक्ति को हम नहीं हटा पाएंगे तब तक उसके दर्द का भोग हमें करते रहना पड़ेगा।

एक रूपक आपने सुना होगा कि एक व्यक्ति पत्नी पर बड़ा मुग्ध था। पत्नी को थोड़ी-भी तकलीफ हो जाए या वह रोने लग जाए, बिलखने लग जाए तो उसे दुःख होता था। एक बार पत्नी को फोड़ा हो गया। उसे देखकर उस व्यक्ति को बड़ी पीड़ा होती। बड़ी रुलाई आती। उस व्यक्ति ने काफी कुछ प्रयत्न किए फिर भी फोड़ा ठीक नहीं हुआ। फोड़ा तो ठीक नहीं हुआ किंतु उस व्यक्ति का आयुष्य आ गया। वह मर गया। बताया जाता है कि मरकर वह उसी फोड़े में, कीड़े के रूप में जन्म लेता है। आगमकार बताते हैं कि स्वर्ग के देव कई बार अपने विमानों में लगे हुए रत्नों पर बड़े मुग्ध हो जाते हैं। जैसे घर में सजावट के तौर पर कई झूमर लगाए हुए होते हैं और वे बड़े पलपलाट करते हुए चमकते हैं। कई बार व्यक्ति का मन उधर आकर्षित हो जाता होगा। वैसे ही विमान में रहे हुए रत्नों से देवों का लगाव हो जाता है। उनमें उनका मन इतना गहरा लग जाता है कि उस समय यदि वे आयुष का बंध करें तो आने वाले समय में मृत्यु को प्राप्त कर वहां पृथ्वीकाय के रूप में जन्म लेने वाले हो जाते हैं। देव कहां तक चले गए थे? देवलोक का सुख, देवलोक की दिव्यता, देवलोक की चमक-दमक सब प्राप्त हो गई थी किंतु मरकर पृथ्वीकाय में चले गए। जिस प्रकार कोई आदमी घूमने के लिए समुद्र के, नदी के किनारे जाता है वैसे ही देव भी कई बार बावड़ियों के किनारे, नदियों के किनारे रमणीय स्थानों पर रमण करने के लिए चले जाते हैं। यह बताया जाता है कि कभी-कभी नदी-नालों के पानी में, उनकी कल-कल ध्वनि में किसी देवता का यदि मन रह जाता है, उसमें गहरी आसक्ति होने लगती है तो वे मरकर अप्काय में चले जाते हैं।

नंदन वन में भ्रमण के लिए भी देव जाते हैं और वहां की रमणीयता को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। वह मुग्धता यदि उनकी आयुष्य बंध का संबंध जोड़ दे तो वह देव मरकर वनस्पति काय में जन्म लेने वाला हो जाता है। वनस्पति बन जाता है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय होने में टाइम लग जाता है। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय में गया हुआ

जीव कब वापस मनुष्य बनेगा, कब वापस पंचेन्द्रिय बनेगा, कब देव बनेगा, कहना आसान नहीं है।

आगम, शास्त्र यह स्पष्ट कहता है कि एक बार पृथ्वीकाय में चले जाने पर किसी की पुण्यवानी हो और वहां से निकल जाए तो बात अलग है नहीं तो असंख्यात काल तक वह पृथ्वी आदि 4 स्थावर काय में पड़ा रहेगा। किसी की पुण्यवानी माड़ी होती है तो देव बनकर भी पृथ्वीकाय में चला जाता है। जब देव जा सकते हैं तो मनुष्य की तो बात ही क्या है? वह पृथ्वी में, वनस्पति में जा सकता है या नहीं जा सकता है? अभी थोड़ी देर पहले ही बताया था कि वह व्यक्ति अपनी पत्नी के फोड़े में कीड़ा बन गया। ऐसी बहुत-सी कहानियां मिलेंगी, जिसमें मरकर कोई बिल्ली बन गया, कुत्ता बन गया, सर्प बन गया। भगवान महावीर के बड़े-बड़े 27 भव बताए गए हैं। किंतु बीच में पांच स्थावर के रूप में पता ही नहीं है कि कितने जन्म किए, कितनी बार मृत्यु को प्राप्त किया। बड़े-बड़े जन्मों में से भी कुछ जन्म हमारे स्मृति पटल पर रह जाते हैं। बहुत सारे जन्म तो गुमनामी में खो जाते हैं। वैसे ही आज हम मनुष्य बने हुए हैं और आने वाला कल हमारा कहां इंतजार करते हुए मिलेगा और आने वाले कल में हम कहां पहुंचने वाले होंगे, यह कहना आसान नहीं है। यह कहना कठिन है। यदि कोई गांठ मेरे भीतर बनी रह गई, यदि कोई फोड़ा मेरे भीतर बना रह गया, यदि कोई लगाव, अटेचमेंट, जुड़ाव, आसक्ति मेरे भीतर रह गयी और उसमें आयुष का बंध हो गया तो कहां जाएंगे पता नहीं है। हो सकता है कि एकेन्द्रिय में चले जाएं। हो सकता है बेइन्द्रिय में चले जाएं। हो सकता है कि अन्य किसी योनि में चले जाएं।

मनुष्य जन्म पाकर इसे हमने कितना कारगर किया, कितना सार्थक किया? मनुष्य जन्म की कितनी उपादेयता हमने समझी? मनुष्य जन्म मिलने को ये समझ लीजिए कि वी.आई.पी. कोटा है। हर किसी को कहां मनुष्य जन्म मिलता है। बात थोड़ी जटिल हो जाएगी। संसार में सारे जीव कितने हैं? (प्रत्युत्तर– अनन्ता अनन्त) पृथ्वीकाय में असंख्यात, अप्काय में असंख्यात, तेउकाय में असंख्यात, वायुकाय में असंख्यात, वनस्पतिकाय में अनन्ता अनन्त। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, नरक, इन सभी त्रसों में जीव असंख्यात-असंख्यात हैं। एक वनस्पति को छोड़कर सभी जगह असंख्यात जीव हैं। वनस्पति में अनन्ता अनन्त जीव हैं। संज्ञी मनुष्य

तो आटे में नमक जितना, बल्कि आटे में नमक कहना भी शायद नहीं पोसाएगा। संज्ञी मनुष्य ही संख्यात होते हैं।

आप विचार करो कि पूरे विश्व में, पूरी दुनिया में बहुत कम जीवों को मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। जिनको प्राप्त हो गया वह दुर्भागी हैं या सौभागी हैं? (प्रत्युत्तर–सौभागी) आप कह रहे हो कि सौभागी हैं, आपको क्या पता? कैसे समझेंगे कि मनुष्य जन्म प्राप्त करने वाले सौभागी हैं? उनका सौभाग्य है, यह समझें कैसे? मनुष्य जन्म मिलना तो उनका सौभाग्य समझ सकते हैं किंतु उन्हें वापस मनुष्य जन्म मिलना आसान नहीं है। देवों को भी नसीब नहीं होता है। वे भी कभी पृथ्वीकाय, अप्काय में चले जाते हैं तो मनुष्य को वापस मनुष्य जन्म आसानी से कैसे प्राप्त हो पाएगा? बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय के लिए यदि आदमी जीवन समर्पित कर देता है तो उसको क्या समझेंगे?

मिनख जमारो भाया, एड़ो मत खोइजे,
सुकृत करले जमारा में, केसर ढुल गई गारा में...

मिनख जमारो भाया, एड़ो मत खोइजे। मन में विचार हो कि मुझे कुछ मेहमानों को जीमाना है या कुत्ते को जीमाना है या बिल्ली को जीमाना है और उनके लिए सोने का, चांदी का थाल लाकर जीमावें तो क्या होगा? आपको चांदी और सोने के थाल से मोहब्बत होगी किंतु कुत्ते, बिल्ली को नहीं। उनको चांदी के थाल से कोई लगाव है क्या? उनको अपने खाद्य पदार्थ से लगाव है या थाल से लगाव है? हमारे से पूछा जाए कि हमको थाल से लगाव है या रोटी से लगाव है तो? बोलो। क्या साहब? आप कहोगे थाली से लगाव है? कुछ लोग कह रहे हैं कि रोटी से भी लगाव होता है और थाली से भी लगाव होता है।

दो आदमियों को भोजन करने के लिए पास-पास बैठाया गया। दोनों को एक समान भोजन परोसा गया। एक की थाली पीतल या स्टील की है और दूसरे की थाली चांदी की है। बोलो क्या फर्क पड़ेगा? फर्क पड़ता है या नहीं पड़ता है? और दो कुत्तों को दो बरतनों में भोजन दे दिया। एक का स्टील का बरतन है और एक का चांदी का बरतन है तो क्या होगा? कुछ लोग कहेंगे कि बेचारा कुत्ता क्या जाने? हम आदमी हैं, हम जानकार हैं। हम समझदार हैं। पर समझदारी काम क्या आई? हमको यदि स्टील की थाली में भोजन परोसा जाए और पड़ोसी को चांदी के थाली में परोसा जाए तो मेरे

मन में ईर्ष्या क्यों पैदा हो गई? मेरे मन में दुःख क्यों पैदा हो गया? मेरे मन में पीड़ा क्यों पैदा हो गई? यह अधर्म हुआ तो पीड़ा पैदा हुई और जहां धर्म की श्रद्धा हो जाए तो मुझे क्या करना है। थाली चांदी की हो या स्टील की हो, कोई भी थाली हो, हमें क्यों फर्क पड़ गया?

आप सोचो, स्टील की थाली तो मिली है। आजकल तो कागज की थाली मिलती है, जिसको यूज करो और फेंको। इससे अच्छा है कि धातु की थाली तो मिली। स्टील की थाली तो मिली। आदमी उससे तुलना नहीं करेगा। तुलना करेगा कि मुझे तो स्टील की थाली में खाना परोसा और पड़ोसी को चांदी की थाली में जीमाया। यह जो मन में संवेदना पैदा होती है, जो मन में फीलिंग पैदा होती है वह फीलिंग अधर्म है। यह धर्म नहीं है। जब हम अधर्म में जीते हैं तो हमें पीड़ा होती है। हमें दर्द होता है। अन्यथा हमें कोई दर्द नहीं होगा। हमको चाहे किसी भी थाली में खाना खिलाया, किसी भी थाली में जीमाया, हमारे मन में कोई अंतर नहीं होगा। हमारे मन में कोई फर्क नहीं होगा। और तो और खाने में भी यदि भेद कर दे, एक को बादाम की कतली जिमावे और एक को थूल्ली, लापसी जिमावे तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

पीरदान जी बोथरा तिंवरी वालों की बात आप कई बार सुनते हैं। संत-महात्मा व्याख्यान में फरमाया करते हैं कि उनको गाय का बांटा परोस दिया गया तो भी उनके मन में कोई फर्क नहीं आया। कोई विचार नहीं आया कि मुझे यह बांटा कैसे परोस दिया? आज इस दर्पण में हम देखेंगे। बाहर के दर्पण को नहीं देखना क्योंकि आज प्रार्थना में पच्चक्खाण कराया गया था कि दर्पण में मुंह नहीं देखना। इस दर्पण में अपने मन को देखें कि हम धर्म में कितने उतरे हैं। हम कितने गहरे धर्म में उतरे हुए मिलेंगे? जब तक धर्म की गहराई में नहीं उतरेंगे तब तक हम शारीरिक और मानसिक दुःखों का छेदन-भेदन कैसे कर पाएंगे? हमारे दिमाग में चकरी चलती रहेगी। हमारे दिमाग में ऊहापोह चलती रहेगी। कुछ न कुछ हमारे दिमाग की कसरत होती रहेगी। यदि इसे बंद करना है तो हमें धर्म में आना पड़ेगा। धर्म इसकी 'अचूक दवा' है। यदि जीवन में धर्म आ गया या हमने धर्म की दवा ले ली फिर दुनिया में कोई भी मेरे साथ कैसा भी व्यवहार करे, मेरे मन में कोई फर्क नहीं आएगा।

श्रुति गांधी ने बोला था कि हमें आज विशेष उद्बोधन देना। विशेष क्या देना? ये आज विशेष बनकर आए। सबने नई साड़ियां पहनी हैं। यह भेद, यह

फर्क क्यों पड़ा? संवत्सरी पर्व भी आता है। पर्युषण पर्व भी आते हैं। क्या उस दिन नई ड्रेस पहनकर आएंगे? किसी-किसी के मन में रहता होगा, वह अलग बात है, बाकी संवत्सरी पर्व हो या पर्युषण पर्व, क्या फर्क पड़ता है? महावीर जयंती है तो क्या और दूसरा दिन है तो क्या? गुरुदेव की एक बात बड़ी पसंद आई। जन्मदिन मनाने के हिसाब से एक बात चली थी। गुरुदेव ने कहा कि हर द्रव्य का हर वक्त एक नया जन्म होता रहता है। पर्याय परिवर्तन द्रव्य का स्वभाव है और यह स्वभाव हर वक्त उसमें घटित होता रहता है। द्रव्य हर वक्त नए पर्याय को स्वीकार करता है और पुरानी पर्याय नष्ट होती है। वह पर्याय परिवर्तन हमें ज्ञात हो पाये या नहीं हो पाये किंतु होता है यह स्पष्ट है। यह तो जानते ही होंगे कि हमारे मन में उथल-पुथल होती है। मेरे साथ ऐसा क्यों हो रहा है, मेरे साथ वैसा क्यों हो रहा है? मेरे साथ ऐसा कर दिया। मेरे साथ वैसा कर दिया। यह हो गया। वह हो गया। ऐसा कर दिया। वैसा कर दिया। हमारे भीतर एक-दूसरे से तुलना करने की जो नीयत है, वह कभी भी हमारे लिए हितकर नहीं है। हमें एक-दूसरे से तुलना करनी ही नहीं चाहिए। उसको ऐसा क्यों, उसको वैसा क्यों? यह हमारे भीतर तुलना होती है तो हमें हर वक्त पराई थाली में घी ज्यादा दिखता है। पराई थाली में घी ज्यादा हो चाहे मत हो किंतु दिखता ज्यादा ही है। पराई थाली में घी ज्यादा इसलिए दिखता है क्योंकि हमारी आंखें ही वैसी हैं। हमारी आंखें पराई थाली में घी ज्यादा देखती हैं। जब तक टेली करते रहेंगे तब तक हमको वैसा ही लगेगा। हम वैसा ही देखते रहेंगे और हम दुःखी रहेंगे। हम जीवन में सुखी नहीं बन पाएंगे। सुखी बनने के लिए जरूरी है कि स्वयं को देखो। अपने भीतर रही हुई कमियों को देखो।

कल एक आख्यान प्रस्तुत किया था, एक दृष्टांत रखा था कि एक ब्राह्मण पुत्र पढ़ता-लिखता नहीं था। मां के कहने पर उसने कहा कि इस बार तो मैं कुछ सीखकर ही आऊंगा। वह निकला और गधे की पूंछ को पकड़ लिया कि अब आपको मुझे कुछ न कुछ सिखाना पड़ेगा। बिना सिखाये मैं पूंछ को छोडूंगा नहीं। वह गधे की लात खाता रहा, घसीटा जाता रहा, किंतु पूंछ नहीं छोड़ना तो नहीं छोड़ना। कई लोग दौड़कर गए उसकी मां के पास और बताया कि तुम्हारे सपूत की यह हालत है। माता ने माथा ठोंक लिया। जोश चढ़ता है किंतु समझ नहीं है तो क्या होगा? बिना समझे काम करने से क्या होगा?

माता विचार करने लगी कि जो आगे-पीछे की बात नहीं सोचता है और यद्धा-तद्धा कुछ भी करने के लिए उद्यत हो जाता है, वह अपनी पॉजिशन को डाउन करता है। उसकी माता को गुरु के रूप में समझ लो। माता भी गुरु होती है और पिता भी गुरु होते हैं। किंतु माता की बात समझ नहीं पाया, इस कारण से वह दुःखी हो गया। यहां पर भी संत-महात्माओं की बात बहुत स्पष्ट है। उनकी बात को हम हृदय में धारण नहीं करें तो इससे बढ़कर सोचनीय बात और क्या हो सकती है? हम भले ही समझें या नहीं समझें पर जो बात आदमी पकड़ लेता है, वह एक प्रकार से पूंछ पकड़ने का काम है। जिसके कारण से व्यक्ति सत्य तथ्य को समझने के लिए तैयार नहीं हो पाता। मैं कहना चाहूंगा कि तुम सत्य के दर्शन करो। तुम समझने का प्रयत्न करो। अन्यथा उस मेढकी जैसी स्थिति बन सकती है जिस मेढकी ने परिवार के मोह के पीछे दुर्लभ दर्शन को गौण कर दिया।

उस मेढकी का आख्यान इस प्रकार है– एक बड़ा सरोवर था, झील थी, जिसमें ऊपर जलकुंभी (शैवाल) छा गई थी। कहीं से कहीं तक ऊपर देखने का रास्ता नहीं था। ऊपर कुछ भी नजर नहीं आता था। एक बार कुछ हवा चली और जलकुंभी थोड़ी अलग हो गई। इतने में वहां पर एक मेढकी आई। उसने गर्दन बाहर निकाली। उस दिन शरद पूर्णिमा का चंद्रमा अपनी संपूर्ण ज्योत्स्ना को बिखेरे हुए था। उसको देखकर, उस कांति को देखकर वह रोमांचित हो गई। उसने सोचा ओहो! ऐसा दृश्य आज तक मैंने नहीं देखा। ओहो! ओहो! मैं धन्य हो गई। ऐसी भी कोई दुनिया है आज तक यह मैं देख नहीं पाई। इतने में उसको परिवार की याद आ गयी। उसने सोचा कि मैं अकेली देख रही हूं। परिवार वालों को भी बुलाकर लाऊं और उन सबको यह दृश्य दिखाऊं। वह दौड़ी-दौड़ी परिवार वालों के पास गई और कहा, चलो, चलो, एक अद्भुत दृश्य दिखाती हूं। परिवार वालों ने कहा, अरे! क्या दृश्य दिखाना है? तो उसने कहा, तुम चलो तो सही। वह परिवार वालों को लेकर आई। इतने में हवा का एक झोंका आया और वह जलकुंभी जो अलग थी, वापस मिल गई। अब वह इधर-उधर खोज करती है किंतु उसको वापस वह जगह मिलती नहीं है।

ऐसा उसके साथ क्यों हुआ? वह परिवार वालों के मोह में चली गई। वैसे ही अभी संतों के वचनों की एक प्रकार से हवा चलने पर, मोह की कुंभी दूर हो जाती है। जिससे मोह का असर मंद हो जाता है परिणामस्वरूप

सम्यक्त्व रत्न, दूसरे शब्दों में कहें तो श्रावक जीवन या साधु जीवन की प्राप्ति के लिए मन उद्यत हो जाता है किंतु जैसे ही परिवार वालों की चिंता आती है तो मोह की हवा का झोंका आता है और क्या हो जाता है? व्यक्ति परिवार की सोचने लगता है? क्या आप भी उस भोली मेढकी की तरह प्राप्त अवसर को खोना चाहेंगे या अवसर का लाभ उठा लेना चाहेंगे?

गुलाब मुनि जी म.सा. के संथारे का आज 13वां दिन है और पिछले दो दिन से पानी भी नहीं ले रहे हैं। निवेदन करते हैं तो भी नहीं। थोड़ा-भी नहीं। अपने मक्कम भावों के साथ...। थोड़ा बहुत कहते हैं तो कहते हैं, जाने दो। करना क्या है। अनासक्त भावों में विराजमान हैं। अनासक्त भावों में प्रवर्धमान हैं। हम भी अनासक्ति की दिशा में अपने कदम आगे बढ़ा पाएंगे तो धर्म की सच्ची राह अनुभूत हो पाएगी। आसक्ति के भावों से हटकर धर्म को पकड़ो, फिर देखो वह कैसा लगता है? तब हम जान पाएंगे कि धर्म का सच्चा स्वरूप क्या है?

आचारांग सूत्र में धर्म को ऋजुभूत बताया गया है। सरल बताया गया है। जहां किसी प्रकार का कोई लाग-लपेट नहीं है। कुछ भी नहीं है। धर्म की ऐसी अवस्था को जिस दिन प्रकट कर पाएंगे उस दिन उस अचूक दवा से हम शारीरिक-मानसिक पीड़ा को, दुःख को दूर करते हुए अंततोगत्वा अव्याबाध सुख के अधिकारी बनेंगे। धन्य बनेंगे। इतना ही कहकर अपनी वाणी को विराम देता हूं।

23 सितम्बर, 2019

3

जी रहे हो या जान भी रहे हो

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे...

'असंखयं जीविय मा पमायए' यानी जीवन असंस्कारित है, अनित्य है। अनित्य का अर्थ होता है जो सदा विद्यमान रहने वाला नहीं है। हम बहुत अच्छी तरह से जान रहे हैं कि यह जीवन सदा टिकने वाला नहीं है। गुरुदेव से एक प्रश्न पूछा गया था कि गुरुदेव! जीवन क्या है? गुरुदेव ने उस प्रश्न को इस रूप में ढाल लिया, 'किं जीवनम्', जीवन क्या है? जी रहे हैं किंतु जान नहीं रहे हैं। यह जानने वाले बहुत कम लोग होते हैं कि जीवन को कैसे जीना चाहिए। यह जानकर जीने वाले भी बहुत कम होते हैं।

जन्म मिला है तो मृत्यु होनी है। जन्म लिया है तो मरना है। एक दिन मर जाएंगे। जितना समय बीच में मिला है उसको हम पास कर रहे हैं। उसको व्यतीत कर रहे हैं। समय बहुत मूल्यवान है। यह व्यतीत करने के लिए नहीं है। ऐसा नहीं है कि चलो पास कर दो। व्यतीत कर दो। समय बहुत मूल्यवान है। जीवन को समझने के लिए यदि पूरा समय लग गया तो जीयेंगे कब? और जीना है तो कैसे जीया जाए?

आचार्य देव ने उत्तर दिया था, '**सम्यङ्निर्णायकं समतामयञ्च यत्तज्जीवनम्**'। बहुत बार व्यक्ति उलझन में उलझा रहता है। कई लोगों की एक शिकायत होती है। कई लोगों के दिमाग में एक प्रश्न बना ही रहता है। पहले 'सम्यक् निर्णायकं' पर विचार करना है अपने को। लोग कई बार उलझन में उलझे रहते हैं और कहते हैं कि मन ऊहापोह में क्यों पड़ा रहता है? इसका एक बहुत बड़ा कारण हमारी अनिर्णायक स्थिति है। अनिर्णय में जब तक हम बने रहते हैं, जीवन का सही स्वाद ले नहीं पाते हैं। उसी में घुलते रहते हैं। महान् पुरुषों का जीवन चरित्र पढ़ो तो आपको ज्ञात हो जाएगा कि उन्हें निर्णय लेने में कितनी देर, कितना समय लगता है।

राम के सामने प्रसंग आया और उन्होंने तत्काल निर्णय कर लिया कि मैं अयोध्या का त्याग करूंगा। कोई राजनीति, कोई कूटनीति का खेल खेला क्या? आज की दुनिया में जैसी कूटनीतियां चलती हैं, वैसे ही राम ने क्या कोई कूटनीति खेली कि नहीं साहब, मैं चला जाऊंगा तो ये लोग मुझे मनाएंगे, समझाएंगे। यह कूटनीति होती है कि मैं विफर गया कि नहीं साहब, मैं राजा नहीं बनूंगा। मैं तो अयोध्या का त्याग करके जंगल में जाऊंगा। वन में जाऊंगा। कहने का लहजा बता देता है कि तुम रहना चाहते हो या जाना चाहते हो। बोलने का लहजा बता देता है। बता देता है या नहीं बता देता है? कहने का लहजा बता देता है कि तुम चाहते क्या हो? हमारा चेहरा, हमारी निकलने वाली आवाज, समझने वालों के लिए पर्याप्त है।

राम ने इस आशय से कोई बात नहीं कही कि लोग मुझे समझावें। यद्यपि लोगों ने समझाने का कोई कम प्रयत्न नहीं किया। सारे लोग आग्रह करने लगे किंतु राम स्पष्ट थे। उनका लक्ष्य स्थिर था। कई लोग एक बार निर्णय करने के बाद बार-बार फेरबदल नहीं करते हैं। निर्णय, निर्णय है। वे निर्णायक बुद्धि वाले होते हैं। हर व्यक्ति को निर्णायक बुद्धि वाला होना चाहिए। अधर-भंवर में चीज मत डालो। यस या नो, हां या ना, एक निर्णय करो ताकि एक फाइल तो हटे वहां से। नहीं तो फाइल से टेबल भरी रहती है। फाइल टेबल पर पड़ी रहती है।

मनोविज्ञान कहता है कि जिसकी टेबल पर फाइलें बहुत ज्यादा पड़ी रहती हैं, वह अधिकारी, वह अफसर ज्यादा काम नहीं कर सकता। उसको दिखता रहता है कि फाइलें पड़ी हैं, फाइलें पड़ी हैं। एक बहन पगला गई। उसके सामने कपास लाकर डाला जो उसको कातना था। क्या बोलते थे उसको, पिंजना? पिंजना ही है ना? उसने सोचा कि इतनी रुई, इतना कपास कब पिंजा जाएगा? वह डिप्रेशन में आ गई कि इतना सारा कपास कब पिंजा जाएगा? ऐसा होता है कि फाइलें बहुत ज्यादा हैं आपकी टेबल पर तो काम धीमी गति से चलेगा। फाइलें टेबल पर कम होंगी तो काम जल्दी होगा। दस चीजें बिखरी हुई हैं, पड़ी हैं, इसका मतलब है कि काम धीरे होता है।

भगवान ने कहा कि बिखरा हआ मन नहीं रखना। पांच समिति में, चौथी समिति में बताया गया कि भंडोपकरण यतना से व्यवस्थित रखे जाने चाहिए। यदि इधर-उधर बिखरे हुए पड़े हैं तो उसका मन ज्यादा ज्ञान-ध्यान में नहीं लगेगा। ये करूं, ये करूं, ये करूं। चार काम में दिमाग दौड़ता रहेगा

और वह एक भी कर नहीं पाएगा। इसलिए हमारी निर्णायक क्षमता विकसित होनी चाहिए। '**सम्यङ्निर्णायकम्**'। जीवन क्या है? 'किं जीवनम्?' जीवन सबसे पहले सम्यक्-निर्णायक होना चाहिए। उसके आगे की बात आगे है। यदि हमारी निर्णायक क्षमता बरकरार है तो मन ज्यादा ऊहापोह में नहीं रहेगा क्योंकि उसके पास ज्यादा फाइलें हैं ही नहीं। ज्यादा कपास कातने को रहा ही नहीं। यदि उसके सामने फाइलें आती रहेंगी, आती रहेंगी तो होता क्या है? 'मारवाड़ मनसूबा डूब्यो', ऐसा कर लूं, वैसा कर लूं। ऐसा हो जाएगा तो क्या होगा, वैसा हो जाएगा तो क्या होगा? करो तो सही भाई।

अधिक सोचने और काम कम करने वाला व्यक्ति ऊंचाइयां प्राप्त नहीं कर सकता। 'जी' तो सकते हैं। जीना तो है ही। जितना जीवन है, जितना उसका आयुष्य है उतना तो जीना ही है। किंतु एक जीवन वह है जो बुलंदियों पर पहुंचे, बुलंदियों को छुए और एक जीवन वह है जो लटकते, लटकते चलेगा। कहते हैं ना, एल.एल.एम.पी., लटकते लटकते मैट्रिक पास। वैसे ही वह लटकते-लटकते यात्रा कर लेता है। जिसका यात्रा करने का रूटीन, शेड्यूल बना होता है, वह लटकते-लटकते यात्रा नहीं करता है। वह पहले से अपना टिकट रिजर्व करा लेता है और बड़े आराम से जाकर अपनी सीट पर बैठता है। ऐसा नहीं होता है कि भागते, दौड़ते हेंडल पकड़ लिया। ऐसे लोग भी हैं कि हे! हे! सामने गाड़ी जा रही है, दौड़ा, दौड़ा, गाड़ी को पकड़ा और चढ़ गया। ऐसी स्थिति में बीच में कभी पांव स्लिप हो जाए तो क्या वह संभल जाएगा? संभल जाएगा क्या? इसलिए कई बार कई दुर्घटनाएं हो जाती हैं। ऐसा होता है फिर भी कुछ लोगों की आदत है कि बस दौड़ते हुए जाकर पकड़ना और वे दौड़ते हुए जाकर पकड़ते हैं। किंतु सही सलामत यात्रा करने वाला पहले से अपनी सारी प्लानिंग बनाकर चलता है। जो प्लानिंग बनाकर चलता है उसे निर्णय में कोई देर नहीं लगेगी। कई लोग दिन-दिन भर तैयारी करते रहते हैं। दिन भर यदि तैयारी ही करोगे तो काम कब करोगे? दिन भर निर्णय करने के लिए सोचते रहोगे तो निर्णय होगा कब? निर्णय करो और आगे बढ़ो। यदि हमारे भीतर निर्णय लेने की कला आ जाती है, यह क्षमता हमारे भीतर विकसित हो जाती है तो आप देखेंगे कि माथे में किसी प्रकार का रोग नहीं हैं। कोई डिप्रेशन नहीं है।

हरिश्चंद्र राजा को निर्णय करने में कितनी देर लगी? मुझे इतनी राशि चाहिए किंतु सिर्फ मेरे बिकने से इतने पैसे नहीं मिल रहे हैं तो राजा बिका,

रानी बिकी। उससे पैसे पूरे हुए और दक्षिणा दे दी गई। एक बार भी मन में यह विचार नहीं, यह चिंता नहीं कि मैंने यह क्या कर लिया भावुकता में। वही आनन्द है। यदि श्मसान में पहरा देना पड़ रहा है, श्मसान में लाठी हाथ में लेकर खड़ा है तो भी वहां पर किसी प्रकार का गम नहीं है। रोहिताश्व की घटना बताई जाती है कि उसे सर्प ने काट लिया। चाहे वह देव की दी माया रही होगी, तारा उसे लेकर आ रही है कि इसका दाह संस्कार करना है। कौन देखने वाला है? चार लकड़ियां ले भी ली तो क्या फर्क पड़ने वाला है? कहते हैं ना, 'चीड़ी चोंच भर ले गई, नदी ना घटियो नीर'। तारा कहती है कि नाथ, इसका दाह-संस्कार करना है। हरिश्चंद्र कहते हैं कि कौन, किसका नाथ? मैं अभी मालिक का गुलाम हूं और मालिक के कथनानुसार जब तक 'एक टका' मुझे नहीं मिलता है, तब तक यहां पर दाह संस्कार नहीं किया जा सकता। गजब की बात है! क्या सुनते हैं हम। यह सुनकर हमारे कान पर जूं रेंगती है या नहीं रेंगती है? हम क्या करने वाले हैं? हमारा दम चले, हमारा वश चले तो हम क्या कर लेंगे? इसको कहते हैं, 'प्रामाणिकता।' इसको कहते हैं 'नैतिकता।' थोड़ा-सा लिया या घणा (बहुत) लिया। ऐसा नहीं कि थोड़ा लिया। मन खराब किया तो घणे के लिए किया होता? मन खराब करना है तो थोड़ा क्यों करना? मन खराब किया तो घणा कर लिया और मन खराब नहीं किया तो...। कुछ लोग होते हैं कि मन ही खराब कर लेते हैं। भरा हुआ दिखता है तब तो कोई बात नहीं है। ठीक है। मैंने मन खराब किया तो कितना किया? मन खराब करना तो घणा ही करना। किंतु ध्यान रखना कि चाहे छोटी हो या बड़ी हो, अनीति, अनीति होती है। वह कभी-भी फायदेमंद नहीं होगी।

अभी महासती जी ने बताया कि डायरी में क्या लिखना है? विचार कर लेना कि क्या लिखना है? पर ये भी ध्यान में रखना कि डायरी पूरी खाली नहीं है। उसकी कई लाइनें भरी हुई हैं। हर पेज की लाइन में कुछ न कुछ लिखा हुआ है। अब जो नया लिखना है, उसको संभलकर लिखना पड़ेगा। पहले लिखे हुए के ऊपर लिख दिया। यदि पहले एक लाइन लिखी हुई है तो नीचे बारीक अक्षर में कुछ लिखना होगा। यदि ऐसी सावधानी रखेंगे तब तो बहुत आसानी से काम हो सकता है। यदि हमने दौड़ते-भागते काम किया तो सही होने वाला नहीं है। '**सम्यङ्निर्णायकं समतामयञ्च...।**' सम्यक् निर्णायक अवस्था होगी तो आगे का जीवन कैसा होगा, वह आगे की बात

है किंतु सबसे पहली बात यह है कि हमारे जीवन में सम्यक् निर्णायक की अवस्था होनी चाहिए। वह हो गई तो निर्णय, निर्णय है। सम्यक् निर्णायक अवस्था आ जाती है तो फिर निर्णय आसानी से होता है।

जंबू कुमार को निर्णय लेने में क्या देर लगी? जंबू कुमार को निर्णय लेने में देर लगी क्या? सुधर्मास्वामी का व्याख्यान सुनने के साथ ही निर्णय हो गया कि मुझे दीक्षा लेनी है। जबकि आठ कन्याओं से सगाई हो चुकी थी। विवाह होना बाकी था। माता के कहने से विवाह भी हो गया। जंबू कुमार ने पहले ही कह दिया कि विवाह की रात तक ही घर में हैं। दूसरे दिन सुबह मुझे दीक्षा लेनी है। मेरे खयाल से कोई विश्वास करेगा भी नहीं। कहेंगे कि ऐसा होता थोड़ी न है। ये खाली बोलने की बातें हैं। बोलने में क्या जा रहा है। जिस समय शादी करके आएगा, उस समय मालूम पड़ जाएगा कि दूसरे दिन रहता है या दीक्षा ले लेता है।

आज आपकी संतान यदि ऐसी बात कहे तो आप विश्वास करोगे क्या? करोगे विश्वास? आप कहोगे कि यह यों ही है। सब दिखावे की बातें हैं। होने दो शादी फिर दूसरे दिन अपने आप ही मालूम पड़ जाएगा कि क्या होता है?

भगवान महावीर के काल में स्त्रियों को अशोच माना जाता था। उनको धर्म करने का अधिकार नहीं था। वेद पढ़ने की सख्त मनाही थी। यह तो भगवान महावीर की महानता रही कि उन्होंने अपने शासन में, धर्म संघ में, चार तीर्थ में लेवल एकदम बराबर रखा। साधु को तीर्थ बताया तो साध्वी को भी उन्होंने तीर्थ बताया। श्रावक को तीर्थ बताया तो श्राविका को भी तीर्थ बताया। उन्होंने ऐसा नहीं किया कि पुरुष ही दीक्षा ले सकता है, स्त्री दीक्षित नहीं हो सकती है। उन्होंने ऐसा कोई भेद नहीं रखा। उन्होंने स्पष्ट किया कि आराधना शरीर से नहीं मन से और आत्मा से होती है। आत्मा की अनन्त शक्ति स्त्री में भी रही हुई है और पुरुष में भी रही हुई है। ऐसा नहीं है कि पुरुष विशेष शक्ति संपन्न है और में स्त्रियों वह शक्ति नहीं है। हम यदि स्त्रियों के इतिहास को देखेंगे, बहुत नजदीक में देखना हो तो इंदिरा गांधी को देख लो और उसके आगे जाना हो तो झांसी की रानी को देख लो। और भी बहुत सारे इतिहास मिलेंगे कि बहनों ने कोई कमी नहीं रखी।

स्त्रियों में कितनी भी शक्ति हो, भक्ति हो फिर भी उनको महत्त्व नहीं मिला था किंतु भगवान महावीर ने उनको महत्त्व दिया। इसलिए आज स्त्रियां

कुछ बोलने लायक हैं और कुछ बोल रहीं हैं। नहीं तो कौन उनको सुनने वाला था? किसको गरज थी? गरज तो मानो उनको ही रहती है। उन्हें ही गरजू बनकर, पांव के तलवे चाटना होता था किंतु भगवान महावीर ने धर्माराधन में नारी को भी अधिकार दिया। तब से नीति में भी परिवर्तन हो गया। नीति में कहा गया है कि जिस घर में, जिस देश में नारियों की पूजा होती है, वहां देवता वास करते हैं।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः'

जहां नारियों की पूजा होती है, जहां स्त्रियों की पूजा होती है, जहां नारियों का सम्मान होता है, वहां पर देवता रमण करते हैं। वहां रिद्धि बढ़ती है, सिद्धि बढ़ती है और इस भाव से नारी भी सम्मान की हकदार है। लेकिन आज भी कई ऐसे मजहब हैं जहां नारी को मात्र भोग्या समझा जाता है।

बन्धुओ! संसार की असारता को समझते हुए भी जो नासमझ बने रहें उनको कितनी भी अच्छी शिक्षा दें, उनको शिक्षा समझ आएगी नहीं। यही हालत हमारी है। हम कितना भी सुनते हैं किंतु हम केवल सुनने के लिए सुन रहे हैं। इससे बढ़कर हमने और क्या विचार किया? हम क्या विचार करने के लिए तैयार हैं? क्या, कभी यह सोचते हैं कि हम ऐसे ही जीते रहेंगे या इस जन्म में कुछ कर गुजरने का भी विचार है? यह सुनिश्चित है कि सुन-सुन कर ही हमारा जीवन बीत रहा है। जीवन बीत जाएगा और मृत्यु आएगी। कोई कहीं से कहीं तक बचाने वाला नहीं है। फिर हमने क्या किया, क्या कर रहे हैं, और क्या करना चाहिए?

हमें संभल जाना चाहिए। बोलो संभल जाना चाहिए या नहीं संभल जाना चाहिए? हमने अब तक संसार के कितने भोग भोगे हैं, फिर भी क्या अभी मन अतृप्त है? यदि अभी भी मन कहता है कि भोग भोगेंगे तो क्या भोग भोगने से मन की तृष्णा पूरी हो जाएगी? मन की तृष्णा शांत हो जाएगी? मन शांत हो जाएगा? मन में तृप्ति हो जाएगी? नहीं होगी, तो फिर 'शा माटे' किसलिए? कितने भी भोग भोग लेंगे तो भी तृप्ति होने वाली नहीं है तो फिर किसलिए? क्या विचार करना है और क्या विचार हो रहा है? (सभा से किसी ने कहा—गुलाब मुनि जी जैसा बनना है)

आप अभी बोल रहे हो कि हमें तो गुलाब मुनि जी की तरह बनना है तो फिर देर किस चीज की! आ जाओ अभी बना देते हैं। सिर्फ बोलने से

नहीं बना जाता है। बनने के लिए दम-खम चाहिए। 'कायर सुन री तेरा भाई, एक-एक नारी छोड़े।' क्या करेंगे बोलो? ऐसे ही बना जाता है क्या? ये तो शूरवीरों की बातें हैं और ये काम तो शूरवीर ही कर पाते हैं। आंसुओं की एक बूंद गिरी और धन्नाजी ने पूछा कि क्या बात है, तुम्हारी आंखों में आसूं! बड़ी-बड़ी विपत्ति के समय, बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के समय जिस सुभद्रा की आंखों में आसूं नहीं आए, उस आंख में आज आंसू? बहनें गाया करती हैं–

कांई थाने सासू जी सताविया जी, कांई थाने दीनी नणदल गाल,
आंख्यां में आंसू किम बहे जी।

क्या तुम्हें सासू ने सताया है या ननद ने कुछ बोल दिया है? बोलने का मौका मिल सकता है किंतु सुनने का चांस मिले किसको? सुनने वाले होते हैं तो बातें सुनने को मिलती हैं। किसको सुनने की पड़ी है? जब वह कहती है कि मेरा भाई दीक्षा ले रहा है। रोज एक भावज को समझा रहा है। धन्ना जी ने कहा– हैं! यह कोई बात हुई? दीक्षा लेनी है और एक दिन में एक पत्नी को समझा रहा है? यह वैराग की कैसी रीत? सुभद्रा ने कहा कि केवल कहने से क्या होता है। नाथ, कहना बहुत आसान है। यह जीभ हिलती है। इसको हिलने में देर नहीं लगती है। यह जीभ बिना हड्डी की है। इसको मुड़ने में कोई जोर नहीं लगता। बताया गया कि शालीभद्र घर में बैठा रह गया और धन्नाजी चले गए भगवान महावीर के पास। कपड़े बदले या नहीं बदले? कपड़े किसलिए बदलना? कपड़े बदलने से क्या होने वाला है।

शूरां ने लागे वचन ज ताजणां,
कायर ने लागे नहीं कोय, सांभल हो श्रोता...

क्या सुनाऊँ? यहां पर तो सभी डिब्बे का दूध पीये हुए हैं। डिब्बे का दूध पीया हुआ है, शीशी का दूध पीया हुआ है। आपके ऊपर असर होने वाला नहीं है कुछ भी। आजकल डिब्बे का दूध पिलाया जाता है तो संस्कार डिब्बे के अनुरूप ही हो गए हैं। लो ये खड़े हो गए हैं। सावधान! सावधान! जल्दी मत करना। सोच-समझकर करना। यह जोधपुर है जोधपुर। यहां पर लोग थोड़े काठे हैं। यहां से खींच-खींचकर निकालने पड़ेंगे। एक-एक को खींचकर निकलना पड़ेगा। निकाल सको तो बात अलग है, बाकी तो हाथ आने वाले नहीं हैं। आप बोल रहे हो कि यमदूत ही खींचकर ले जाएगा। अब जिसकी जैसी मरजी होगी, वैसा ही होगा। यहां पर आएं तो आइए, आपका स्वागत

है। नहीं तो यमदूत ले जाएगा। यमदूत को राजी रखोगे तो यमदूत ले जाएगा और साधु को राजी रखोगे तो साधु ले जाएगा। अब आपके ऊपर है कि आप किसको राजी रखें? यमदूत को राजी रखेंगे या साधु को राजी रखेंगे, यह विचार कर लेना। आप लोग हंस रहे हो। हंसने वाली बात नहीं है। यह कोई हलकी-फुलकी बात नहीं है। बहुत गहराई की बात है कि हम क्या कर रहे हैं?

यह जिंदगी जाने वाली है और जाएगी। जाएगी, जाएगी। सौ टके जाएगी। किंतु यदि समय रहते हुए हाथ से कुछ कर लिया तब तो हमारी बलिहारी है, क्योंकि एक बार का दांव आदमी को कहां से कहां पहुंचा देता है। एक बड़ा मुनाफा होता है तो सारा दारिद्र्य धुल जाता है। एक बार साधु जीवन का स्पर्श हो गया तो पता नहीं कितने जन्मों के पाप धुल जाएंगे। आप साधु जीवन में स्थिर हों और उसी साधु जीवन में यदि मृत्यु प्राप्त हो जाती है तब तो फाइनल डिसीजन है कि 15 भवों में मोक्ष चले ही जाएंगे। आप बोलोगे कि इतनी जल्दी नहीं है बापजी, क्या करेंगे वहां जाकर? जगह तो रिजर्व है। आज जाएं या कल जाएं? 100 साल के होकर जाएं, हमारी जगह हमें मिलेगी। अतः जल्दी क्या है? देख लो, आपकी जैसी मरजी है। इतना ही कहकर अपनी वाणी को विराम देता हूं।

24 सितम्बर, 2019

4

खाल सिंह की, है सियाल

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे...

'असंखयं जीविय मा पमायए', हमारा जीवन असंस्कारित है। असंस्कारित का अर्थ किया गया है कि जिसको टूटने पर जोड़ा नहीं जा सकता। सांधा नहीं जा सकता। यदि आयुष्य बल, प्राण पूरा हो जाए तो कोई भी शक्ति इस जीवन को जोड़ने में समर्थ नहीं है। इसलिए प्रमाद नहीं करने का उपदेश दिया गया है। आदमी जब कुछ निर्णय नहीं कर पाता है, अनिश्चय में जीता है तो प्रायः उसकी प्रवृत्ति प्रमाद में होती है। जब एक लक्ष्य बन जाता है तो वह लक्ष्य के अनुसार प्रवृत्त होता है। दिशा के अनुसार गतिशील रहता है। लक्ष्य के अनुसार उसकी प्रवृत्ति होती है। किंतु जिसका कोई लक्ष्य नहीं है, जिसका कोई निश्चय नहीं है, अनिश्चय में जो चलता रहता है, उसकी प्रवृत्ति प्रमाद जन्य होती है। उसकी प्रवृत्ति प्रमाद युक्त होती है। भगवान कहते हैं, 'मा पमायए', यानी प्रमाद मत करो। प्रमाद छोड़ो। प्रमाद का त्याग करो। प्रमाद छूटेगा तो हम सही दिशा में आगे बढ़ पाएंगे।

कल मैंने एक बात बताई थी कि आचार्य पूज्य गुरुदेव के सामने एक प्रश्न आया कि जीवन क्या है? 'किं जीवनम्'? उसका उत्तर बताया गया कि **'सम्यङ्निर्णायकं समतामयञ्च यत्तज्जीवनम्'**, अर्थात् जो सम्यक् निर्णय वाला हो, समता से युक्त हो। ऐसा जो जीवन होता है, वह जीवन है। मुख्य रूप से दो बातें बताई गई हैं। एक बात कही गई है कि 'सम्यक् निर्णायकम्' यदि व्यक्ति सही निर्णय करने वाला होता है तो दुविधा में नहीं जाएगा, कठिनाई में नहीं जाएगा।

एक सम्राट ने देखा कि राजकुमार के कई मित्र हैं। कई दोस्त हैं। राजकुमार उनके साथ बहुत घुल-मिलकर रहता है। मुझे उन मित्रों की परीक्षा

लेनी चाहिए ताकि मालूम पड़े कि अपना कौन और पराया कौन? हकीकत में अपना कौन है और कौन व्यक्ति थोड़ी देर के लिए सहयोगी बन रहा है, इसका परीक्षण होना चाहिए। सम्राट ने किसी को बिना कुछ जानकारी दिए एक घोषणा करवा दी कि अमुक दिन राजकुमार को फांसी पर चढ़ाया जाएगा। फांसी की सज़ा दी जाएगी। मृत्युदंड दिया जाएगा।

इधर राजकुमार को पता नहीं कि पिताश्री कैसे नाराज हो गए। क्यों नाराज हो गए और किस कारण से उन्होंने मृत्यु दंड घोषित कर दिया। उसने पूछने के लिए थोड़ा प्रयत्न किया तो सम्राट ने कहा कि मेरे से चर्चा करने की जरूरत नहीं है, तुम अपनी तैयारी रखो। बताया जाता है कि राजकुमार के मुख्य तीन मित्र थे। उसने सोचा कि कुछ बचाव का उपाय करूं। वह पहले मित्र के पास गया और दरवाजा खटखटाया। रात्रि का समय था। मित्र ने कहा कि कौन? उसने कहा, धीरे बोलो, मैं तुम्हारा मित्र राजकुमार। मेरा मित्र? मेरा कैसा मित्र? यदि सचमुच में मेरे मित्र होते तो ऐसी स्थिति में मेरे पास नहीं आते। कहा, तुम दरवाजा तो खोलो एक बार। क्यों दरवाजा खोलूं, किसलिए दरवाजा खोलूं? वह कहता है कि देखो मैं बाल-बच्चे वाला हूं। सम्राट को यदि मालूम पड़ गया कि मैंने तुमको तवज्जो दी है, मैंने तुमको सहयोग दिया है तो पता नहीं मेरे साथ क्या सलूक किया जाएगा? इसलिए अच्छा है कि तुम चुपचाप यहां से खिसक जाओ। चले जाओ। राजकुमार कहने लगा कि मित्र! क्या यही मित्रता है? क्या मित्रता में कोई पारस्परिक प्रेम और स्नेह नहीं होता? क्या मित्रता में एक-दूसरे के दर्द को पीया नहीं जाता है? उस मित्र ने कहा कि आप ज्यादा बातें मत कीजिए। चुपचाप यहां से प्रस्थान कर लीजिए। राजकुमार ने कहा, मैं तो यहां से चला जाऊंगा, कोई बात नहीं है किंतु तुम जरा विचार करो कि इस प्रकार की मित्रता, जिसमें तू जिगरी मित्र रहा है। जिगरी दोस्त रहा है। रात-दिन तुम मेरे साथ रहे हो। दूसरे मित्र मेरे साथ इतने नहीं रहे हैं। मित्र ने कहा कि ज्यादा समय नहीं है। तुम जाते हो या ऊपर से पत्थर फेंकू? राजकुमार ने देखा कि यहां कोई मतलब नहीं है।

वह दूसरे मित्र के पास गया। उसने दरवाजा खोला, भीतर बुलाया। राजकुमार ने जब अपनी बात कही तो उसने कहा कि मित्र मैं तुम्हारे साथ हूं। दिल से तुम्हारे साथ हूं। तुम कहो तो मैं तुम्हें अर्थ का सहयोग कर सकता हूं। घोड़े आदि के सहयोग की आवश्यकता है तो उसका सहयोग कर सकता हूं

ताकि रातोरात दूर-दराज तुम निकल सको। और तो राजा के हाथ है। राजा के हाथ बहुत लंबे होते हैं। मैं उनसे तुमको बचा सकूं, यह तो बहुत कठिन है किंतु मैं अर्थ सहयोग कर सकता हूं। वाहन का सहयोग कर सकता हूं जिससे तुम अपना बचाव कर सको। मेरी दिली भावना तुम्हारे साथ है, किंतु कानून के सामने मेरे हाथ भी बंधे हुए हैं। राजकुमार ने कहा कि भाई अभी पैसे और वाहन की आवश्यकता नहीं है। अभी संरक्षण की आवश्यकता है। मित्र ने कहा कि क्या करूं, इससे बढ़कर तो मैं कुछ कर सकूं, ऐसा लगता नहीं है।

राजकुमार तीसरे मित्र के पास गया। उसने दरवाजा खोला और भीतर बुलाया। जानकारी सभी को हो चुकी थी कि राजा ने यह घोषणा की है। उसने कहा कि रात में आपका आना कैसे हुआ? राजकुमार ने कहा कि तुमने नहीं सुनी पिताजी की घोषणा? मित्र ने कहा कि उन्होंने जो घोषणा की है, मैंने सुन ली है किंतु मैं जानना चाहता हूं कि आपका अपराध क्या है? राजकुमार ने कहा कि मुझे कुछ भी पता नहीं है तो मित्र ने कहा कि ये कैसे हो सकता है? अपराध की जानकारी दिए बिना किसी को मृत्युदंड कैसे दिया जा सकता है? राजकुमार ने कहा कि अभी चर्चा का समय नहीं है। मैं संरक्षण चाहता हूं। सुरक्षा चाहता हूं। उसके लिए तुम क्या कर सकते हो? मित्र कहता है कि ये घर आपका है। किसी प्रकार का संकोच और चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ कानून मैं भी जानता हूं। मैं भी राजसभा का सदस्य हूं, इसलिए घबराने की कोई बात नहीं है। हो सका तो मैं इसके लिए राजा से प्रयत्न करूंगा। आप आराम से विराजिए। चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।

वह सम्राट के पास गया और कहा कि मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है। कुछ बात करनी है। राजा ने कहा कि बोलो क्या बात करनी है? उसने कहा, मैं सबसे पहले यह जानना चाहता हूं कि राजकुमार का अपराध क्या है, जिसके कारण से आपने उसको मृत्युदंड दिया है? राजा ने कहा, तुमको क्या पंचायत पड़ी है? मृत्युदंड मैंने दिया है। मृत्युदंड देने वाला मैं हूं। तुम पंचायत करने वाले कौन होते हो? उसने कहा कि राजन्! वैसे मैं कुछ भी नहीं होता हूं किंतु मैं भी राजसभा का सदस्य हूं, इसलिए वस्तुतः नैतिकता क्या है? नीति क्या है और किस एवज में राजकुमार को यह दंड दिया गया है, यह जानकारी होनी चाहिए। आपने केवल एक घोषणा की है। केवल आदेश निकाला है किंतु राजकुमार के किसी अपराध का उसमें कोई कथन

नहीं किया। राजकुमार का ऐसा क्या अपराध है, जिसके कारण से उनको मृत्युदंड दिया जाना आवश्यक हो गया।

राजा ने कहा कि मेरे सामने ज्यादा नौ-छः करने की आवश्यकता नहीं है। ज्यादा लंबी-चौड़ी बात करने की आवश्यकता नहीं है। मैं राजा हूं। मैं चाहे जैसा कर सकता हूं। मेरे को तुम्हें पूछने का कोई अधिकार नहीं है। तुमने बातें ज्यादा ही पूछनी शुरू कर दी है यदि और ज्यादा बातें पूछी या तुमने ज्यादा कानून-कायदे पूछे तो समझ लो कि तुम्हारी भी राजसभा से छुट्टी हो जाने वाली है। इतना ही नहीं तुम्हें देश निकाला भी दिया जा सकता है। तुम्हारी सारी संपत्ति राज्याधीन की जा सकती है। उसने कहा, राजन्! जो भी हो, किंतु न्याय तो न्याय ही होना चाहिए। आप यदि नहीं बताना चाहते हैं तो आप यह निश्चित रूप से मान लीजिए कि मैं राजकुमार को किसी भी हालत में फांसी पर चढ़ाने नहीं दूंगा। पहले आप उसका अपराध बताइए अन्यथा उनको आप फांसी पर नहीं चढ़ा सकते हो। बात काफी खिंचाव में आ गई। आप सोचो कि राजा से इतनी जिरह कौन करेगा। राजा से इतनी बात कौन करेगा? हर कोई आदमी बोल सके, बहुत मुश्किल है। जहां राजा बात सुनने को तैयार नहीं वहां यहां तक बात हो जाना कि यदि आप राजकुमार के अपराध को नहीं बताते हो कि मृत्युदंड का हेतु क्या है, कारण क्या है तो मैं राजकुमार को फांसी पर नहीं चढ़ाने दूंगा, उसे मृत्युदंड देने नहीं दूंगा। राजा ने कहा, जा-जा, तुम्हारे जैसे सौ आएंगे। मैं तुम्हारी कोई बात सुनने वाला नहीं हूं और अपनी सलामती चाहते हो तो चुपचाप बैठ जाओ। ये चर्चाएं हो गईं। इधर राजा को मालूम पड़ा कि राजकुमार महलों में नहीं है तो राजा ने खोज करवाई।

पहले मित्र के पास राजा के कर्मचारी पहुंचे। उसने कह दिया कि मेरे पास आया था पर मैंने ऐसा कर दिया, वैसा कर दिया। इस तरह उसने अपनी बात हांक दी कि मैं तो राजा के साथ ही हूं। जरूर कोई न कोई अपराध किया होगा राजकुमार ने, नहीं तो सम्राट अपने पुत्र को क्यों दंडित करते। वह मेरे पास आया था। कई बातें करने लगा पर मैंने उसे साफ-साफ कहा कि मैं तुम्हारी कोई बात सुनने वाला नहीं हूं। जो राजा का अपराधी है वह मेरा अपराधी है। मैं उसको कभी-भी, कोई-भी सहयोग देने के लिए तैयार नहीं हूं। राजा के कर्मचारी उसका बयान ले गए। दूसरे मित्र के पास गए, फिर तीसरे मित्र के पास गए। तीसरे मित्र ने कहा कि राजकुमार मेरी देख-रेख में है

किंतु मैं उसे राजा को नहीं सौंप सकता। समझ लीजिए कि वह शरणागत है। मैंने उनको आश्वासन दिया है, इसलिए मैं उन्हें नहीं सौंप सकता आप लोगों को। उसको कहा गया कि देखो, विचार कर लो। उसने कहा कि मैंने बहुत विचार कर लिया है। कहानी में यहां तक बताया गया है कि तोप लगाकर रख दी गई। युद्ध के बादल छाने लगे। उस मित्र ने भी बराबर दो-दो हाथ करने की तैयारी कर ली। एकदम चरम स्थिति तक बात हो गई। केवल राजा का ऑर्डर होना ही शेष है। वहां तक की नौबत आ गई। पर वह मित्र भी पूरा सजकर तैयार है। गोला-बारूद लेकर युद्ध करने की पूरी तैयारी में है।

इतने में राजा ने उस मित्र को बुलाया और उससे कहा कि देखो, अभी भी मान लो। यह लास्ट मूवमेंट है। अंतिम मौका है। यदि अभी-भी नहीं माने तो कुछ भी हो सकता है। मित्र ने कहा कि स्वामी नाथ, राजन्! आप कहें, वह सब मंजूर है। हमने आपका अन्न खाया है। हमने आपका नमक खाया है। इसलिए हम कभी-भी गलत रास्ते नहीं जा सकते। आज तक आपने हमको न्याय और नीति सिखाई है। हम उसी न्याय-नीति के आधार पर चलेंगे। राजा ने कहा कि इसे अरेस्ट कर लो। उस मित्र को अरेस्ट कर लिया गया। उसने कहा कि भले ही आप अरेस्ट कर लीजिए किंतु इतने मात्र से गाड़ी रुकेगी नहीं। सारी घटना हो चुकी। राजा को परीक्षा करनी थी कि कौन मित्र वस्तुतः मित्रता निभाने वाला है। उन मित्रों को भी बुलाया गया। एक को पहले ही अरेस्ट कर रखा था। उन दो मित्रों को भी बुलाया। फिर सबसे पहले वाले मित्र को आश्वासन दिया और पीठ थपथपाते हुए कहा कि तुमने बहुत अच्छा काम किया है। राजा के अपराधी को, राजा के द्वारा जुर्म प्राप्त अपराधी को तुमने शरण नहीं दी। पनाह नहीं दी। तुमने उसको अपने घर में प्रवेश नहीं करने दिया। वाह! धन्य हो। भीतर तो राजा समझ रहा था कि तुम्हारे जैसा कुटिल व्यक्ति दूसरा नहीं है। रात-दिन तुमने राजकुमार की थाली में खूब खाया। रात-दिन राजकुमार के साथ तुमने खूब मौज उड़ाई। राजकुमार ने तुम्हारे लिए क्या-क्या खर्च नहीं किया। किंतु ऐन टाइम पर तुमने मुंह मोड़ लिया। तुम्हारी नमक हरामी मैं बहुत अच्छी तरह से जान रहा हूं किंतु अभी मुझे थोड़ा धैर्य रखना है। दूसरे मित्र को राजा ने थोड़ी डांट-डपट लगाई और अंततोगत्वा सम्राट ने सारे पत्ते खोल दिए और कहा कि मैं यह परीक्षण करना चाहता था कि कौन मित्र राजकुमार का सच्चा मित्र है और कौन दिखाऊ मित्र है? कौन-सा मित्र सच्चा मित्र निकला? कौन-सा मित्र? (प्रत्युत्तर–तीसरा)

आपके कितने मित्र हैं? मित्र हैं या नहीं हैं? सुरेश जी! आपके कितने मित्र हैं? (प्रत्युत्तर– 10) आप कह रहे हो कि दस हैं। अरे वाह! राजकुमार के तो तीन ही मित्र थे और आपके दस मित्र हैं। नित्य मित्र कितने हैं? रोज आपके साथ थाली में जीमने वाले, रोज दोस्ती लगाने वाले कितने हैं? तीन हैं। रोज वाले तीन हैं और कभी-कभी वाले तीन हैं और तीसरे मित्र की तरह तीन मित्र हैं और एक एक्स्ट्रा है। यह एक रूपक है। इसमें बताया गया कि शरीर नित्य-मित्र है। यह रोज का हमारा मित्र है। साथी है। हमने सबसे ज्यादा खिलाना, पिलाना, सहलाना किसको किया? राजकुमार का पहला मित्र रोज राजकुमार के साथ खाता था और यह शरीर हमारे साथ खा रहा है या हमारे से अलग रह रहा है? मेरे खयाल से हम जितना ध्यान आत्मा पर नहीं देते हैं, उतना ध्यान शरीर पर देते हैं। मदन मुनिजी म.सा. कितनी बार आपको अपील कर चुके कि महीने में दो दिन ग्यारह सामायिक करना। दया नहीं, पौषध नहीं, तो ग्यारह सामायिक दो दिन करना। एक महीने में दो बार होना चाहिए। कितने हाथ खड़े हुए थे कल? आज कितने हाथ खड़े हो जाएंगे? कल भी हाथ खड़े हुए, वे हमारे सामने हैं और जो हाथ खड़े होंगे, उनको भी हम जान रहे हैं कि कितने हाथ खड़े हो सकते हैं? कुछ लोग हाथ खड़ा करना चाहते भी होंगे किंतु मन में संकोच है कि हर बार होगा या नहीं होगा?

पच्चक्खाण लेना एक बात है और निभाना दूसरी बात है। किंतु यह परीक्षण है कि हम वस्तुतः कितना समय किसके लिए नियोजित करते हैं? शरीर और परिवार के लिए हमारे पास पूरा समय है। कितनी भी कठिनाई होगी किंतु किसी विवाह-शादी का कार्ड या मौत-मरघट का बुलावा आ गया तो कुछ भी हो एक बार बैठने के लिए तो जाना ही पड़ेगा। कार्ड दिया है तो एक बार जाना ही पड़ेगा। लिफाफा देना ही पड़ेगा। भले ही आधे घंटे के लिए जाएंगे। वहां समय निकलता है या नहीं निकलता है? और सामायिक के लिए? पच्चक्खाण लिए हुए हैं तो ठीक है और पहले से अभ्यास पड़ गया इसलिए हो रहा है। बाकी हम धर्म ध्यान के लिए कितना समय निकालते हैं? अभी दिव्यदर्शन मुनिजी म.सा. कुछ बातें आपके सामने व्यक्त कर रहे थे। मुनि की चर्याओं की बातें आपके सामने प्रस्तुत कर रहे थे। बहुत ही विचित्र वातावरण बना हुआ है। हम नहीं चाहते हैं कि अपने मुंह से कुछ बोलें किंतु हालात कैसे हो चुके हैं? इसकी जवाबदारी किस पर? श्रावकों पर? हमें

मोबाइल चाहिए, लैपटॉप चाहिए। किससे मिलती है हमको ये चीजें? हम बड़े खुश हो जाते हैं। कहते हैं कि म.सा. हम धन्य हो गए। हमें इतना बड़ा लाभ मिल गया। म.सा. ने मेरे पर इतना विश्वास किया। म.सा. ने किस पर यह विश्वास किया? यहां और किसी को मौका नहीं दिया। यह मौका किसको मिला? धन-भागी कौन हो गया? कौन हो गया, धन-भागी?

कल रात्रि में संत एक घटनाक्रम सुना रहे थे कि कोई महासती जी, कपड़े धोने का सर्फ लेने के लिए किसी घर पर आ गई। किसी भी संप्रदाय की हो, मैं नाम नहीं ले रहा हूं। अच्छी क्वालिटी का सर्फ 90 रुपये का होगा। उन्होंने मांगा तो उस व्यक्ति की दुकान का ही माल था उसने दे दिया। दूसरी बार फिर आए, फिर वही मांगा तो उसने दे दिया। उसने विचार किया कि मैं तो गरीब दुकानदार हूं। रोज-रोज ऐसा काम होगा तो मैं मर जाऊंगा। कहते हैं, दो बार तो दे दिया। फिर उस आदमी ने एक पैकेट खाली किया और उसमें उसने सामान्य सर्फ भर कर वह पैकेट तैयार करके रख दिया। तीसरी बार जब वह पैकेट ले गई साध्वी तो चौथी बार वापस आई ही नहीं। अब आवे किस रूप में? आवे कैसे? बहुत-ही हालात खराब हो रहे हैं।

ये दशा पता नहीं हमें कहां तक ले जाएगी। लोग कभी-कभी कहते हैं कि जैनियों की संख्या बहुत कम पड़ गई है। कितनी है जैनियों की संख्या? आप बोल रहे हो कि 50 लाख है। ये नकली आंकड़े होंगे। असली आंकड़े कुछ और होंगे। मान लो कि 50 लाख नहीं है। एक करोड़ मान लो। बहुत से लोग जैन नहीं लिखाते हैं जनगणना में। कोई सांखला लिखा देते हैं, चौपड़ा लिखा देते हैं। कोई कुछ लिखा देते हैं। जैन नहीं लिखाते होंगे। 50 लाख जैन हैं तो भला और एक करोड़ हैं तो भला। पर एक करोड़ में जैनी कितने? यहां बैठने वालों में जैनी कितने हैं? आप कह रहे हो कि सब जैनी हैं। क्या पहचान है जैनी की? जैनी के सींग होते हैं या पूंछ होती है? नहीं मालूम क्या होती है? क्या पहचान होती है? किससे पहचान करें कि जैनी है? जैनियों की पहचान दूभर हो गई है।

आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. इंदौर विराज रहे थे और महू में सर्वोदयी समाज का अधिवेशन था। विनोबा भावे वहां आए हुए थे। मालूम पड़ा तो वे इंदौर भी आ गए। आचार्य श्री की सेवा में बैठे। बात हुई। बात ही बात में उन्होंने कहा कि 'आचार्य श्री, आप यह मान रहे होंगे कि जैनियों

की संख्या बहुत कम हैं। किंतु भगवान महावीर का सिद्धांत मानने वालों की संख्या कम नहीं है। भगवान महावीर के सिद्धांत आज दूध में मिश्री की तरह घुलते हुए चले जा रहे हैं। यदि जैन समाज, भगवान महावीर के सिद्धांतों का सही ढंग से पालन करे तो एक अलग-थलग पूरा समाज नजर आने लग जाए।' अवश्यमेव हमारे में कुछ विशेषता है। यदि हम जैनी हैं तो हमारे में निश्चित रूप से विशेषता है। हम आम जन से, आम पब्लिक से कुछ हटकर हैं। आम पब्लिक में फिर भी हो सकता है कि अनैतिक आचरण करने वाले हो जाएं। झूठ, छल-कपट करने वाले हो जाएं। प्रपंच करने वाले हो जाएं किंतु क्या जैनी अनैतिक आचरण करने वाला होगा? क्या जैनी अप्रमाणिक आचरण करने वाला होगा? क्या जैनी किसी के साथ धोखाधड़ी करेगा? क्या जैनी किसी के साथ में छल-कपट करेगा? यदि किसी के साथ धोखाधड़ी, छल-कपट, प्रपंच आदि होता है तो उसने जैन धर्म को समझा क्या?

जैन धर्म क्या है? किसी जैनी माता की कुक्षी से जन्म लेने मात्र से क्या जैनी बन गया? जैनी उसे कहा जाता है जो जिनेश्वर देवों की आमना लेकर चलता है। जो जिनेश्वर देवों के सिद्धांत में जीता है, वह जैनी होता है। इस परिभाषा को यदि लागू किया जाएगा तो जैनी कितने प्रतिशत बचेंगे? मेरे खयाल से प्रतिशत बहुत कम ही बचेगा। क्योंकि जिधर देखें, लड़ाइयां-झगड़े हैं। क्या है यह? (जोर देते हुए) क्या है? हम आम जन से अलग हटकर कहां जी रहे हैं? **'सम्यङ्निर्णायकं समतामयञ्च यत्तज्जीवनम्'**, वह जीवन कहां है? वह जीवन हमें कहां मिलेगा? कहां ढूंढ़े उसे? आनन्द श्रावक, कामदेव श्रावक की जीवन शैली में 'नैतिकता' कूट-कूटकर भरी हुई थी। उनका आचरण अनैतिक नहीं था। पैसा उनके लिए प्रमुख नहीं था। पैसा उनके लिए प्रधान नहीं था। पैसा कभी प्रधान होना नहीं चाहिए। जीने के लिए पैसे की जरूरत हो सकती है किंतु पैसा हमारे सिर पर हावी नहीं होना चाहिए।

आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. ने अपने व्याख्यानों में कहा है कि जिस दिन पैसा सिर पर हावी हो जाएगा, उस दिन धर्म, संस्कृति छूट जाएगी। हमारे सिर पर धर्म ही होना चाहिए। धर्म सिर पर रहेगा, उसका अंकुश रहेगा तो वह गलत रास्ते पर जाने नहीं देगा। यदि पैसा सिर पर हावी हो जाएगा तो वह उसको सही रास्ता नहीं दिखाएगा। वह गलत रास्ते ही जाएगा। हम सोचें और विचार करें कि वस्तुतः हम क्या कर रहे हैं? कैसा

जीवन जी रहे हैं? जैनत्व क्या है इसे यदि हमने नहीं समझा तो फिर हम क्या जीएंगे? इसलिए हमको समझना जरूरी है।

अभी तीन मित्रों का रूपक सुना। इस शरीर को रोज खिलाया गया। क्या कमी रखी खिलाने-पिलाने में? कुछ भी तो कमी नहीं रखी। फिर भी यह एक दिन ऐसे साथ छोड़ेगा कि मालूम नहीं पड़ने देगा। एकदम अपने आपको अलग कर लेगा। 'जहाँ देह अपनी नहीं, वहाँ न अपना कोय।' जिस शरीर को हमने इतना सहयोग दिया, इतना कुछ किया किंतु वह भी अपना नहीं तो फिर हम किसको कहें कि हमारा है? कौन है हमारा? बोलो, कौन है हमारा? कौन है अपना? (प्रत्युत्तर– धर्म) आप लोग बोल रहे हो कि धर्म है अपना। आप मेरे सामने तो बहुत अच्छा-अच्छा बोल देते हो कि धर्म अपना है, पर धर्म है क्या, यह तो बताओ? धर्म किसको कहें? खाली मुंहपत्ती बांधकर सामायिक करना ही धर्म नहीं है। जीवन में नैतिकता नहीं है तो धर्म कहां से आएगा? जीवन में प्रमाणिकता नहीं है तो धर्म कहां से आएगा? जीवन में ईमान नहीं है, जीवन में सत्य नहीं है तो धर्म कहां से आएगा? हम ऐसे-ऐसे श्रावकों के वृत्तांत सुनते हैं जो अपने लड़के के लिए झूठ नहीं बोले। राजा के सामने बोल दिया कि मेरा लड़का ही चोर है और इसी ने चोरी की है। लड़का कई जिंदगियों में मिल जाता है। लड़का बहुत सारी जिंदगियों में मिला है किंतु सत्य कब मिला है?

क्या सत्य हर जन्म में मिला है? क्या हम हर जन्म में सत्य की पहचान कर पाए हैं? क्या हर जन्म में सत्य-ईमान को आपने जीया है? बड़े मुश्किल से यह आपको मौका मिला है, जिसमें सत्य को समझ सके हैं। सत्य को जान पाए हैं। यदि इस सत्य को भी हाथ से गंवा दिया, थोड़े-से पैसे के पीछे, थोड़े से परिवार के पीछे, थोड़े से परिजन के पीछे तो फिर क्या बचेगा? किसे कह सकोगे कि यह मेरा है? ऐसे-ऐसे श्रावक हुए हैं, जिन्होंने विचार कर लिया कि तन जाए तो जाए किंतु मेरा सत्य कभी नहीं जाना चाहिए।

सम्राट ने उन तीनों का परीक्षण कर लिया और उन्होंने अनुभव कर लिया कि सच्चा मित्र कौन है? सच्चे मित्र के सामने उन्होंने काफी कुछ स्पष्ट कर दिया कि तुमको हटा दिया जाएगा। यह कर दिया जाएगा, वह कर दिया जाएगा। फिर भी वह कहता है कि कुछ भी हो जाए, मैं नैतिकता नहीं छोड़ सकता। मैं राजसभा के पद को छोड़ सकता हूं, मैं मंत्री पद को छोड़ सकता हूं। अपने जीवन को भी छोड़ सकता हूं किंतु क्या नहीं छोड़ सकता? और

हम क्या छोड़ सकते हैं? हम क्या छोड़ सकते हैं? आप बोलोगे कि बापजी, धर्म आराधना कर लेंगे, यदि कोई गलती हो गई तो 'मिच्छा मि दुक्कड़ं' कर लेंगे और प्रायश्चित्त कर लेंगे। किसका प्रायश्चित्त कर लोगे?

तीन मित्रों की कहानी ने स्पष्ट कर दिया कि सच्चा मित्र कौन हो सकता है? न शरीर सच्चा मित्र है और न परिवार वाले सच्चे मित्र हैं। पहला मित्र शरीर है और दूसरा मित्र परिवार वाले हैं जो कठिनाई के समय में आपको कुछ सहारा लगा सकते हैं, सहयोग दे सकते हैं किंतु आज तो वह भी आशा मत करना। आशा करना दुराशा मात्र होगी। आशा मत करना। कभी प्रयोग करना हो तो एक बार आप अखबार में झूठा समाचार छपाएंगे, अखबार में झूठी खबर आ जाए कि हाथ ऊंचे हो रहे हैं, पांव डगमगा रहे हैं। समझ गए आप! मतलब क्या होगा। फिर आप अपने भाई के पास जाओ, बहनोई के पास जाओ, चाचा के पास जाओ, मामा के पास जाओ और कहो कि बड़े संकट में आ गया हूं, हाथोंहाथ पांच करोड़ रुपये चाहिए। कौन-कौन सहयोगी बनेगा, देखना।

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहन कहे मेरा भैय्या,
घर की जोरू यों कहे, सबसे बड़ा रुपय्या।

यह हकीकत है। यदि बाजार में किसी की हवा निकल गई, बाजार में बात फैल गई कि ऐसा होना है। चाहे नीरव मोदी को लो, चाहे माल्या को लो। किसी का भी नाम लो। उनकी हवा निकली या नहीं निकली? क्या हुआ, मैं नहीं कह सकता हूं किंतु हकीकत में वैसी बात आ जाए, झूठी हवा निकल जाए फिर वह व्यक्ति अपने भाई के पास, जीजा जी के पास, मामा के पास, चाचा के पास, जितने भी रिश्तेदार हैं, सबके पास घूम जाए। कितने लोगों का सहयोग मिलेगा?

आज करोड़ों में जीने वाला एक व्यक्ति साधुमार्गी जैन संघ में श्रावक के रूप में जीता है। आज उसके पास करोड़ों की प्रोपर्टी है। मैं नाम नहीं ले रहा हूं। उसने अपने दर्द को एक बार बयां किया कि गुरुदेव इन बड़े-बड़े सब लोगों को मैंने देखा है। मेरा रिलेशन, रिश्ता-नाता बहुतों से है। एक बार हमारी हालत डाउन हो गई। आवाज बाहर नहीं आई किंतु भीतर ही भीतर खुसर-फुसर होने लगी। ऐसे समय में मैंने किन-किन के सामने हाथ नहीं जोड़े, किन-किन के सामने हाथ और कटोरा नहीं फैलाया? लोग कहते, भाई साहब तैयार हूं, लेकिन यह कठिनाई है, वो कठिनाई है, वो कठिनाई

है। वो सारी कठिनाई तब आती है जब हमें कुछ करना नहीं होता है। आज यदि आपको लगता है कि यह आदमी सही है और इसको पांच करोड़, दस करोड़ देने हैं तो आप कहीं से निकाल कर ले आते हैं। दस करोड़ बाजार से लाकर दे दोगे। और यदि हवा फैल जाए तो फिर कितना सहयोग करने के लिए तैयार हो? अरे! लोग कहते हैं कि डूबते को तिनके का सहारा है लेकिन डूबते हुए को यदि तिनका मिल जाये तो उस तिनके को भी हम उसके नीचे से निकालने की कोशिश करेंगे। छोड़ेंगे नहीं कि तिनका तुम्हारे पास क्यों रह जाए?

एक आदमी मर गया। बड़ी दुविधा में मरा बेचारा। बहुत गरीबी में मरा। काफी गरीबी में मरा। कई लोग उससे पैसे वसूलने वाले थे। लोगों ने सोचा कि कहीं न कहीं दबा हुआ होगा धन। जब गए, वहां पर एक थैली मिली। पुलिस भी पहुंच गई। थैली खोली गई तो उसमें वसीयत लिखी हुई थी। लोगों ने कहा कि पढ़ो, कुछ भी निकले हम सब लोग बराबर बंटवारा करने को तैयार हैं। उसमें लिखा था कि जिनकी बदौलत मैं यहां तक पहुंच चुका हूं, अब मैं उनसे एक और गुजारिश करता हूं कि वे श्मशान तक पहुंचा दें। क्या लिखा? आप तो अभी हंस रहे हो? क्या लिखा था? जिनकी बदौलत यहां तक पहुंच गया, जिनको ब्याज देते-देते मेरे जूते घिस गए। ब्याज देते-देते कपड़े घिस गए। कपड़े फट गए और यह हालत हो गयी। यह दशा मेरी जिनकी बदौलत हो चुकी है, अब वे थोड़ा रहम और करें और मुझे सहयोग देकर श्मशान घाट तक पहुंचा दें। पुलिस वालों ने कहा ये है वसीयत। जो लोग आए हैं बटोरने के लिए। यह वसीयत लिखी हुई है। उठाओ इस लाश को और श्मशान तक पहुंचाओ। बहुत मुश्किल मामला है। बहुत मुश्किल कार्य है। मरे हुए आदमी को छोड़ने वाले नहीं हैं हम। क्यों नहीं छोड़ने वाले हैं? मेरा पैसा, मेरा पैसा और कितना खा लोगे पैसों को? हाय पैसा! हाय पैसा! इस जिंदगी में पैसे की प्यास बुझेगी या नहीं बुझेगी? यह प्यास आपको भी कष्ट पहुंचाने वाली है? मृत्युशय्या पर इस प्यास की बदौलत आपको भी पहुंचना पड़ेगा।

बंधुओ! आप विचार करें। पहला मित्र यह शरीर है और दूसरा पारिवारिक जन हैं, जिसके लिए कह सकते हैं कि वे थोड़ा सहयोग दे दें। हो जाए चौथा आरा, सुकाल जिसमें राम-भरत जैसे भाई मिल जाएं और सहयोग देने वाला कोई मिल जाए। तीसरा मित्र धर्म है। धर्म, जो अपने

जीवन को जोखिम में डालने के लिए तैयार है। किंतु आपकी रक्षा करने के लिए कटिबद्ध है। ऐसे तीसरे मित्र के रूप में आचार्य हैं, उपाध्याय और संत हैं। ऐसे धर्म को छोड़ना या स्वीकार करना? यदि ऐसे धर्म को छोड़ा तो फिर क्या हो सकता है? तीसरे धर्म मित्र को छोड़ने का अर्थ है जीवन को संकट में डालना। धर्म मित्र रहेगा तो जीवन की आब रहेगी। धर्म निकल गया तो जीवन की आब पता नहीं कहां चली जाएगी? बोलो, कहां चली जाएगी? जीवन की आब रहेगी या चली जाएगी? जीवन की आब रहना मुश्किल है। धर्म ही ऐसा है, जो जीवन को सही दिशा देता है। जीवन को सही दिशा दिखाता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव विहार करते हुए लीडी पहुंचे। ब्यावर के पास लीडी गांव है। वहां खींचा परिवार के काफी घर हैं। अभी वे ब्यावर आ चुके हैं। जिस समय गुरुदेव पधारे, उस समय काफी घर थे। उनमें लगभग 100 वर्षों से झगड़ा था। 100 वर्षों में कई बार प्रयत्न हुए। कितनों के द्वारा प्रयत्न हुए किंतु कभी-भी वह शुभ क्षण नहीं आ पाया। एक दिन निकला, दूसरा दिन निकला। तीसरे दिन आचार्य देव ने अयोध्या नरेश और काशी नरेश की कहानी इतने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत की कि लोग हिल गए और अंततोगत्वा उन्होंने आचार्य देव के चरणों में पुराना सारा 100 वर्षों का झगड़ा डाल दिया और आपस में प्रेम की बयार चालू कर दी।

'सम्यङ्निर्णायकम्', सम्यक् निर्णायक कैसे होता है? यह सम्यक् निर्णायक की अवस्था आचार्य पूज्य गुरुदेव के द्वारा की गई। गुरुदेव का चिंतन है कि मनुष्य बदलता है। प्रसंगों पर बदल जाता है। अवसर आता है, परिस्थितियां बदलती हैं तो आदमी बदल जाता है। बदलना कोई बड़ी बात नहीं है। मनुष्य बदलता है, किंतु साधुओं के सान्निध्य से व्यक्ति जल्दी बदल सकता है और वही बात लीडी में घटित हुई कि आचार्य देव के उस मार्मिक उद्बोधन से, अयोध्या नरेश और काशी नरेश की कहानी के उद्बोधन से ऐसा प्रसंग बना, ऐसा प्रभाव हुआ कि सारे लोग उसी क्षण क्षमा याचना करते हैं और उसके बाद से सबका बदला हुआ जीवन है। सारे लोग साथ बैठकर खाना खा रहे हैं और सारा विषमय जीवन, जो पहले विषाक्त वातावरण था, उस सारे को त्यागकर झगड़ा खत्म कर दिया।

उन्होंने शांति की बयार चालू कर दी। यह है समतामय जीवन जीने का निर्णय। हम अपने आप में अभ्यास करेंगे। यह सच्चे मायने में जैनी बनने

का प्रयत्न है। ऐसा प्रयास करें तो ही हमारा उद्धार हो सकता है और हम कल्याण के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं। जैन कुल में जन्म लेने मात्र से उद्धार होने वाला नहीं है। जो सच्चा जैनी बनेगा, उसके जीवन का उद्धार, कल्याण होना सुनिश्चित है। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूं।

पुनश्चः–

उधर, गुलाब मुनि जी म.सा. का संथारा भी चल रहा है। आज संथारे का कौन-सा दिन है? आज संथारे का पन्द्रहवां दिन है। आज सुबह काफी देर तक विराजे हुए भी रहे। कहते हैं कि बैठा हूं, सोना नहीं है। करीब घंटा भर तक विराजे रहे होंगे।

हमें क्या करना? कल तो महीने में 10 दिन रात्रि भोजन का त्याग किया था। आज यह करना है कि महीने में 10 दिन तक कच्चा पानी नहीं पीना। घर में रहते हुए, घर की बाउंड्री में महीने में 10 दिन कच्चा पानी नहीं पीएंगे। जो भी पच्चक्खाण लेना है खड़े हो कर पच्चक्खाण ले लो।

25 सितम्बर, 2019

5

प्रज्ञा से धर्म समीक्षा

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे...

प्रमाद मत करो। क्यों नहीं करना प्रमाद? 'असंखयं जीविय मा पमायए', तुम्हारा जीवन असंस्कारित है। थोड़ी देर के लिए हम विचार करते हैं कि अभी मनुष्य जीवन असंस्कारित है और आगे बनने वाले जन्मों में जो होगा वह भी असंस्कारित ही होगा क्योंकि वहां भी लिमिटेड आयु होगी और वह भी टूट जाएगी। हो सकता है बीच में नहीं टूटे किंतु एक दिन टूटेगी, यह तो फाइनल है। सदा-सदा के लिए हम जीवित रहने वाले नहीं हैं।

जब सदा के लिए जीवित रहने वाले नहीं हैं तो हमें जो थोड़ा-सा समय मिला है, थोड़ा-सा अवकाश मिला है उसका लाभ उठाना चाहिए या उसको यूं ही गंवा देना चाहिए? वह यूं ही नहीं चला जाए, इसलिए शास्त्रकार कहते हैं 'मा पमायए' यानी इसमें प्रमाद मत करो। यदि इसमें तुमने प्रमाद कर लिया तो जो विशेष कुछ करना है, वह कब करोगे? बहुरि करोगे कब? विशेष कब कर पाओगे? 24 घंटे का समय हमारे पास होता है। न इससे ज्यादा मिलेगा और न कभी मिला है। जब भी सूर्य उदय होगा और वापस दूसरे दिन उदित होगा तो 24 घंटे ही हमको मिलेंगे। जो करना है, इन 24 घंटों में ही करना है। इससे ज्यादा समय नहीं है। इससे ज्यादा अवकाश नहीं है। जिंदगी चाहे कितनी-भी लंबी मिल जाए, सौ वर्ष मिले जाए या हजार वर्ष मिल जाए।

भगवान महावीर के समय लगभग सौ वर्ष की आयु होती थी। पार्श्वनाथ भगवान के समय ढाई सौ वर्ष और अरिष्टनेमि भगवान के समय हजार वर्ष के लगभग आयु होती थी। और पीछे जाएं तो आयुष और लंबी होती थी। आयु कितनी भी लंबी हो किंतु कितने समय में वह कार्य करने में समर्थ हो सकता है जिसके लिए बार-बार हमें कुछ नहीं करना पड़े? वर्षों तक

भी साधो तो साधते रहोगे और थोड़े वर्षों में भी हम उसका लाभ उठा सकते हैं। कोई सोचे कि अब क्या है? मैंने 50 वर्ष निकाल दिए, 60 वर्ष निकाल दिए, 70 वर्ष निकाल दिए। कितने वर्ष निकाल दिए यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारे हाथ में कितने दिन हैं।

अरिष्टनेमि भगवान के समय एक हजार वर्ष की उम्र होती थी। गौतम राजकुमार ने उनके पास दीक्षा ली। साधु जीवन स्वीकार किया। संयम स्वीकार किया। उन्होंने कितने वर्षों तक संयम पाला? जाने दो गौतम को भी। आते हैं हम गजसुकुमाल मुनि के जीवन वृत्त पर। कितना समय मिला था उनको? कितने समय में कार्य पूर्ण हो गया? (सभा–एक दिन) आप लोग बोल रहे हो कि एक दिन मिला। अरे! एक दिन भी कहां मिला? एक दिन भी किसको कहते हैं? कुछ घंटे मिले और कुछ घंटों में ही उन्होंने अपने आपको साध लिया। उतने घंटे हमारे पास हैं या नहीं है? (प्रत्युत्तर–है) नहीं कह सकते हैं किंतु विश्वास तो करके चलते हैं कि गजसुकुमाल मुनि को दीक्षा के बाद में जितने घंटे मिले, उतने घंटे हमें भी मिल रहे हैं। संभावना है मिल जाएंगे।

संभावना यह भी कर लेंगे कि अर्जुन अणगार को जितना समय मिला, उतना हमारे पास भी होगा। 6 महीने में उन्होंने अपने आपको साध लिया और कुछ ही घंटों में गजसुकुमाल ने स्वयं को साध लिया। ऐसी क्या साधना थी, ऐसा क्या उपाय था कि कुछ ही घंटों में उन्होंने अपना काम समेट लिया।

एक आदमी किसी गांव में, किसी शहर में, किसी क्षेत्र में जाकर दुकान लगाता है। जमाते-जमाते भी दो-चार साल लग जाते हैं। कितना टाइम लग जाता है दुकान जमाने में? हो सकता है किसी की पुण्यवानी पिछले जन्म की अच्छी हो तो जल्दी भी जम जाये, नहीं तो जमाते-जमाते दो-चार साल लग जाते हैं। दुकान जमने का मतलब कि चारों तरफ खूब नाम हो गया है। खूब ग्राहक बन गए, खूब व्यापारी बन गए और दिन-रात धुआं-धार दुकान चल रही है। दुकान चलाते हुए उसने कितना विस्तार कर लिया, कितना काम फैला दिया। अब उसको वापस समेटना हो तो कितना समय लगेगा? दुकान को अवेरने में कितना टाइम लगेगा? कितना समय लगेगा? दुकान को अवेरने में समय लगता है या नहीं लगता? वह सोचे कि इस शहर से दुकान को उठाकर किसी दूसरे शहर ले जाना है या यहां से हटानी है तो कितना समय लग जाएगा? उस दुकान को अवेरने में कितना समय लग

सकता है, हम नहीं कह सकते हैं किंतु हमारी जिंदगी के समय को अवेरने में कितना समय लगेगा? हमने भी अपनी जिंदगी का बहुत फैलाव किया है। यह मेरा रिश्तेदार है, वो मेरा रिश्तेदार है, ये मेरे रिश्तेदार हैं, वो मेरे रिश्तेदार हैं। हमने भी बहुत फैलाव किया है, किंतु इस फैलाव को समेटने में कितनी देर लगेगी?

'इदं न मम।' 'यह मेरा नहीं है।' खाली इतना-सा अंतर भाव गहरा हो जाए। खाली शब्दों से नहीं, विचारों से, भावों से तो समेटने में कोई देर नहीं लगेगी। जैसे गजसुकुमाल मुनि ने समेटा, वैसे ही हम भी समेट सकते हैं। सबसे रफा-दफा, सबके साथ हिसाब चुकता कर देना। कोई देर नहीं लगती है। पर आलस्य में पड़े रहे, कायराना हरकतों में पड़े हुए कार्य करते रहे तो वर्षों लग जाने पर भी हम अपनी दुकान या ऑफिस को हटाने में, समेटने में, अवेरने में सक्षम नहीं हो पाएंगे। क्योंकि हम कुछ लेने जाएंगे या कुछ देने जाएंगे तो और विस्तार बना ही लेंगे। जिसको समेटना होगा, वह एक झटके में समेट लेगा कि जो मिले वो भला और नहीं मिले तो भला। मुझे तो समेटना है। मेरी डेट निश्चित है। तारीख निश्चित है।

दो बात आपके सामने कह दूं। या तो आप मौत का दिनांक निश्चित कर लो या घर छोड़ने की तारीख निश्चित कर लो। एक दिनांक तो निश्चित कर लो कि मुझे इस तारीख को, इस डेट को घर छोड़ना है। आप लोग लिख रहे हो क्या? आप लोग इसको लिख लो। डेट, दिनांक निश्चित करने का मतलब मरना कोई जरूरी नहीं है कि हमने दिनांक निश्चित कर ली तो अब मरना पड़ेगा या हमने घर छोड़ने का दिनांक निश्चित कर लिया है तो घर छोड़ना ही पडेगा। मरना पड़े या साधु बनना पड़े यह भी जरूरी नहीं है।

साथ में बता दूं कि घर छोड़ने का मतलब यह नहीं कि आपको साधु बनना है। साधु बनना भी जरूरी नहीं है। आपका मन नहीं हो तो जरूरी नहीं कि आप साधु बनो। उसके बाद क्या दिक्कत है, तुम्हें घर छोड़ने में? उसके पहले ही आपको उठा लिया किसी ने तो कोई बात नहीं है, किंतु इतने समय के बाद मैं घर में नहीं रहूंगा, यह दिनांक फिक्स कर लो। ऐसा हो सकता है या नहीं हो सकता है? यह निर्णय कर सकते हैं या नहीं कर सकते हैं? या शालीभद्र जी की तरह धीरे-धीरे करेंगे। एक दिनांक बताने में, एक दिनांक फिक्स करने में कितने दिन लग जाएंगे? एक-एक पत्नी को एक-एक दिन में समझाएंगे तो फिर कितने दिन लग जाएंगे? कितने दिन में हो जाएंगे तैयार?

आप कुछ अलग समझ रहे हो। नहीं, नहीं, मैं कह रहा हूं कि आप तैयार हो सकते हो या नहीं हो सकते हो? उपाय हो सकता है या नहीं हो सकता है? हम किसी-भी एक दिन, एक दिनांक को घर छोड़ने के लिए तैयार हैं? परिग्रह-परिमाण, व्रत लोग स्वीकार करते हैं ना? क्या स्वीकार करते हैं? सुरेश जी! स्वीकार कर लिया क्या? क्या स्वीकार किया? कितनी अंगूठी खुली रखी? पानी डिब्बे में है, उसमें कितना माप रखा है कि इतना और भर सके।

आनन्द श्रावक ने तो जहां था वहीं सीमा कर ली थी। किंतु कई लोग आज एक करोड़ है पर दस करोड़ या फिर सौ करोड़ रखने की मर्यादा कर लेते हैं। पास में कितने हैं? एक करोड़ है और कभी बढ़ जाए तो दस करोड़ कर लिए। कई लोग सौ करोड़ भी कर लेते हैं। सौ करोड़ रखे हैं, किंतु मर्यादा रखी ना। अभी उसकी पूरी समीक्षा नहीं करते हैं। उसने मर्यादा कर ली। एक लिमिट हुई या नहीं हुई? वैसे ही हम एक समय निर्धारित कर लें कि यह घर पर रहने का मेरा अंतिम दिन होगा। इस दिन मैं घर को छोड़ दूंगा। अब मैं घर में नहीं रहूंगा। ठीक है!

एक बार महाराज नागौर के आसपास विराज रहे थे। एक भाई दर्शन करने के लिए आया और कहा कि म.सा. हमारे गांव डेह में कोई चातुर्मास करते ही नहीं हैं। सड़क से गांव में भीतर जाना पड़ता है। काफी समय से कोई चातुर्मास नहीं हुआ है। महाराज ने कहा, चातुर्मास करने से फायदा क्या होगा? उस भाई ने कहा कि महाराज मैं घर छोड़ दूंगा। म.सा. ने चातुर्मास वहां खोल दिया। जय-जयकार, जय-जयकार के नारों से प्रवेश हो गया। जो भाई विनती करने के लिए आया था, वह भी जय-जयकार कर रहा है। उसके बाद 4 महीने तक वह भाई नजर ही नहीं आया। फिर विहार के दिन आया और जय-जयकार, जय-जयकार कर रहा था। महाराज ने कहा कि अरे श्रावक जी! क्या बात है? आप तो चातुर्मास में आए ही नहीं। आपने बोला था कि मैं घर छोड़ दूंगा और पूरे चातुर्मास में नजर ही नहीं आए और आज फिर विहार में नजर आए। उसने कहा, म.सा. मैं वही कर रहा था। अब तक किराये के घर में रहता था, अब उस किराये के घर को छोड़ दिया है।

ऐसी पहेलियां बुझाने की आवश्यकता नहीं है। हम पहेलियां बुझा सकते हैं किंतु यह तो निश्चित है कि आपको घर छोड़ना पड़ेगा। आपको घर छोड़ना

पड़ेगा या नहीं पड़ेगा? अपनी मरजी से घर छोड़ने वाले की विशेषता होती है। मरजी से छोड़ने वाले की विशेषता होती है या धक्का खाकर घर छोड़ने वाले की विशेषता होती है? मरजी से घर छोड़ने वाले की कदर होती है। भगवान महावीर ने मरजी से घर छोड़ा तो कदर हुई। शालीभद्र ने मरजी से छोड़ा तो कदर हुई। आनन्द श्रावक ने मरजी से घर छोड़ा तो कदर हुई। नहीं तो क्या कदर होती? बताओ आप। यदि अपनी मरजी से घर नहीं छोड़ेंगे तो भी छूटेगा। फिर लोग डंडों से बांधकर ले जाएंगे। आपको बांधकर घर छुड़ाया जाएगा। अपनी मरजी से घर छोड़ेंगे तो इससे बच जाएंगे, यह नहीं करना होगा। इस प्रकार से किसी के द्वारा बाहर नहीं निकाला जाएगा। बांधकर नहीं निकालेंगे।

आनन्द श्रावक ने भी निश्चय कर लिया कि मुझे घर छोड़ना है और छोड़ा भी। वैसे ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। बहुत गंभीरता से बात को लेना। आप इस बात पर ध्यान देना। यह मत समझ लेना कि महाराज विनोद में कह रहे हैं। मजाक में कह रहे हैं, ऐसी बात नहीं है। गंभीरता से इस बात की तरफ ध्यान देना। हम चाहते हैं कि हमारे जीवन में यह चीज उतरे ताकि हम ममत्व भाव से तो छूटें। सबसे बड़ी मार ममत्व की पड़ती है। हमारा ममत्व बढ़ता जाता है। घर में कितने जीते हैं, कोई बड़ी बात नहीं है किंतु ममत्व की मार हमें आगे के जन्मों तक मारती रहती है। यदि हम ममत्व का त्याग नहीं करते हैं तो वह ममत्व मृत्यु के साथ चला जाता है। हमारी आत्मा में बंधा हुआ चला जाता है। हमारी आत्मा उसको पकड़े हुए चली जाती है। जब तक ममत्व नहीं हटेगा तब तक इसी प्रकार से मार खाते रहेंगे।

किसी ने एक मकान अपने जिम्मे लिया। अपने नाम की रजिस्ट्री करवा ली। रजिस्ट्री उसके नाम की हो गई। उस मकान में रोज कोई न कोई मृत्यु हो जाती है। हत्या हो जाती है। सरकार किसको पकड़ेगी, किसको गिरफ्तार करेगी? जिसके नाम से रजिस्ट्री है, उसको सरकार पकड़ेगी। वह कहता है कि मैंने कुछ नहीं किया। यह मर्डर हुआ कैसे? इस मर्डर का जवाबदार कौन होगा? ठीक है, भले ही खोज करेंगे, किंतु कुछ नहीं है तो एक बार मकान मालिक को पकड़ा जाएगा। क्योंकि उस मकान की रजिस्ट्री उसके नाम से है। पकड़ा जायेगा या नहीं पकड़ा जाएगा? वैसे ही ममत्व हमारे नाम से है। जिससे ममत्व जुड़ा हुआ है, जिसके साथ ममत्व जुड़ा हुआ है, उसका त्याग नहीं करेंगे तो जन्म-जन्मांतर में भी यह ममत्व हमें ही परेशान करेगा।

भगवती सूत्र में एक चर्चा आई है कि एक व्यक्ति तरकश में से तीर निकालता है। वह धनुष पर चढ़ाता है और किसी पक्षी को, पशु को लक्ष्य में लेकर तीर छोड़ देता है। तीर छोड़ने के बाद दो विकल्प हो सकते हैं। जिस पर वार किया गया, निशाना साधा गया या तो वह मर जाएगा या बच जायेगा। दो ही चीज हो सकती है। या तो पशु या पक्षी तीव्र गति से निकल गया या थोड़ी चूक हो गई और निशाना चूक गया। एक है कि निशाना चूक गया। दूसरा है कि निशाना सध गया और उसकी मृत्यु हो गई। भगवान से पूछा गया कि जिस व्यक्ति ने निशाना साधा और निशाना सध गया तो उसको कितनी क्रिया लगेगी? भगवान ने कहा कि पांचों क्रिया लगेगी। भगवान से दूसरा प्रश्न किया गया कि भगवान! तरकश में से जो तीर निकल गया और तीर के आगे के भाग में जो लोहे का त्रिशूल लगा हुआ है। वह किसी समय में लोहे का पिंड था और लोहा एकेन्द्रिय जीव होता है। पृथ्वीकाय से, खदान से निकाला गया और फिर उसे भट्ठी में गलाकर तीर बनाया गया। तीर बनाने से, अग्नि में गलाने से पृथ्वीकाय के जीव समाप्त हो गए। पृथ्वीकाय के जीव मरकर अन्यत्र चले गए किंतु उस शरीर पर ममत्व रहा हुआ है। वह तीर जिन पृथ्वीकायिक जीवों का शरीर रहा है, वे जीव कहीं और चले गये। किंतु उनका ममत्व इनके साथ रहा हुआ है तो उन जीवों को भी कोई क्रिया लगी क्या? भगवान ने कहा कि पांचों क्रिया लगी। तीर चलाने वाले को जितनी क्रिया लगी, उतनी ही क्रिया तीर के जीवों को, पृथ्वीकाय के जीवों को लगी। तीर के जीवों को भी पांचों क्रिया लगी।

वैसे ही धनुष बनाने के लिए बांस की लकड़ी की जरूरत होती है। बांस की लकड़ी में भी जीव होते हैं या नहीं होते हैं? उन जीवों ने अपने शरीर को नहीं छोड़ा था किंतु जब लोगों ने उस लकड़ी को काट लिया, उसे सुखा लिया तो उन जीवों के प्राणों का हनन हो गया। जिसके शरीर से धनुष बना उस जीव को कितनी क्रिया लगी? भगवान कहते हैं कि उसे भी पांच क्रिया लगी। यह इसलिए बता रहा हूं कि हमारा ममत्व रह गया तो जन्मों-जन्मों तक हमको परेशान होना पड़ेगा और हमने यदि एक दिनांक निश्चित कर लिया कि इस दिन घर का त्याग करना है, घर को छोड़ना है तो ममत्व को विराम लग गया या नहीं लगा? विराम लग जाता है। तब जब ममत्व रहेगा ही नहीं तो उसका असर आगे के जन्मों में रहेगा नहीं।

अब बोलो कितने दिन में सोच लोगे? कितने दिन में बात करके बता दोगे कि इस दिनांक को मैं घर छोड़ दूंगा। सुराणा जी! बोलो कितने दिन में घर का त्याग कर दोगे? वकील साहब! बताओ कितने दिन में घर छोड़ दोगे? चार महीने, दो महीने, चार दिन में, कितने दिन में? अरे! छोड़ने की बात नहीं कह रहा हूं। छोड़ने का दिनांक तय करने को कह रहा हूं। क्या बोल रहे हो आप? आसोज सुदी दूज को बोल रहे हो या आसोज सुदी दूज को फाइनल करेंगे? आसोज सुदी द्वितीया को? दीपावली को? धनतेरस को, कब का दिनांक तय करोगे? बोलो, कौन-सा दिनांक ठीक रहेगा? कौन-सा मुहूर्त ठीक रहेगा? विचार बनता है तो बात करते हैं। इससे फायदा क्या होगा? इससे यह फायदा होगा कि यदि आपने अमुक दिनांक निश्चित कर लिया कि इस दिनांक को घर छोड़ूंगा तो दिनांक निश्चित होने के बाद दिमाग में कितनी बार आपको यह बात आएगी कि मेरी तारीख फाइनल है। बार-बार विचार आएगा या नहीं आएगा? उस दिनांक से पहले-पहले घर से, परिवार से निवृत्त होने की तैयारी होगी या नहीं होगी?

कभी हमें कहीं की यात्रा करनी होती है, जाना होता है तो टिकट कितने दिन पहले बनाते हैं? चार महीने पहले उस यात्रा का टिकट बनाते हैं। यह डेट है। चार महीने बाद यात्रा करनी है तो वह बात भूलते नहीं हैं। बार-बार उस टिकट को देखते हैं। घर छोड़ने के लिए थोड़ा-तो मौका देंगे? हम मौका देने के लिए तैयार नहीं हैं। नहीं मौका देंगे तो लेने वाला मौका ले लेगा। छोड़ेगा कोई नहीं। आप समझ लेना कि मौका लेने वाले मौका ले लेंगे या नहीं ले लेंगे? वह मौका ले लेगा किंतु निश्चित दिनांक को यात्रा के लिए चार महीने पहले टिकट करवा देते हैं। चार महीने पहले टिकट करवाया है तो बार-बार याद आता है कि टिकट कब का है? फिर टिकट को खोलकर देख लेते हैं कि टिकट कब का है? टिकट कौन-सी गाड़ी का है? गाड़ी चूक नहीं जाए? गाड़ी के नंबर भी याद कर लेते हैं। प्लेन की टिकट है तो प्लेन कौन-सी है? प्लेन का टिकट है तो उस प्लेन का नंबर वगैरह क्या है, वह सब ध्यान में ले लेते हैं। इसका मतलब है कि हम जागरूक हो जाते हैं। इसी प्रकार यदि घर छोड़ने की तारीख निश्चित कर ली कि इस तारीख को घर छोड़ेंगे तो फिर कितनी बार दिमाग में आएगी बात? बार-बार डायरी खोलकर देखेंगे कि कब निकलना है? कब

निकलना है? यह देखेंगे कि उस तारीख को घर से निकलना है। एक बार देख लो। देख लो कि कौन-सी तारीख तक हम यहां पर है? हम इतने समय में निवृत्त होने के लिए प्रयत्नशील बनेंगे। हमारी जागरूकता बनी रहेगी। उसके पहले मर गए तो भी हमारी उस दिन के लिए घर छोड़ने के दिनांक की बात थी ही।

एक आदमी ने परिग्रह-परिमाण व्रत किया और मर गया, तो उसे उससे ज्यादा का पाप नहीं लगा। वैसे ही एक दिनांक निश्चित कर ली। हम यदि पहले मर गए तो पहले ही घर को छोड़ देंगे। किंतु उस समय का तो त्याग था ही कि उस समय मैं घर का त्याग करूंगा। उस समय तक परिवार का, मोह का त्याग कर दूंगा। तो उसका त्याग उस दिन के लिए लागू हुआ या नहीं हुआ? घर छोड़ना भी नहीं पड़ा। नहीं छूटा तारीख तो निश्चित है। पहले छूट गया तो भी ठीक है, तो भी बढ़िया है। दुकान में ग्राहक किसी चीज को नहीं ले रहा है तो भी दुकानदार के चार बार कहने पर कभी-कभी ग्राहक का भाव हो जाता है। दुकानदार बोलता है कि यह चीज ऐसी है, वैसी है। वह बार-बार बोलता है तो उस ग्राहक का मन हो जाता है। हो जाता है या नहीं हो जाता? थोड़ा 19-21 होता है तो मन हो जाता है कि दुकानदार इतनी बार बोल रहा है तो एक मौका ले लेता हूं। ले लेता हूं और ले लेता है। कुछ भी नहीं जा रहा है और यदि उतने समय के बीच ही हमारी प्रवृत्ति में अंतर आ जाए, हमारे विचारों में बदलाव आ जाए, हम समेटने की प्रक्रिया में आ जाएं और हमारा समय निकलने लग जाए तो हमें ज्ञान-ध्यान सीखने की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। जीवन में कुछ तो फायदा होगा। हमने ज्ञान-ध्यान सीखा, उसके बाद भी दीक्षा लेने की हिम्मत नहीं है तो आनन्द श्रावक की तरह हम धर्म स्थान में बैठकर ज्ञान-ध्यान की आराधना करेंगे। आनन्द श्रावक की तरह धर्म स्थान में बैठ जाएंगे और वहीं पर रहते हुए धर्म की आराधना करेंगे। चिंता मत करना किसी प्रकार की कि हमको रोटी कौन देगा? हमको खाना कौन देगा?

अभी तक समाज या परिवार से इतनी दया और करुणा हट नहीं गई है कि लोग स्थानक में रहने वाले को नहीं पूछें। पूछते हैं या नहीं पूछते हैं? आप लोग स्थानक में जाते हैं और आपको वहां पर कोई मिलता है तो आप लोग उनसे पूछताछ करते हो या नहीं करते हो? पूछताछ का तो रिवाज है। अभी दया गई नहीं है। अभी दया और करुणा में शून्यता नहीं

है। ऐसा नहीं है कि मेरे को क्या करना होगा, पता नहीं क्या होगा? ऐसा अभी हुआ नहीं है। अभी पूछने वाले बैठे हैं। अभी हमको पूछने वाले की चिंता नहीं करनी है। पूछने वाले की चिंता मत करो कि कोई पूछने वाला है या नहीं है? इसके साथ ही मैं आपको यह भी स्पष्ट कर दूं कि मान लो कोई सोरे, अनुकूल मन से जिमाने वाला हो सकता है और कोई दोरे, कठिन मन से जिमाने वाला है तो अब क्या करें? कोई दया में लगा हुआ है और स्थानक में धर्म ध्यान करने वाला, दया करने वाला या एकासना करने वाला हो तो उसे बुलाना पड़ेगा ही और उसे जिमाना पड़ेगा ही। भले ही उसकी इच्छा नहीं हो तो भी। अपने को कोई विचार नहीं करना है। क्यों नहीं करना है विचार? क्योंकि वहां हमको अपने-आपको साधने का मौका मिलेगा कि मेरी प्रशंसा करके कोई ले जाता है तब तो मुझे अच्छा लगता है किंतु बुराई करके, निंदा करके, दो बातें सुनाकर ले जावे तो चुपचाप जाकर खाना चाहिए। उस समय भी अपने मन में ऊंचा-नीचा परिणाम नहीं आने देना चाहिए। वह सधेगा या नहीं सधेगा? यह भी अपने आपको साधने का क्षण है। यह भी अपने आपको साधने का समय है। ऐसा हम अपने आपको साध पाएंगे तो हमारे सामने कैसी भी विकट परिस्थितियां आएंगी, हमारे मन में कोई ऊहापोह नहीं होगी। हमारे मन में शांति सदा बनी रहेगी।

हम शांति की आराधना कैसे करना चाहते हैं? हम तो यह चाहते हैं कि हमारी मनोकामनाएं पूरी होती रहें और हमको शांति मिल जाए। ऐसे तो शांति मिलेगी नहीं। शांतिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया कि

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये।
कहो मन केम परखाय रे...शांति जिन...

त्रिभुवन राय मतलब तीन भुवन के राजा। तीन भुवन में जिनका वर्चस्व है। तीन भुवन में जिनकी आज्ञा चलती है, ऐसा आपका व्यक्तित्व है। ऐसा आपका वर्चस्व है। हम भी यदि चाहते हैं कि तीन भुवन के राजा बनें तो बना जा सकता है। ऐसी बात नहीं है कि नहीं बना जा सकता है किंतु उसके लिए हमें कुछ बलिदान करना पड़ेगा। कुछ आहुति देनी पड़ेगी। बिना आहुति दिए कोई भी तीन भुवन का राजा नहीं बन सकता है।

राम अयोध्या के राजा बने किंतु पहले 14 साल वन में भी उनको गुजारने पड़े। सत्य के सिंहासन पर हरिश्चंद्र राजा आरूढ़ हुए किंतु पहले श्मशान में भी पहरा देना पड़ा। तो कुछ तो हमारा बलिदान भी मांगा जाएगा कि आप यदि तीन भुवन के अधिपति बनना चाहते हो, तीन भुवन के राजा बनना चाहते हो तो पहले शुल्क देना पड़ेगा, किराया देना पड़ेगा। किराया नहीं टैक्स देना पड़ेगा। उसके लिए हमारा अहंकार हमको देना पड़ेगा, त्यागना पड़ेगा। हमारी ईर्ष्या हमको देनी पड़ेगी। हमारा राग हमें देना पड़ेगा। यह देने की तैयारी हो तो हम तीन भुवन के स्वामी बन सकते हैं।

थोड़ा सोचें इस शरीर की कितनी सुननी पड़ती है? अपने शरीर की हमको कितनी सुननी पड़ती है। हमको सुनना पड़ता है या नहीं सुनना पड़ता है? जब हमको अपने शरीर को भी सुनना पड़ता है तो दुनिया का सुनना है तो क्यों विचार करना? सुन लो। सुनने से कुछ बिगड़ेगा नहीं किंतु सुनकर विचार दूसरे रूप में परिणमन नहीं किया तो निश्चित रूप से विचार बदलेगा। यदि आपसे पूछ लें कि शरीर की क्यों सुनना पड़ता है? सांसारिक सुखोपभोग के लिए शरीर की सुनते हैं। संसार के सुख भोगने से शरीर में क्या विशेषता आ जाएगी? तत्त्वतः सोचें तो कुछ भी नहीं। अतः सुनने के लिए मन को कच्चा नहीं करना। वहां सुनना आत्मा के लिए होगा। उससे निश्चित रूप से जीवन में विशेषता आ पायेगी।

आप दिनांक लिखो चाहे मत लिखो, मुझे मेरा प्रयत्न करना ही है। आप मानो या नहीं मानो, आपकी मरजी। आप मेरी बात मानो या नहीं मानो आपकी मरजी है किंतु जैसे सेल्समेन कई प्रकार का माल दिखाता है, वैसे ही मेरा काम है। मुझे अपना काम करना है।

राकेश जी![1] आपने शादी कहां पर की थी? (प्रत्युत्तर– यहीं) पंडित आए थे? फेरे कितने दिलाए थे, याद है या नहीं? पूरी बात याद है? जो बात बोलो सच बोलना। सामायिक में हो। यह बताओ कि पंडित जी के सामने प्रतिज्ञा कितनी ली थी? आप कह रहे हो कि प्रतिज्ञा याद नहीं है। सात फेरे लिए वे याद हैं। शादी जोधपुर में हुई याद है किंतु प्रतिज्ञा याद नहीं है। यह दुनिया का खेल देख लो। शादी करने वाले दिन शादी करने के लिए पंडित जी ने जो प्रतिज्ञा करवाई, की, पर वे याद नहीं रहीं। शादी के दूसरे दिन भी

1. राकेशजी चौपड़ा, जोधपुर

प्रतिज्ञा याद रही थी क्या? यहां पर किस-किस को याद है कि हमने यह-यह प्रतिज्ञा ली थी, पंडित जी के सामने? किसी को भी याद नहीं है। देख लो, संसार की यह हालत है। देख लो, एक-एक करके बहनें मुंह उठाकर देख रही हैं कि हमारे श्रीमान् जी के हाथ खड़े हो रहे हैं या नहीं। यहां पर तो कोई हाथ खड़ा करने वाला नहीं है। कोई हो तो देख लो? किसी को याद नहीं है। मदन लाल जी! याद है क्या? आप कहोगे कि सारी बातें याद नहीं रहती हैं। कई बातें भूल जाते हैं। आप बोल रहे हो कि पोल खुल जाएगी। भाई साहब! आप यदि याद रखते और उसकी पालना करते तो पोल खुलती ही क्यों? यदि याद रहता और जीवन में उतार लेते तो पोल खुलने की बात ही क्यों रहती?

प्रतिज्ञा की तरफ ध्यान रखते ही नहीं हैं। आप कहोगे कि म.सा. प्रतिज्ञा की क्या जरूरत है? जब पत्नी हमारे पास में है तो प्रतिज्ञा याद रखने की आवश्यकता ही क्यों है? प्रतिज्ञा याद नहीं है और यदि कल पत्नी कह दे कि मुझे तलाक चाहिए तब क्या करेंगे? याद रहेगी तो कह सकेंगे कि यह-यह प्रतिज्ञा हमने ली थी। तब तो सोचेंगे कि क्या प्रतिज्ञा थी? जिस दिन तलाक की बात आयेगी उस दिन कह सकेंगे कि यह प्रतिज्ञा की थी और आज तुम तलाक ले रही हो। और जब पुरुषों के द्वारा तलाक लेने की बात आए तो पत्नी भी कह सकती है– कि नाथ! मैं कोई ऐरी-गैरी नहीं हूं। नाथ! आपके पीछे ऐसे ही चलकर नहीं आई हूं। आपने हाथ पकड़ा है। पाणिग्रहण किया है। आप मुझे हाथ पकड़कर लाए हो। आपने मेरा हाथ पकड़ा है। हो सकता है मन से नहीं पकड़ा किंतु एक बार हाथ पकड़ लिया तो जवाबदारी आपकी होती है। आप कदाचित् प्रतिज्ञा भूल भी जाओ किंतु कुल के बहुत सारे गणमान्य लोग वहां मौजूद थे साक्षी के रूप में। आपने पंडित के द्वारा कहे गए वचन हमें दिए हैं। प्रतिज्ञा की है कि आप हमारी रक्षा करेंगे। आपको हमारी रक्षा करनी है। आपने जवाबदारी ली है। आप उसे कैसे छोड़ सकते हैं। आप प्रतिज्ञा की पकड़ से नहीं बच पाएंगे। आप इन जिम्मेदारियों से दूर होना चाहते हो, हमारे से छूटना चाहते हो किंतु हकीकत तो हकीकत है। इसलिए आपको स्वयं विचार करना चाहिए कि प्रतिज्ञा हनन करना कौन-सी अच्छी बात है? आपने उस समय प्रतिज्ञा की थी कि हम एक प्रीत में बंधे रहेंगे। यह प्रीत सदा बनी रहेगी और आज आप क्या कह रहे हो? ये कैसी बातें बनाई

जा रही हैं? यदि मेरे में कोई दुर्गुण है, मेरे में कोई कमी है तो आप उसको बताइए। वह आपका अधिकार है। आप मेरे दुर्गुण बतावें। मैं उस दुर्गुण को मिटाने का प्रयत्न करूंगी। आप कोई कमी नहीं बतावें और ऐसे ही छोड़ दें, यह बात समझ में नहीं आ रही है।

साधारण से साधारण आदमी भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने वाला होता है। अब आप विचार कीजिए कि साधारण व्यक्ति भी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए तैयार होता है तो आप जैसे जाने-माने लोग, नीतिवान लोग कैसे प्रतिज्ञा से विमुख हो सकते हैं? नीतिवान वही होता है जो नीति का पालन करे। यदि नीतियों का पालन न हो तो फिर नीतियां बनी किसलिए। फिर नीतियों से लेना-देना ही क्या है? फिर क्यों नीतियों को स्थान दिया गया है और क्यों नीतियों के लिए इतनी सारी बातें कही जाती हैं। एक बात और मैं आपसे निवेदन कर दूं कि यदि मेरे को आप छोड़ेंगे तो इसमें केवल हमारा ही अनिष्ट नहीं है, आपकी भी कहीं-न-कहीं खराबी लगेगी। लोग आपका अपयश करेंगे कि यह कैसा है? शादी करने को तो कर लिया पर पालन-पोषण कर नहीं पा रहा है। ऐसे आदमी को क्या कहना? इस तरह से आपका अपयश होगा और आपका अपयश मुझे अच्छा नहीं लगेगा।

इसलिए मेरा निवेदन है कि आप इस बात को समझें। नहीं तो लोग आपको ऐसा भी कह सकते हैं कि यह धर्म पर निष्ठा रखने वाला अपने आपको धर्मात्मा बोलता है। यह धर्मात्मा बनना चाहता है लेकिन इसको क्या पता कि धर्मात्मा क्या होता है? इसे अपना दायित्व निर्वाह करना भी नहीं आता। जवाबदारी निभानी नहीं आती है। जिसको अपनी जवाबदारी का निर्वाह करना नहीं आता बिना जवाबदारी निभाये वह धर्मात्मा कैसे बनेगा? उसे तो जवाबदार रहना चाहिए। धर्मात्मा बनने से पहले अपनी जवाबदारी का निर्वाह करना चाहिए। क्या बिना जवाबदारी निर्वाह के वह धर्मात्मा बन जाएगा? ऐसी बहुत सारी बातें होंगी। इस तरह जितने मुंह उतनी बातें होंगी। इस प्रकार पत्नी भी पति से कह पायेगी। निवेदन कर पायेगी।

आपको नहीं पता कि मेरे मन को कितनी पीड़ा हो रही है। 'जाके पैर न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई।' जिनके पैरों की चमड़ी फटती है,

उनको कितनी पीड़ा होती है, कितना उसको दर्द होता है वही जानता है। उसमें मरहम लगाना पड़ता है, इंजेक्शन लेना पड़ता है। उसे नर्म रखना पड़ता है नहीं तो वह जलन करेगा। फिर बड़ी मुश्किल हो जाएगी। यदि नंगे पांव चलना पड़े तो खून भी निकल सकता है। जिसकी ब्याऊ नहीं फटी है उसको क्या मालूम पड़े। आपको कुछ मालूम नहीं पड़ रहा है। आप मेरे मन के दृश्य को देखो। मन में क्या-क्या कल्पनाएं रही हैं, क्या-क्या आशाएं हैं? उसके मन में कितना करुण-क्रन्दन हो रहा है, इस स्थिति में उसका क्या हाल होगा?

मैं भी एक नारी हूं। इसलिए एक माता का दर्द, एक नारी का दर्द जान रही हूं। उसे कितना दर्द हो सकता है, यह मैं जान सकती हूं। इसलिए आपसे बार-बार मैं निवेदन करूंगी, रिक्वेस्ट करूंगी कि आप ऐसा कोई विचार नहीं करें जो आपको भी अच्छा नहीं लगे, घर को अच्छा नहीं लगे, परिवार को अच्छा नहीं लगे और जिससे माता-पिता, परिजन दुःखी हों। आपके एक निर्णय से सारे सुखी हो जाएंगे। आप यदि एक निर्णय कर लो, खाली एक शब्द बोल दो। एक शब्द बोलने से कि 'मैं फिलहाल', सब लोग राजी हो जाएंगे। हम सब राजी। हमारे माता-पिता राजी। आपके माता-पिता राजी। और भी रिलेशन वाले जो भी यह बात सुनेंगे वे भी राजी होंगे। आप देख लेना कि लोग आकर बधाई देते हैं या नहीं देते हैं। इस तरह कोई करता है तो आप लोग जाते हो क्या इस तरह बधाई देने? कुछ लोग कह रहे हैं कि नहीं जाते हैं। कुछ लोग सोचेंगे कि क्या है, जाकर लिफाफा पकड़ाना है तो चले जाएंगे। ऐसे मौके पर क्यों चूकें? यदि लिफाफा नहीं ले रहे हैं तो क्या करें? थोड़ी बधाई तो दे दें। वहां जाकर बधाई देकर बोल देंगे कि जो किया तुमने सोच समझकर ही किया। हम तो यही चाहते थे। ये तलाक जैसी बातें तब उठती हैं जब धर्म अन्तर में नहीं उतरा हो।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. एक समय धर्म-कर्म को ज्यादा महत्त्व नहीं देते थे किंतु जैसे ही उनके भीतर परिवर्तन हुआ, जैसे ही उनकी दृष्टि बदली तो सारा कुछ रूपांतरित हो गया। उन्होंने माता से कह दिया कि आप सामायिक करो और कहीं पर दर्शन करने की इच्छा है तो आप बताना, मैं वहां दर्शन करा दूंगा। जहां जाना है वहां दर्शन कराऊंगा। क्यों हो गया ऐसा विचार? इसलिए ऐसा हो गया क्योंकि वे जान गए कि संसार की दशा कैसी है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव एक बार आचारांग सूत्र का विवेचन फरमा रहे थे। आचारांग सूत्र पढ़ा रहे थे। संयोग से उस दिन डॉ. डी.एस. कोठारी वहां उपस्थित थे। व्याख्या चल रही थी। उन्होंने सूत्र की लाक्षणिक व्याख्या सुनी। व्याख्या सुनकर डॉक्टर साहब कहने लगे कि गुरुदेव! आज मैंने इस प्रकार की लाक्षणिक व्याख्या पहली बार सुनी है। मेरे मन में भी इस सूत्र को लेकर थोड़ा संशय था किंतु आज आपकी व्याख्या सुनकर वह संशय निकल गया। आचारांग की विवेचना देवगढ़ में चल रही थी। द्वितीय श्रुतस्कंध के विषय में कहा जाता है कि यह आचार्यों का रचा हुआ है। इस संदर्भ में निर्युक्ति की गाथा से आचार्य देव ने सिद्ध किया और जो लिखाया हुआ था, वह डॉक्टर साहब को पढ़ाया तो डॉक्टर साहब कहते हैं कि यह तो एकदम नई व्याख्या है। आज जो विद्वान मान रहे हैं, उससे भिन्न ही है।

हमारा क्षयोपशम जैसा बनता है, उसके अनुसार हमारे भीतर वैसे ही ज्ञान की वृद्धि होती है, समझ की वृद्धि होती है। हम समझ को बढ़ाने की कोशिश करेंगे तो हमारी समझ बढ़ेगी। समझ को ऐसा ही रखेंगे तो समझ अपने आप नहीं बढ़ेगी। अग्नि में ईंधन डालोगे तो अग्नि बढ़ेगी। वह बढ़ती है या नहीं बढ़ती है? चूल्हे में अग्नि बुझने वाली है और उसमें थोड़ा ईंधन और डाल दिया तो अग्नि बढ़ने लगती है। जैसे चूल्हे में ईंधन डालने से अग्नि बढ़ जाती है, वैसे ही हम समझ को उपयोग में लेंगे तो समझ बढ़ेगी। यदि समझ को उपयोग में नहीं लेंगे तो हमारी समझ धीरे-धीरे और मंद होती हुई चली जाएगी। इसलिए हम अपनी समझ का सही उपयोग करें। सही उपयोग यदि करते रहेंगे तो हमारी समझ सम्यक् रूप से बढ़ती रह सकती है। बेशक हमारे भीतर भी वह समझ आ जाएगी कि मुझे अब क्या करना चाहिए? यह समझ जिस समय आ जाएगी उस समय हम अपने आपमें धन्य बनेंगे।

गुलाब मुनि जी म.सा. का बहुत पहले से ही विचार था कि मुझे दीक्षा लेनी है। उनके परिवार वालों से ज्ञात हुआ कि उनकी भावना थी कि दीक्षा तो लेनी है किंतु अभी दीक्षा लूंगा तो साधुओं को सेवा में दिक्कत होगी। मैं अनावश्यक रूप से साधुओं को तकलीफ नहीं देना चाहता हूं। उनकी दीक्षा की भावना थी। मनोरथ था। पक्का मनोरथ होता है तो वह फलता है। खाली औपचारिकता होती है, रूटीन होता है तो वे कामयाब नहीं होते हैं। दिली भावना एक दिन जरूर सफल होती है। आज उनके संथारे का कौन-सा दिन

हो गया है? आज 16वां दिन हो गया है। वे अपनी भावना से, अपने शांत भावों में रमण कर रहे हैं। हमारा काम तो सुनाना है। थोड़ा पूछ लेते हैं। उनकी मरजी हो तो धोवन लें, मरजी न हो तो न लें। बीच में तीन दिन का चौविहार हो गया। कभी मरजी होती है तो थोड़ा-सा धोवन ले लेते हैं। जैसी भी उनकी अनुकूलता है। आज 16वां दिन प्रवर्धमान है। हम भी उनसे प्रेरणा लें। हमारे भीतर शौर्य जगे। उस शौर्य को जगाने की हमें भी जरूरत है। ऐसा करेंगे तो स्वयं को धन्य बनायेंगे। इतना कहते हुए विराम लेता हूं।

26 सितम्बर, 2019

6

राख हो जाने की साधना

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे...

जीवन में कई उतार-चढ़ाव आते हैं और आएंगे। बहुत कम चांस हैं कि एक समान रूप से जीवन का व्यवहार चलता रहे। अनेक समुदाय मिलकर हमारा एक जीवन बना है। थोड़ा समझना है कि अनेक समुदाय मिलकर कैसे बना है जीवन? हम जो जीवन जी रहे हैं, उसमें बहुत सारे पार्ट्स मिले हुए हैं। बहुत सारे ज्ञानावरणीय कर्म के स्कंध मिले हुए हैं। स्पर्धक मिले हुए हैं। बहुत सारे दर्शनावरणीय, बहुत सारे अंतराय के स्पर्धक मिले हुए हैं। वे स्पर्धक कभी किसी रूप में हमारे जीवन में आते हैं, प्रकट होते हैं, कभी किसी रूप में प्रकट होते हैं। इस कारण से उतार-चढ़ाव आता रहता है और उसका प्रभाव हमारे जीवन पर बनता रहता है।

ठंडक आती है तो जुकाम हो जाता है, खांसी हो जाती है। गर्मी आती है तो गर्मी का असर हमारे पर होता है। ठंडी हवा का असर होता है। गर्म हवा का असर होता है। वैसे ही कर्म स्पर्धकों का असर हमारे ऊपर होता है। वे स्पर्धक किस तासीर के हैं या किस रूप में हमारी आत्मा पर हावी होते हैं, यह हम नहीं जान पाते हैं किंतु इन स्पर्धकों में, इन पुद्गलों में शक्ति रही हुई होती है। उस कारण से हमारे जीवन में उतार-चढ़ाव आता रहता है। कभी कुछ, कभी कुछ होता रहता है। हमारा विचार भी सदैव एक समान नहीं रहता है। थोड़े-थोड़े समय में हमारे विचार बदलते रहते हैं। थोड़े-थोड़े समय में हमारी भावनाएं बदलती रहती हैं। ये सारा परिवर्तन और सारा बदलाव कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में हमारी समझ का एक अंग बना हुआ होता है। जैसे-जैसे हमारी समझ विकसित होती है, वैसे-वैसे बदलाव होने लग जाता है। हमारी समझ जितनी गहरी बनेगी, उतना ही जीवन में बदलाव भी गहरा हो पाएगा।

एक व्यक्ति सामान्य रूप से जीता हुआ नजर आता है और एक व्यक्ति बहुत गहरे रूप से जीता हुआ नजर आएगा। दोनों में अंतर क्या होगा? एक की समझ काफी गहरी हो चुकी है। वह बहुत संवेदनशील हो चुका है। वह समझने लग जाता है कि जीवन क्या है और मुझे कैसे जीना है?

शालिभद्र का नाम हमने बहुत बार सुना है। वह सामान्य रूप से जी रहा था किंतु जैसे ही जीवन में एक बदलाव आया, एक घटना घटी, उसकी सोच बदल गयी। सम्राट श्रेणिक उसको अपनी गोद में लेते हैं। हाथ फेरते हैं। किंतु उसे ये नहीं सुहाता है। पहली बार उसके साथ ऐसी घटना घटी। उसको यह बात अखर गई। उसके मन में एक विचार कौंध गया कि अब तक मैंने मेरे लिए 'नाथ' शब्द का प्रयोग सुना है, पर आज मालूम पड़ा कि मेरे पर भी कोई नाथ है। यहां उसकी सोच, उसका विचार एक नए रूप में प्रारंभ होता है कि मेरे में क्या कमी रही? मैंने क्या ऐसा कार्य नहीं किया, क्या नहीं किया जिसके कारण मेरे पर कोई नाथ बना। एक संयोग साथ में और मिल गया कि उसी समय भगवान महावीर का आगमन होता है। जब उसने सुना तो भगवान महावीर के दर्शन और देशना में चला गया। भगवान महावीर से उसने जाना कि 'नाथ' कौन होता है और नाथ कैसे बना जाता है?

जब हम छः काय के जीवों के रक्षक होते हैं और अपनी सोच के मालिक होते हैं तो हम अपने नाथ बन सकते हैं। अनाथी मुनि को भी देखो। जब तक उनका शरीर के प्रति राग भाव था, लगाव था, तब तक वे अपने नाथ नहीं बन सके, कायर बने रहे। वेदना होती रही किंतु जैसे ही ध्यान शरीर से हटकर चेतना की ओर गया, वे अपने स्वयं के नाथ बन गए। उन्होंने विचार कर लिया कि मुझे अब इंद्रियों का दमन करने वाला संयमी जीवन स्वीकार कर लेना है और उन्होंने स्वीकार किया। जब हम अपने विचारों के मालिक होते हैं, हम जो चाहते हैं वैसा करते हैं तो वो नाथ अवस्था है। जब हम चाहते कुछ और हैं और हमारा मन हमसे कुछ और करवाता है, हमारी इंद्रियां कुछ अलग ही अपना प्रस्ताव भेज रही होती हैं, वह अवस्था अनाथ की है। वहां हमको गुलामी में रहना पड़ता है क्योंकि हम जैसा चाहते हैं, वैसा कर नहीं पाते हैं। बहुत कम लोग अपने स्वयं के नाथ बनने में समर्थ होते हैं।

उदयपुर की एक घटना है। गुरुदेव विराज रहे थे। हिम्मत सिंह जी मेहता, एक तांत्रिक श्री सरजुगसिंह जी को दर्शन कराने के लिए लेकर आए। उनका कहना था कि उनकी दर्शन करने की इच्छा है तो वे उनको दर्शन कराने के लिए लेकर आए। किसी की इच्छा है तो दर्शन करने के लिए कोई रुकावट नहीं है। अमुक दर्शन करने के लिए नहीं आ सकता है, ऐसा नहीं है। कोई भी आ सकता है। वे आए और बैठ गए गुरुदेव के सामने। थोड़ी देर बाद सरजुग बाबू ने हिम्मत सिंह जी को आवाज देते हुए कहा कि 'रे हिम्मत! आ साधु तो राख थई गयो छे', यानी ये साधु तो राख हो गया है। हम लोग तत्काल नहीं समझ पाए कि क्या बोल रहे हैं। समझ में नहीं आई बात किंतु बाद में यह बात समझ में आई कि इनकी इंद्रियां शांत हो चुकी हैं। ये अपने आपके मालिक बन चुके हैं। नाथ बन चुके हैं। इनकी इंद्रियों में उद्दीपन का भाव नहीं है। अंगार में उद्दीपन भाव होता है, अंगार उदीप्त होता है। मन यदि उदीप्त हो तो वह पांच इंद्रियों को विषयों की ओर दौड़ाने वाला होता है।

सरजुग बाबू कहते हैं, 'आ साधु तो राख थई गयो छे'। इनकी इंद्रियों में उद्दीपन का भाव समाप्त हो गया है। न सुनने के लिए कान बेताब रहते हैं, न किसी दृश्य को देखने के लिए आंखों में कुतूहल है। किसी पदार्थ की गंध को लेने के लिए, सूंघने के लिए नासिका बेताब नहीं है और खाने-पीने के हिसाब से आप विचार करें तो कई बार साधुओं ने अनुभव किया है कि आहार अरोगने के बाद कभी संत पूछते कि सब्जी में नमक कैसा लगा तो कहते कि मेरा ध्यान नहीं गया। मेरा ध्यान उधर नहीं गया। ध्यान है या नहीं है? किधर रह गया ध्यान? ध्यान पेट भरने के लिए है या इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए है। खाना किसलिए?

हमारा एक सूत्र सुधर जाए। हमारी दृष्टि केवल वहीं तक सीमित हो जाए कि मुझे इस शरीर का निर्वाह करने के लिए, शरीर को चलाने के लिए खाना देना है। क्या स्वाद है, कैसा स्वाद है, नमक ज्यादा है या कम है, शक्कर ज्यादा है या कम है, ये हमें मालूम ही नहीं हो। प्रतिक्रिया नहीं करने से भी बहुत आगे की बात है कि हमारा ध्यान ही उधर नहीं जाए कि इसमें नमक है या नहीं है। यह आसान है या कठिन? (प्रत्युत्तर– कठिन है) आप कह रहे हो कि बहुत कठिन है तो इसको सरल कैसे किया जा सकता है? जब हम कवल मुंह में ले रहे हैं, उस समय समझ लो कि जीभ पर 'लेमिनेशन' लगा दिया है और ध्यान हमारा दांतों पर रहे। समझ में

नहीं आई क्या बात? दांतों पर ध्यान रहे का मतलब यह है कि हमें रोटी चबाने का ध्यान रहे। स्वाद की तरफ ध्यान नहीं जाए। दूसरा यह कि रोटी और सब्जी लगाकर मत खाओ। रोटी अलग और सब्जी अलग खाना, तब चबाने का मालूम पड़ेगा कि कैसे चबाया जाता है। नहीं तो रोटी और सब्जी साथ में लिया, मुंह में डाला और एक-दो मूवमेंट हुआ नहीं कि नीचे उतर गया। रोटी और सब्जी साथ में नहीं लगाई तो अब मुंह से वह कवल जल्दी नीचे उतरेगा नहीं। उसको दो बार, पांच बार, दस बार चबाना पड़ेगा। यदि हमने चबाने पर ध्यान दिया तो हमारा ध्यान किस ओर रह गया? एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार, पांच बार, छः बार चबाया। एक कवल को दस बार चबाना है या 15 बार चबाना है या 20 बार चबाना है तो कवल चबाने की तरफ ध्यान लगाकर हम चल रहे हैं। इसलिए यह ध्यान ही नहीं पड़ा कि स्वाद कैसा है? जिस तरफ उपयोग रहेगा, उस तरफ हमारा ध्यान जाएगा, हम उसको समझ पाएंगे।

जैसे स्वाद पर हमारी विजय की स्थिति बन जाती है, वैसे ही स्पर्श पर विजय हो सकती है। चाहे हम कहीं पर भी बैठे हैं, हमें यह नहीं लगना चाहिए कि गर्मी लग रही है या ठंड लग रही है। अभी कभी तो गर्मी लगती है, कभी सर्दी लगती है किंतु धीरे-धीरे अपना अभ्यास बढ़ाओगे तो सर्दी और गर्मी का भी हो सकता है हमको असर इतना अहसास कराने वाला नहीं बने। गर्मी में बैठे हैं तो बैठे हैं। ध्यान हमारा दूसरी तरफ होगा तो गर्मी-सर्दी भी हमको सताती नहीं है। निश्चित है कि जब हमारा ध्यान शरीर पर जाएगा तो हमें गर्मी लगने लगेगी, सर्दी लगने लगेगी। कभी हमारा ध्यान किसी दूसरी तरफ हो, चाहे कुछ सोच रहे होंगे फिर गर्मी में बैठे हैं, पंखा चल रहा था और बिजली चली गई तो भी मालूम नहीं पड़ेगा। हम किसी गंभीर मसले पर चिंतनशील हों तो हमारा ध्यान उधर नहीं जाएगा। क्यों ध्यान उधर नहीं जाएगा? इसलिए कि मैं किसी दूसरी तरफ ध्यान लगाकर बैठा हूं। जब दूसरी तरफ मेरा ध्यान है तो उस तरफ मेरा ध्यान गया ही नहीं। ये बात साधना की है। हमने यदि मन को साध लिया, मन को आत्मा की दिशा में लगा दिया तो फिर इंद्रियों की तरफ हमारा ध्यान गौण हो जाएगा। प्रमुखता से हमारा ध्यान उधर नहीं रहेगा। शरीर निर्वाह करना एक बात है और शरीर का संरक्षण करना, उसको बहुत सुविधाएं देना अलग बात है।

आचार्य देव के लिए सरजुग बाबू बोलते हैं कि 'आ साधु तो राख थई गयो छे', अंगार नहीं है। इनके भीतर पांच इंद्रियों के विषय अंगारे की तरह धधकते नहीं हैं। शांत हो चुके हैं। यह अवस्था हम भी अपने भीतर प्राप्त कर सकते हैं। अलग-अलग रूप में इसका अनुभव होता है।

एक किसान किसी दुकान पर पहुंचा। वह दुकान के सामने खड़ा है। उसके पैरों में जूतियां नहीं हैं। वह नंगे पैर है। एक भाई उसको कहता है कि अरे काका! तुम्हारे पांव के नीचे जलती हुई सिगरेट का टुकड़ा है। वह किसान पूछता है कि कौन-से पांव के नीचे? बायें पांव के नीचे या दायें पांव के नीचे? मतलब क्या है?

साधु गोचरी के लिए जाते हैं। अभी तो फिर भी इतनी गर्मी नहीं है और गर्मी के दिन में रसोई तो घरों में जब बनेगी उसी समय साधु को गोचरी जाना रहेगा। तपती धरती धोरा की और ग्यारह बजे की गर्मी। 12 बजे नहीं, 11 बजे की बात कर रहे हैं। तब धरती तप जाती है या नहीं तपती? अभी पिछले समय में एक ढाणियों में संत गए तो वहां साढ़े 9-10 बजे के लगभग गरमी ऐसी तमतमाती हुई हो गई कि उसमें चलना बड़ा भारी काम हो गया। किंतु ऐसी गरमी में भी संत चल रहे हैं। कैसे चलना हो रहा है? मतलब ऐसी सरदी-गरमी जिन्होंने सह ली उनकी चमड़ी में वैसा अनुभव होता ही नहीं है। सामान्य अनुभव होता भी होगा किंतु ज्यादा कठिनाई नहीं होती है। अब अनुभूति हो गई। कठिनाई इसलिए नहीं होती कि हमारे पैरों की चमड़ी ने उतनी सहनशीलता अर्जित कर ली कि इतनी गरमी आएगी तो हमारी चमड़ी को अहसास नहीं होगा।

वैसे ही वह किसान अपनी खेतीबाड़ी में बिना जूते-चप्पल के काम करता होगा। उससे उसकी चमड़ी इतनी मोटी हो गई कि जलती हुई सिगरेट का टुकड़ा उसके पैर के नीचे आ गया तो भी उसको मालूम नहीं पड़ता है। ऐसा तब होता है जब अभ्यास सध जाता है। इस प्रकार अभ्यास से यदि हम स्वयं को साध लेते हैं तो हमारी स्थिति भिन्न बन जाती है।

जो भी सिद्धि प्राप्त करना चाहेगा उसे स्वयं को साधना होगा। जिसको सिद्धि से कोई लेना-देना नहीं है, जिसको सिद्ध बनने से कोई मतलब नहीं है, जिसको मुक्ति के लिए कोई चाह नहीं है, वैसे लोगों की बात हम नहीं करते हैं। जिसके भीतर किसी-भी कोने में मुक्ति की भावना

है, सिद्ध बनने की भावना है उसे अपने आपको साधना होगा। हो सकता है कि अभी उसकी इतनी तैयारी नहीं हो किंतु कहीं न कहीं ललक-भावना बनी हुई है तो उसके किसी-भी कोने में यह विचार रहेगा कि मैं सिद्ध कैसे बनूं? सिद्ध बनने के लिए मुझे क्या करना है? सिद्ध बनने के लिए पहले स्वयं को साधना है। स्वयं को सिद्ध करना है। जैसे अभी बताया सरदी और गरमी के बारे में कि न मुझे सरदी का अहसास हो और न गरमी का अहसास हो। हम स्वयं को ऐसा बना लें कि शीत-उष्ण मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकते। यह अवस्था असंभव नहीं है। नहीं पाई जा सकती, ऐसा नहीं है। हम देखते हैं कि गजसुकुमाल के सिर पर अग्नि डाली गई, अंगारे डाले गए, फिर भी उनको उसकी पीड़ा नहीं हुई। पीड़ा नहीं होना मतलब उनका ध्यान ही नहीं गया। हो सकता है यह। किया जा सकता है। बस इसके लिए अभ्यास करना जरूरी होगा। अभ्यास होगा तो हम उसको समझ पाएंगे।

बात बहुत स्पष्ट हो चुकी है। मात्र पोशाक बदलने से साधना नहीं होती। कौन-सी पोशाक पहनने से आत्मसिद्धि प्राप्त हो जाएगी? काले कपड़े पहनने से सिद्धि होगी या लाल कपड़े पहनने से? भगवा कपड़े पहनने से सिद्धि मिल जाएगी या सफेद कपड़े पहनने से? कौन-से कपड़े पहनने से सिद्धि मिल जाएगी?

कपड़े से सिद्धि का कोई ताल्लुक नहीं है। कपड़े से सिद्धि का कोई संबंध नहीं है। हो सकता है आप कहें कि फिर साधना के लिए सफेद वस्त्र की बात क्यों कही जा रही है? श्रावकों को सामायिक में चोल पट्टे की बात क्यों कही जा रही है? पैंट और पायजामा पहने तो क्या फर्क पड़ता है? एक समय जब बार-बार निर्देश होता रहा तब लोगों ने फिर चोल पट्टा स्वीकार कर लिया, पर यहां जोधपुर में देखा जाता है कि कुछ भी पहन लेते हैं क्योंकि अब कहना कम हो गया है। नहीं तो? सुभाष जी[1] कहते थे कि मैं चोल पट्टा नहीं पहनता किंतु धीरे-धीरे निर्देश आ गया तो चोल पट्टे में आ गए। हां, शुरुआत में इतनी जल्दी नहीं थी। आखिर तो एक दिन ऐसा आ गया कि अब स्वयं को लगता है कि चोल पट्टा पहनना चाहिए। अभी भी दिख रहे हैं कोई काली पैंट पहने हुए पीछे बैठे हैं तो कोई धोली पैंट पहने।

1. सुभाष जी कांकरिया, कोलकाता

स्थविर श्री कान मुनि जी म.सा. बहुत स्पष्ट कहते हैं कि ये नरसिंह अवतार कहां से आ गए? क्या बोलते हैं, नरसिंह अवतार। ये क्या है? नीचे का शरीर किसका था? नीचे का शरीर आदमी का था और ऊपर का भाग शेर का था। वो कहते हैं कि ये नरसिंह अवतार कैसे बना लिया? नीचे काला, ऊपर सफेद। कह देते हैं वे विनोद में। विनोद में मतलब, प्रेरणा देने की बात है। धर्म आराधना के लिए विधि से आना चाहिए। विधि को स्वीकार करना चाहिए। स्कूल में वर्दी होती है। पुलिस की वर्दी होती है। वकील की वर्दी होती है। जज की वर्दी होती है। डॉक्टर की वर्दी होती है। फिर हमारे धर्म स्थान में वर्दी क्यों नहीं हो? फिर भी एक वर्दी नहीं दिखती है। फर्क दिखता है। किसी की मुंहपत्ती छोटी मिलेगी, किसी की लंबी मिलेगी तो किसी की चौड़ी मिलेगी। सबकी अपनी-अपनी बात है। किसी की चद्दर लाल किनारी वाली होगी तो किसी की चद्दर प्लेन मिलेगी। किसी की चद्दर मोटी मिलेगी तो किसी की चद्दर पतली मिलेगी। करे क्या? होता है ऐसा। कहने का आशय है ऐसा सब चल रहा है। चला रहे हैं। मैं पहले ही कह चुका हूं कि ये पोशाक आपको मुक्ति दिलाने वाली नहीं है। फिर भी इन पोशाकों का तथ्य है। जब व्यक्ति इस पोशाक में होता है तो उसे अहसास होता है कि धर्म-क्षेत्र में है। धार्मिक आराधना हेतु तत्पर है। कभी मन भटक जाये तो इन पोशाकों से उसे आत्म-प्रेरणा मिल सकती है। मिलती है।

कई ऐसा भी कह देते हैं कि आप यदि मुक्ति ही चाहते हो, मोक्ष जाना ही चाहते हो तो उसके लिए दीक्षा लेना जरूरी नहीं है। मैं आपको रास्ता बताता हूं। आप माता-पिता की सेवा कीजिए। माता-पिता की सेवा करेंगे तो उनके दिल से आपको आशीर्वाद मिलेगा। दिल से मिला आशीर्वाद फलीभूत होता है। दीक्षा लेकर आप माता का कलेजा तड़फाओगे। माता-पिता के दिल को दुखाओगे। वह दीक्षा सार्थक नहीं हो पाएगी। दीक्षा नहीं लेंगे किंतु अपने माता-पिता के दिल को जीत करके ठार दिया तो उनकी सेवा से जो आशीर्वाद मिलेगा, वह आपको मुक्ति दिलाने वाला बन जायेगा। उस आशीर्वाद में इतना बल होगा कि वह मुक्ति दिलाएगा।

इस प्रकार वह कहता है आप उस मुक्ति के लिए आशीर्वाद प्राप्त कीजिए और माता-पिता की सेवा कीजिए। विषय को टालना हो तो उसके लिए तर्कों की कमी नहीं है। विषय को टालने की कोशिश एक सम्राट कर रहा था। कैसे कर रहा था, क्या कर रहा था उसे सुनें।

एक सम्राट ने ऐलान करवाया कि जो कोई भी नई रचना, नया श्लोक, नई कहानी, नया स्तवन, नई स्तुति चाहे किसी तरह की नई रचना करके मुझे सुनाएगा, उसको एक लाख स्वर्ण मुद्राएं इनाम में दी जाएंगी। रचना एकदम नई होनी चाहिए। पुराना कुछ भी नहीं होना चाहिए। इस ऐलान के बाद बहुत सारे विद्वान् रचनाएं लाते। कोई राजा पर श्लोक बनाकर लाता। कोई राजा की स्तुति रचकर लाता। कोई भगवान की स्तुति तैयार करके लाता। एकदम नई रचना करके लाते किंतु जैसे ही राजा को सुनाते राजा कहते कि अरे! यह तो मेरे पहले से सुनी हुई है। मैं तो पहले से ही जानता था। नई कहानी भी होती, फिर भी राजा बोल देते। राजा की इतनी प्रखर प्रज्ञा थी या समझ लो कि उन्हें वरदान था कि एक बार कोई बोले तो उन्हें एकदम हूबहू याद हो जाए। ऐसा हो सकता है या नहीं हो सकता?

कहते हैं कि कांग्रेस अध्यक्ष थे राजेंद्र बाबू। उस समय एक रिपोर्ट तैयार की गई थी और उनको देखने के लिए उन्हें दी गई। राजेंद्र बाबू ने देखकर वापस लौटा दी रखने के लिए किंतु रिपोर्ट इधर-उधर हो गई। वह मिल ही नहीं रही थी। मीटिंग शुरू होने वाली थी और मीटिंग में उसकी जरूरत रहती। राजेंद्र बाबू ने कहा बैठो मेरे पास। पास में बिठाया और लिखाया। जैसे पूरी रिपोर्ट लिखी गई कि एक व्यक्ति भागता हुआ आया और बोला कि रिपोर्ट मिल गई, रिपोर्ट मिल गई। लोगों के मन में कुतूहल पैदा हुआ। दोनों रिपोर्टों को मिलाया गया। कहते हैं कि पूर्ण विराम, अर्द्ध विराम, कोमा तक का पूरा मिलान हो गया। दोनों रिपोर्ट हूबहू। जब राजेंद्र बाबू इस युग में इतनी बात याद रख सकते हैं, एक बार पढ़ने के बाद वापस वैसे का वैसा लिखा सकते हैं तो उस सम्राट को भी ऐसा ही कुछ वरदान समझें या बुद्धि समझें या प्रज्ञा समझें। एक बार जो कहा जाता वह उनके समझ में आ जाता या उनको याद हो जाता, कंठस्थ हो जाता।

स्थूलिभद्र मुनिराज की बहनों में भी यह लब्धि थी। यह शक्ति थी। एक बहन को एक बार सुनने पर याद। दूसरी को दो बार सुनाने के बाद याद। तीसरी को तीन बार सुनाने पर याद। चौथी को चार बार सुनाने के बाद याद हो जाता। ऐसे हर को एक-एक बढ़ाकर कह दें तो बोलती कि यह तो मेरे को भी याद है, यह तो मेरे को भी याद है। कोई भी नई रचना करके लावे किंतु वहां पर दाल गले नहीं। वैसे ही यहां सम्राट के पास कोई रचना लेकर आता है

तो सम्राट वापस उसको उसी समय सुना देता। कोई भी सुनाते तो यही कहता कि ये तो पुरानी बात है। बात नई होनी चाहिए।

एक ब्राह्मण पुत्र था। वह था तो गरीब किंतु बुद्धिमान बहुत था। वह आया और उसने एक श्लोक समझें, कहानी समझें या रूपक द्वारा अपनी बात कही और कहा यह मेरी एकदम नई रचना है। अब तक आपने ऐसी रचना कभी नहीं सुनी होगी। मैं आपको यह रचना सुनाना चाहता हूं। सम्राट तैयार हो गया। सम्राट सोच रहे हैं कि इसको पता नहीं है यह कुछ भी कहेगा, मैं एक बार सुनने के बाद उसको जान लेता हूं। यह बेचारा आया है पूरी तैयारी करके इनाम जीतने के लिए, पर इसको नहीं मालूम कि यह इनाम इतनी जल्दी किसी को मिलता नहीं है।

हकीकत मुझे मालूम नहीं, ऐसा कहते हैं कि किसी संत के चातुर्मास के लिए लोगों का बहुत ज्यादा आग्रह होने लगा। दो संघों का आग्रह एकदम प्रबल था। दोनों ही अपने यहां चातुर्मास कराना चाहते थे। कहते हैं संत ने दो चिट्ठी लिखकर किसी बच्चे के आगे डालकर उस बच्चे के हाथ से उठवा दी। कहा कि देख लो कि किसका नाम आता है? एक का नाम तो निकलेगा ही। हुआ यों कि दोनों कागजों में एक ही नाम लिख दिया गया था। अब नाम किसका आएगा? नाम तो एक का ही आना है। यहां भी राजा सोच रहा है कि बात वो ही आनी है, किंतु उस ब्राह्मण पुत्र ने कहा कि 'आपके पिता श्री ने मेरे पिता श्री से 10 लाख स्वर्ण मुद्राएं ली थीं, जिसको लिए हुए 40 साल हो गए। उस बात को बीते हुए 40 साल हो गए। 40 साल का कितना ब्याज हुआ होगा, आपको यदि जानकारी में है तो 40 साल का ब्याज जोड़कर पूरा धन दे दीजिए और आपके लिए नई बात है तो एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का इनाम दे दीजिए। अब क्या करना चाहिए? राजा को क्या करना चाहिए? 100 दिन सुनार के तो एक दिन लुहार का। 100 दिन राजा ने चला लिए। कोई भी आकर रचना सुनाता तो राजा उस रचना को तत्काल बोलकर सुना देते और कहते कि यह पुरानी बात है। नई बात नहीं है। किंतु ब्राह्मण की इस कहानी को कैसे पुरानी बात बोलें? यदि बोल दें कि पुरानी बात है तो कितना देना पड़ेगा? यदि ब्याज नहीं, सिर्फ मूल लौटावें तो भी 10 लाख स्वर्ण मुद्राएं देनी पड़े। राजा ने देखा कि अब पुरानी बात बोलेंगे तो चलेगा नहीं। अब

छुटकारा नहीं है। अंततोगत्वा उस ब्राह्मण को एक लाख स्वर्ण मुद्राएं देकर कहा कि तुमने यह नई कहानी सुनाई है। आज तक यह कहानी सुनी नहीं है। यह बुद्धि का कौशल है। बुद्धि तत्त्व प्रतिपादिका भी होती है और विषय भटकाने का काम भी बुद्धि से किया जाता है।

राजा ज्यादा धन नहीं देने के लिए उस ब्राह्मण पुत्र की बात को नई बात कहते हैं। यह बुद्धि कौशल था। चाहे राजा का कहो, चाहे ब्राह्मण पुत्र का कहो। दोनों ने बुद्धि कौशल से दांव खेल लिया और अपनी-अपनी स्थिति में आ गए। अपने स्वार्थ को पुष्ट करना है तो आदमी पुष्ट कर ही लेता है। अपने स्वार्थ के लिए आदमी कुछ भी कर लेता है। अपने स्वार्थ को पुष्ट करने के लिए दूसरे का जीवन धूल में मिले या चाहे कुछ भी हो, उसे मतलब नहीं रहता। किंतु हकीकत में आप विचार करेंगे तो वह धर्म का रूप नहीं बन पाएगा। क्योंकि कोई-भी धर्म निर्दयता नहीं सिखाता है। धर्म वही है जिसमें दया हो। धर्म का मूल दया है। धर्म दया में है या बिना दया में? बिना दया कोई धर्म नहीं है। दया में ही धर्म है।

रामचरितमानस में भी कहा गया है कि 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई'। स्वार्थ हित में धर्म नहीं है। दूसरे का हित करने से बढ़कर और कोई धर्म नहीं हो सकता है। उससे बढ़कर क्या धर्म हो सकता है? यह एक पक्ष है। अपना पक्ष रखने की सबको छूट है। लेकिन जो पक्ष रखा गया या रखा जा रहा है, वह पूर्ण सत्य-तथ्य रूप ही हो ऐसा नहीं है।

दीक्षा लेना कोई निर्दयता नहीं अपितु जगत् के समग्र जीवों का दया रूप है। जहां व्यक्ति का स्वार्थ व मोह का सम्बन्ध जुड़ा रहता है वहां वह अपने उस संकीर्ण दायरे में ही विचार कर पाता है। उसकी दृष्टि वसुधैव कुटुम्बकम् की बनना कठिन है। सास-बहू के विचार एक नहीं हो पाते, क्यों? दोनों का स्वार्थ ही कहीं न कहीं टकराता है। परहित धर्म की बात भी गृहस्थ के दायरे में समझी जा सकती है। अध्यात्म जगत में परमार्थ ही सर्वोपरि है। अतः व्यक्ति का सामर्थ्य हो तो उसे परमार्थ की ही आसेवना करनी चाहिए। वही अर्थ है। वही परमार्थ है। उसी से व्यक्ति अपना उद्धार कर सकता है। स्वार्थ, कुण्ठित करता है। परहित-परमार्थ पुण्यों का संचय करा सकता है। परमार्थ ही एक ऐसा उपाय है जो आत्मा से परमात्मा बना सकता है। इन्द्रिय जय का उपदेश परमार्थ से ही प्राप्त होता है। वासना के अंगारे को

राख बनाने का सामर्थ्य भी उसी में है। इसलिए व्यक्ति को उसी दिशा में प्रयत्नशील बनना चाहिए। आत्म-कल्याण के लिए यही एक मार्ग है। इसी मार्ग पर चलने से हम साध्य रूप मोक्ष को वरने में समर्थ हो सकते हैं। इतना कहते हुए विराम लेता हूं।

27 सितम्बर, 2019

7

दो शक्तियों का मेल

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे...

प्राणी भयभीत होता रहता है। उसके मन में कई शंकाएं-आशंकाएं चलती रहती हैं। उन शंकाओं के कारण वह भयभीत बना रहता है। वह चिंताओं से घिरा रहता है। भय मोह कर्म का ही एक भेद है। चिंता भी मोह कर्म का ही एक अवांतर भेद है, जो लोभ-लालच से पैदा होता है।

भय क्यों होता है? मनुष्य को भय क्यों होता है? खाली मनुष्य की बात नहीं है, किसी भी प्राणी को भय क्यों होता है? क्या कारण है भय का?

सात प्रकार के महा भय बताए गए हैं। इहलोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात् भय, आजीविका भय, अश्लाघा भय और मरण भय। ये सात भय बताए गए हैं। किसी न किसी प्रकार से व्यक्ति अपने मन में भय को पालता रहता है। भयभीत होता रहता है। क्या व्यक्ति निर्भीक नहीं बन सकता है? 'सत्य का संबल' यदि उसे मिल जाए तो उससे भय दूर हो जाता है। वह निर्भीक हो जाता है। फिर उसको भय सताता नहीं है। जब तक व्यक्ति असुरक्षा में जीता है तब तक उसको भय होता है। असुरक्षा असत्य के कारण होती है। सत्य का समन्वय हो जाए, सत्य का संबंध जुड़ जाए तो फिर असुरक्षा की कोई बात होती ही नहीं है। जिसने जान लिया कि मेरी आत्मा अजर है, अमर है। उसे भय नहीं होता। जान लिया का मतलब हकीकत में जान लिया। केवल औपचारिकता से नहीं। औपचारिकता से तो हम सभी जान रहे हैं।

हमने आगमों में पढ़ा है, किताबों में पढ़ा है, मुनियों के व्याख्यानों में सुना है इसलिए हमारी वैसी धारणा बन गई है। धारणा बनना एक बात है और वैसी अनुभूति होना दूसरी बात है। जिसको वैसी अनुभूति हो जाती है,

उसको कोई भय सता नहीं सकता क्योंकि सत्य से उसका वास्ता हो गया है। सत्य से उसका संबंध जुड़ गया है। सत्य से संबंध जुड़ने के बाद चाहे कैसी भी विपदाएं क्यों नहीं आ जाएं, भय पैदा नहीं होगा। कष्ट हो सकता है, कठिनाई हो सकती है किंतु भय नहीं होगा।

आप विचार करें उस बात पर जब खंदक ऋषि की चमड़ी खींचने की बात सामने आई। एक क्षण के लिए भी उनके मन में भय नहीं आया। उनके मन में भय का संचार नहीं हुआ। सेठ सुदर्शन के सामने अर्जुन मुद्गरपाणि यक्ष का मुद्गर हिलाते हुए आ रहा है किंतु सेठ सुदर्शन के मन में कोई भय नहीं है। क्यों नहीं है भय?(जोर देते हुए) क्यों नहीं है? बहुत स्पष्ट है कि सत्य से संबंध जुड़ गया। 'सच्चमेव समभिजाणाहि', यानी सत्य को सम्यक् प्रकार से जानो, भलीभांति जानो। बताया गया है कि सत्य का बल जिसको मिल जाता है, वह पूरी दुनिया से अकेला लड़कर भी जीत जाता है।

लड़कर सारे जग से अकेला, लेता बाजी मार

सारे जग से अकेला लड़कर वह बाजी मार लेता है। बाजी जीत लेता है। जीत जाता है। कहने को तो हम जरूर कहते हैं 'सत्यमेव जयते', सत्य की विजय होती है, किंतु हमें इसका भरोसा कितना है, विश्वास कितना है, हम इस पर अटल कितने रहते हैं? मान्यता, हमारी मान्यताओं के साथ रही हुई है और जहां हमें कदम उठाकर खड़े रहने की बात है, वहां हम खड़े नहीं रह पाते हैं। वहां मन ऊंचा-नीचा हो जाता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव ने एक चिंतन में लिखा है कि 'संकल्प की शक्ति और पुरुषार्थ की शक्ति जब एक साथ जुड़ जाती है तो व्यक्ति निर्भीक हो जाता है। उसके मन से भय दूर हो जाता है। भय हट जाता है। वह निर्भीक हो जाता है।' एक तो उसका संकल्प है और दूसरा उसका पुरुषार्थ है। संकल्प की दृढ़ता सत्य से होती है और जो सत्य दृढ़ संकल्प वाला होता है, उसमें पुरुषार्थ फलित होने लगता है, घटित होने लगता है। सत्य कभी अकर्मण्यता नहीं सिखाता। संकल्प, यह कभी नहीं कहता कि तू चुपचाप बैठ जा। चुपचाप बैठना भी है तो उसके पीछे कोई न कोई रीजन होगा। गहरा विचार होगा। उसके बिना वह वैसे ही नहीं बैठेगा। संकल्प और पुरुषार्थ नाम की दो शक्तियां जब जुड़ जाती हैं, एक हो जाती हैं तो बल बढ़ जाता है। उस बल से व्यक्ति स्वयं को निर्भीक समझने लग जाता है। उसका भय दूर हो जाता है। 'अभवो पत्थिवा! तुज्झं, अभयदाया भवाहि य'। संयति राजा को कहा

गया कि हे राजन्! तुम निर्भय रहो और तुम अभयदाता बनो। संयति राजा ने संकल्प किया और वैसा ही पुरुषार्थ किया। संकल्प और पुरुषार्थ के बल से वे अभयी बन गए। निर्भयी बन गए। निर्भीक हो गए।

हमने अनाथी मुनि की घटना सुनी है। उनकी कहानी बहुत बार सुनी है। उन्हें भयंकर वेदना हो रही थी। भयंकर दर्द हो रहा था। उनके मन में एक संकल्प जगा कि ये बीमारी यदि दूर हो जाए तो मैं मुनि जीवन स्वीकार कर लूं। यह बात मैं कई बार बोल चुका हूं। कई बार बोलता रहता हूं क्योंकि इसके पीछे सत्य का संबंध जुड़ा हुआ है। जैसे ही उनकी बीमारी दूर हुई, उन्होंने उसी संकल्प के अनुसार मुनि जीवन स्वीकार कर लिया। ऐसा नहीं है कि मन का संकल्प कुछ और रहा और क्रियान्विती कुछ और बनी। मन से सोचे कुछ, धारणा कुछ करे और क्रियान्विती कुछ और हो। वहां सत्य नहीं रहेगा। सत्य क्रिया में ढलेगा, पुरुषार्थ में बदलेगा। संकल्प यदि सच्चा है तो वह ठहरेगा नहीं। वह कदम बढ़ाएगा। हम देखते हैं कि अनाथी मुनि के कदम आगे बढ़ गए।

वस्तुतः जिस संकल्प के साथ सत्य का संबंध होता है, वहीं पर दृढ़ता आती है। लोहे के सरिये, आर.सी.सी. मकान बनाने के काम में आते हैं किंतु खाली लोहे के सरिये मकान बनाने में समर्थ नहीं होते हैं। सीमेंट, कंकरीट आदि का उसके साथ संबंध जुड़ जाता है तो वहां इतनी दृढ़ता आ जाती है, वह इतना पक्का हो जाता है, इतना मजबूत हो जाता है कि कई बार तो भूकंप से भी वह नहीं हिलता। ये ताकत न केवल लोहे में है, न कंकरीट में है। लोहा और कंकरीट मिले तो इतने मजबूत हो गए। वैसे ही संकल्प के साथ सत्य मिल जाता है तो वह सुदृढ़ हो जाता है। बिना सत्य के जो संकल्प होता है, वह जिद होती है। वह हठ होती है। वह लास्टिंग करने वाला नहीं होता है। वह मन को समाधि देने वाला नहीं होता है। वह मन को कचोटता है। मन को दुःख देता है। मन को पीड़ित करता है। मन में अशांति देता है। सत्य से संबंधित संकल्प मन को शांति देने वाला होता है। अशांत मन भी उससे शांत हो जाएगा। इतना ही नहीं यदि व्यक्ति के पास किसी चीज का अभाव भी है तो वह अभाव भी उसको अभाव के रूप में खलेगा नहीं। कष्ट देने वाला नहीं बनेगा। उसकी समाधि में, उसकी शांति में कोई खलल नहीं पड़ेगा।

पूणिया श्रावक के लिए कुछ लोगों की मान्यता रही है कि उसके पास भरपूर संपत्ति थी। कुछ मान्यता ऐसी भी रही है कि केवल पूनिया कातकर के

जीवन निर्वाह करता था। मतलब रोज कुआं खोदो और रोज प्यास बुझाओ। जैसी भी स्थिति रही हो किंतु उसका चित्त शांत था। उसमें चाह, आकांक्षा, अपेक्षा नहीं थी। अपने आप में संतुष्टि थी। ये सत्य का प्रताप है। यह सत्य की उपलब्धि है। हम अपने भीतर अनुभव कर सकते हैं कि मुझे सत्य की प्राप्ति हुई या नहीं हुई? मैं सत्य को उपलब्ध हुआ या नहीं हुआ?

कई लोग प्रश्न पूछा करते हैं कि गुरुदेव! अभवी की पहचान क्या है? भवी होने का निर्णय कैसे करें? उनको बताया जाता है कि आचार्य शीलांक मानते हैं कि जिसके अंतर से ऐसा विकल्प पैदा हो, ऐसी जिज्ञासा पैदा हो, ऐसी भावना पैदा हो कि मैं भवी हूं या अभवी हूं, वह भवी है। ऐसा प्रश्न जिसके भीतर से पैदा होता है, वह भवी होता है। भवी के मन में ही ऐसा विकल्प पैदा होता है। अभवी के मन में ऐसा विचार पैदा ही नहीं होता है। जैसे यहां भवी का निर्णय हो जाता है कि मैं भवी हूं, वैसे ही मैं सत्य का स्पर्श कर पाया हूं, इसकी भी हम पहचान कर सकते हैं। इसकी भी हमें पहचान हो सकती है। घोर अंधेरे में-घोर विपत्ति में भी जिसके रोम कूप खड़े नहीं होते हों, रोंगटे खड़े नहीं होते हो उसे समझना चाहिए कि सत्य से मेरा संबंध जुड़ गया।

कोई व्यक्ति बंदूक की नाल सीने पर लगाए हुए खड़ा है, कोई नंगी तलवार लेकर खड़ा है और कहता है कि बस सरेंडर। इसके बावजूद मन में कोई भय की रेखा नहीं होना, एक भी रोम खड़ा नहीं होने की स्थिति जब हमको अपने आप में अनुभूत हो जाए तो समझ लो कि मेरे भीतर सत्य का संबंध जुड़ गया है। मैं सत्य का स्पर्श करने वाला बन गया हूं।

बताते हैं कि सिकंदर को उसके गुरु ने कहा था कि तुम भारत पर विजय प्राप्त करो तो इस बार भारत के किसी संत को लेकर आना। भारत को लूटने के बाद उसने अपने कर्मचारियों से, अपने व्यक्तियों से कहा कि जाओ एक संत को ढूंढो और उसको कहो कि मेरे साथ चलेगा। कर्मचारी संत को ढूंढने के लिए चले गए। संयोग से उन्हें एक संत मिल गए। उन्होंने उनसे कहा कि चलो।

संत ने कहा– कहां चलना है भाई।

कर्मचारी कहता है– हमारे साथ चलो।

संत– क्यों चलूं? किसलिए चलूं?

कर्मचारी– ज्यादा बातें मत बनाओ, ज्यादा शब्द मत लड़ाओ, उठकर खड़े हो जाओ तत्काल। जानते हो यह सिकंदर का आदेश है।

संत– कौन सिकंदर?

कर्मचारी– क्या सिकंदर का नाम नहीं सुना है!

संत– मेरा सिकंदर से क्या लेना-देना है। होगा कोई सिकंदर और उसके कहने से मैं क्यों चला जाऊं। मैं उसकी बात क्यों मानूं।

कर्मचारी– चुपचाप बात मानते हो तो ठीक नहीं तो हमको जबरदस्ती करनी पड़ेगी।

संत– मैं नहीं चलूं तो क्या करोगे?

कर्मचारी– नहीं चलोगे तो क्या करेंगे, यदि हमें अनुमति होती तो हम तुमको बता देते कि हम क्या करते? अभी तुम्हारी गर्दन, तुम्हारा यह सिर धड़ से लगा हुआ नहीं रहता। चूंकि हमें जिंदा संत को पकड़कर लाने की बात कही गयी है, इसलिए हम ऐसा कोई कदम नहीं उठा पा रहे हैं अन्यथा इतनी देर लगती ही नहीं।

संत– मैं नहीं चलता हूं। मैं यहीं पर बैठा हूं। मुझे कोई नहीं ले जा सकता।

सिकंदर के पास सूचना गई। बताया जाता है कि सिकंदर स्वयं आ गया और कहा कि उठो, मेरे साथ चलो।

संत ने कहा कि मैं नहीं चलता। मैं क्यों तुम्हारी बात मानूं? मैं तुम्हारा गुलाम नहीं हूं।

सिकंदर को गुस्सा तो इतना आया कि अभी इसकी गर्दन नीचे उतार दे। चूंकि उसको संत को जिंदा ले जाना था, इसलिए खामोश रह गया और क्रोध का घूंट पीकर रह गया। आज तक उसने अपना अपमान नहीं सहा था। आज उसे अपना अपमान भी सहन करना पड़ रहा है। इसके बावजूद वह संत से कहता है कि आपको चलना है, चलना है, चलना है।

संत ने कहा कि भाई, मेरे पर धूप आ रही है। इधर से हट जाओ ताकि मेरे पर धूप आती रहे। जब संत मानने को तैयार नहीं हुए तो सिकंदर ने तलवार खींच ली और कहा– जानते हो सिकंदर की बात नहीं मानने का अंजाम क्या होता है? तुम्हारी गर्दन कट जाएगी। तुमको मृत्यु शय्या पर सुला दिया जाएगा।

संत उसी बेफिक्री से जवाब देते हैं कि तू 'मुझे' नहीं मार सकता है। मेरे शरीर को भले ही तू मार सकता है किंतु मुझे नहीं मार सकता।

फिकर सबको खात है, फिकर सबका पीर।

जो फिकर का फाका करे, उसका नाम फकीर।।

कोई चिंता नहीं, कोई टेंशन नहीं, कोई तनाव नहीं, कोई भय नहीं। ये दृढ़ता आई कहां से? ये मजबूती आई कहां से?

हम हर वर्ष सेठ सुदर्शन को सुनते हैं। उसमें भी हम वह दृढ़ता देखते हैं कि भय का कोई नामोल्लेख नहीं है। भय से जरा-सा भी उसका रोम कंपित हुआ हो, ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता। ये दृढ़ता तब आई जब दो शक्तियां 'संकल्प और पुरुषार्थ' मिल गईं। उसके बल पर व्यक्ति जैसा चाहे, जैसा ठाने, जैसा सोचे वैसी सफलता प्राप्त करता है, बशर्ते कि वैसी दृढ़ता हमारे भीतर बने। सिकंदर ने तलवार खींच ली और संत से कह रहा है किंतु संत कहता है कि तू मुझे नहीं मार सकता। 'मैं अमर हूं, मेरी आत्मा अमर है।' तू मारेगा तो इस शरीर को मार सकता है, आत्मा को नहीं।

बंधुओ! हम भी धर्मी हैं, हम अपने आपको धर्मात्मा मानकर चल रहे हैं। हम अपने आपको सत्यनिष्ठ भी मानकर चल रहे होंगे किंतु ये दृढ़ता हमारे भीतर है? विरले व्यक्ति होते हैं, जिनके भीतर ऐसी दृढ़ता मिल पाएगी। हजारों में एक आदमी भी मिल जाए तो बहुत समझो। दस में एक आदमी मिलेगा? सौ में एक आदमी मिलेगा? या हजार में मिलेगा? दस में से दस मिलेंगे, सौ में सौ मिलेंगे या हजार में एक मिलेगा? (प्रत्युत्तर– नहीं मिलेगा) आप कह रहे हो कि नहीं मिलेगा। क्यों नहीं मिलेगा भाई? सौ में भी एक आदमी ऐसा नहीं मिलेगा तो फिर हमने सत्य को क्या समझा? हमने धर्म को क्या समझा? धर्म हमारे कहां तक नजदीक आया? हम धर्म के कितने नजदीक पहुंचे? वस्तुतः जब तक परीक्षा नहीं हो जाती है तब तक स्वयं को धर्मात्मा, सत्यात्मा मानना बहुत आसान है किंतु जिस समय परीक्षा के क्षण आ जाएं, उस समय हम वैसे ही बने रह जाएं तब सच्चाई ज्ञात हो पाएगी।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. के मुनि जीवन की एक घटना है। स्थान है, गंगाशहर-भीनासर। प्रसंग है श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ के सम्मेलन का। श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ

का सादड़ी के बाद यह दूसरा सम्मेलन था और उस समय बड़ी विकट परिस्थितियां सामने खड़ी हो गई थीं। जैसा कि ऐतिहासिक पृष्ठों पर अंकित है और जैसा हमने गुरु भगवंतों से सुना है। पंजाब, हरियाणा के लोग निर्णायक स्थिति पर आए हुए थे। उनका आग्रह-दुराग्रह, जो भी समझें कि माइक खुलना चाहिए। बड़ी पेचीदा समस्या हो गई। बड़ी जटिल परिस्थिति बन गई। बताने वाले यहां तक बताते हैं कि मारा-कूटी जैसी स्थिति बन गयी थी, किंतु समझदार व्यक्तियों ने रास्ता निकाला। मूर्धन्य मुनिराजों ने गहन विचार कर एक प्रस्ताव अंकित किया-

'माइक में बोलना मुनि धर्म की परंपरा में नहीं है। अपवाद में बोलना पड़े तो प्रायश्चित्त लेना होगा। स्वच्छंदता से कोई प्रयोग नहीं करेगा।'

उक्त तीन पंक्तियों का एक प्रस्ताव बनाया गया और राजीमति का विवाह रचा दिया गया। नेम जी की बारात सज गई, पर शादी हुई क्या नेम जी की? हो-हल्ला करने वालों ने हल्ला कर दिया कि माइक खुल गया, माइक खुल गया, माइक खुल गया। डिब्बा बंद है और आपको दे दिया। डिब्बे में क्या है, यह खोलेंगे तब मालूम पड़ेगा। उस प्रस्ताव के साथ यह बात थी कि जब तक इसकी व्याख्या नहीं हो जाए, कोई नहीं बोलेगा। उस समय लगभग चालीस हजार लोग रहे होंगे। फिर भी उस समय माइक का प्रयोग नहीं हुआ। यदि खुल गया होता तो फिर शुभ मुहूर्त निकालने में क्या देरी लगती? उसी दिन या उसके दूसरे दिन उसका प्रयोग हो गया होता, क्योंकि चालीस हजार लोग मौजूद थे और सबकी ऐसी आवाज थी नहीं कि चालीस हजार लोगों तक पहुंचा दे। फिर भी उसका प्रयोग नहीं हुआ।

यह बात स्पष्ट करती है कि प्रस्ताव बना किंतु जब तक उसकी व्याख्या नहीं हो जाए, स्पष्टता नहीं हो जाए कि कौन-सी परिस्थितियां हैं, कौन-सा अपवाद है और क्या प्रायश्चित्त होगा, तब तक उसका कोई उपयोग नहीं कर सकता। उन तीन लाइनों को सुनकर बहुत-से लोग आज भी कहते हैं कि म.सा. देख लो, प्रस्ताव में खुल गया है माइक तो। सिद्धांतवादी मुनिराज बहुत अच्छी तरह से निश्चिंत थे कि यहां केवल शब्दों की जोड़-तोड़ हुई है, माइक खुला नहीं है। पहली पंक्ति अपने आप में निषेध परक ही है कि माइक में बोलना मुनि धर्म की परंपरा में नहीं है और दूसरा है कि अपवाद में बोलना पड़े तो प्रायश्चित्त लेना होगा। क्या अर्थ होता है, अपवाद में बोलना

पड़े तो? अपवाद में बोलना पड़े तो उसकी परिभाषा क्या है? बोलो, कौन बताएगा? अपवाद में बोलना पड़े तो उसकी परिभाषा क्या? हम जवाब दे देते हैं कि ज्यादा लोग हो जाना अपवाद है। लोगों तक आवाज नहीं जाना अपवाद है। वह अपवाद नहीं होता है।

अपन एक बहुत स्पष्ट बात करें जैसे समता भवन में महाराज विराज रहे हैं, संत विराज रहे हैं। हल्की बूंदाबांदी हो रही है और प्रसंग कोई ऐसा है कि लगभग पांच हजार लोग यहां उपस्थित हैं। अब यह बताइए कि पांच हजार लोग उपस्थित हैं तो ऐसी स्थिति में समता भवन से यहां पर संत आ सकते हैं क्या? (प्रत्युत्तर– नहीं) आप कह रहे हो कि नहीं आ सकते। क्यों नहीं आ सकते? क्योंकि पानी की बूंदें आ रही हैं। यहां अपवाद नहीं होगा क्या कि पांच हजार लोग उपस्थित हुए हैं। पांच हजार लोगों का कोई अपवाद तो होता होगा? यदि अप्काय की विराधना का अपवाद पांच हजार लोग नहीं हो सकते हैं तो तेउकाय की विराधना का अपवाद पांच हजार लोग कैसे हो सकते हैं? यदि पांच हजार लोगों के लिए पानी के जीवों की हिंसा नहीं कर सकते हैं तो पांच हजार लोगों के लिए तेउकाय के जीवों की हिंसा क्यों होगी? दोनों में जीवों की हिंसा बराबर होगी या नहीं होगी? अप्काय की हिंसा नहीं करना और तेउकाय के जीवों की हिंसा कर देना। फिर आप पूछोगे कि अपवाद में बोलना पड़े तो म.सा. इसका अर्थ क्या हुआ? फिर मतलब ही नहीं निकला कि अपवाद में बोलना पड़े...

जिस समय भारत और पाकिस्तान अलग हुए थे, उस समय रावलपिंडी या लाहौर में संत अटक गए थे। उन्होंने बॉर्डर पर माइक के द्वारा ब्रॉडकास्टिंग की या दूसरों से करवाई कि हम यहां फंसे हुए हैं। हमें बचाया जाए या निकाला जाए। यह अपवाद हुआ। जहां साधु जीवन संकट में पड़ जाता है, वहां अपवाद का सेवन होता है। उत्सर्ग मार्ग में जब रास्ता बंद हो जाता है, तब अपवाद मार्ग को स्वीकार किया जाता है। साधु भला-चंगा है, ठीक है, उस समय वह अपवाद का सेवन नहीं कर सकता। साधु बीमार हो गया और डॉक्टर कहता है कि ऑपरेशन करना पड़ेगा, उसके बिना कोई चारा नहीं है। अब संयमी जीवन की रक्षा के लिए ऑपरेशन करने का निर्णय होता है तो वह अपवाद है, क्योंकि 'उत्सर्ग भी संयमी जीवन' के लिए है और 'अपवाद भी संयमी जीवन' के लिए है। साधु यदि उपदेश नहीं देता है तो संयमी जीवन में कोई बट्टा नहीं लगेगा।

आज मैं विचार कर लूं कि मुझे उपदेश नहीं देना है तो मेरा संयमी जीवन रहेगा या नहीं रहेगा? नहीं बोलने मात्र से संयम चला जाएगा क्या? क्या साधु को बोलना अनिवार्य है? साधु को बोलना जरूरी है क्या कि तुमको बोलना ही पड़ेगा? चाहे कितनी भी बारिश होती हो, बूंदाबांदी होती हो, आपको यहां पर आकर व्याख्यान देना ही पड़ेगा? है क्या ऐसा? (प्रत्युत्तर– नहीं) तो सिद्धांत पक्ष को मानने वाले संत निश्चिंत थे कि जब भी इन तीन पंक्तियों की परिभाषा होगी तो अपने आप ही ताला बंद ही रहेगा। ताला खुलेगा ही नहीं। खुला नहीं होगा। मतलब माइक में बोलने की अनुमति है ही नहीं। जब भी इसकी व्याख्या होगी, कोई भी सिद्धांतवादी संत व्याख्या करेगा तो स्पष्ट है कि उसकी व्याख्या क्या करेगा? इसलिए सिद्धांत वाले राजी थे कि वातावरण तो शांत हो गया। जो लोग चाहते थे कि माइक का प्रयोग हो, वे लोग मन में खुश हो गए कि ठीक है, व्याख्या होनी है, व्याख्या भी हो जाएगी। माइक खुल तो गया। वे केवल शब्दों में रह गये। वे उसकी गहराई को नहीं माप सके।

मैं जो बात कहना चाह रहा था वह उसके आगे की है। वह यह कि जब दूसरी मीटिंग में इस प्रस्ताव को पढ़ा गया और उसमें लिखा गया कि 'सर्वानुमति,' तब पूज्य मुनि श्री नानालाल जी म.सा. ने जो बात कही, वह सुनने लायक है। उन्होंने कहा कि राजनीति में भी ऐसा नहीं होता। यह 'धर्मनीति' है, यह महाव्रतधारियों की सभा है। जो प्रस्ताव जिस रूप में पारित हुआ, उसे उसी रूप में लिखा जाना चाहिए। वह क्या था कि दो मत विरोध में थे। दो तटस्थ थे। ऐसे चार मत विरोध में थे। चार विरोध में प्रस्ताव पारित हुआ और लिखने वालों ने लिख दिया कि सर्वानुमति से प्रस्ताव पारित हुआ।

इस प्रकार मुनि श्री नानालाल जी म.सा. का फरमाना रहा कि यह महाव्रतधारियों की सभा है, इसमें ऐसा कैसे लिखा गया? यदि दो तटस्थ हैं, दो विरोध में हैं यानी चार विरोध में हैं तो इस प्रस्ताव को सर्वानुमति से नहीं लिखा जाना चाहिए। बहुमत से पारित लिखा जा सकता है। उन्होंने बहुत वजन से यह बात कही और कहा कि दिग्गज मुनियों को इस पर विचार करना चाहिए और उसमें संशोधन भी हुआ। उसमें सर्वानुमति शब्द हटाकर बहुमत से पारित लिखा गया क्योंकि दो मत विरोध में, दो मत तटस्थ थे। बात यह है कि इतने बड़े-बड़े मुनियों के बीच में एक 13-14 साल

के दीक्षित मुनि ने बात रखी। जहां 40-50 साल के दीक्षित मुनिराज हों, जो किसी समय आचार्य पद पर और कोई उपाध्याय पद पर रहे हुए हों, उन सबके सामने ऐसे प्रसंग पर कौन बोले? वहां भी मुनियों ने बोला कि चुप रह जाओ। उन्होंने (गुरुदेव ने) कहा कि नहीं, सत्य के समय यदि हम चुप रह गए तो फिर बोलना कब होगा? फिर हमारे बोलने का मतलब क्या है? पूज्य मुनि श्री नानालाल जी म.सा. बोले। इस बोलने के पीछे सत्य का बल था, जिसने उनको बोलाया। वह संकल्प का बल था कि सत्य पक्षधारी मुनिराजों के रहते हुए ऐसी कोई भी कार्यवाही नहीं होनी चाहिए। यह हमें चुनौती देने वाली बात है, चैलेंज करने वाली बात है कि हम सत्य के प्रति कितने समर्पित हैं? हम अपनी बात के लिए अड़ जाएंगे कि मेरी बात रहनी चाहिए। अरे! मेरी और तुम्हारी से मतलब क्या है? जो सत्य है, वह हमारा है। सत्य से हमारा सरोकार है और यह अवस्था हमारी रहनी चाहिए। सत्य से समझौते की कोई बात नहीं होनी चाहिए।

एक 'सत्य' स्वीकार हो जाए तो असुरक्षा का भय स्वयं दूर हो जाएगा। असुरक्षा का भय होगा ही क्यों? व्यक्ति अपने आप में असुरक्षा का भय खा रहा है कि हमारा क्या होगा? क्या होगा! और किसका क्या होना है? दूसरे शब्दों में स्पष्ट सुनना चाहें तो कोई किसी का रक्षक नहीं है। कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता। क्या मृत्यु से कोई किसी को बचा सकता है? चाहे तुम हो चाहे मैं, चाहे माता हो चाहे पिता, बोलो कौन किसको मृत्यु के मुंह से बचा पाएगा? कोई भी यह दम भरे, कोई भी यह बात कहे कि मैं रक्षा करने में समर्थ हूं, यह बात केवल व्यावहारिक रूप तक ही सही है। कुछ व्यावहारिकताओं को निभाने की बात तक ठीक है, किंतु निश्चय में और यथार्थ में कोई किसी का रक्षक नहीं है। यदि आज कोई बीमारी आ जाए तो कौन किसकी रक्षा कर सकता है? यदि आज आयु पूर्ण हो जाए, मृत्यु आ जाए तो कौन किसकी रक्षा करने में समर्थ है? तत्त्व दृष्टि से यदि विचार करो तो कोई भी किसी की रक्षा करने में समर्थ नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि लोग कुछ भी कह सकते हैं। किंतु क्या लोगों की चर्चा से सत्य को ठुकरा देना चाहिए? लोग तो चढ़े हुए को भी हंसते हैं और पैदल को भी हंसते हैं। जितने मुंह होते हैं, उतनी बातें होती हैं।

कई बार लोग कहते हैं कि गुरुदेव! वॉट्सएप पर यह समाचार आ गया, वॉट्सएप पर वह समाचार आ गया। मैंने कहा कि तुमको इन समाचारों पर

भरोसा है क्या? नहीं म.सा., कोई भरोसा नहीं है। कोई कुछ भी चढ़ा देता है। जब कोई कुछ भी चढ़ा देता है और तुम स्वयं ही भरोसा नहीं करते तो फिर ऐसी बात आ गई, वैसी बातें आ गईं, उससे क्या मतलब? कोई बिना सोचे-समझे या सोच-समझकर कुछ भी किया होगा किंतु जिसका कोई तुक नहीं है, उस पर विचार करना व्यर्थ है। पिछले वर्षों में चातुर्मास स्वीकृति के समय कहा गया कि जलगांव चातुर्मास खुल गया और कहां खुला? खुला सूरत किंतु लोग बोल रहे थे कि जलगांव खुल गया। कई बार ऐसी चर्चाएं हो जाती हैं। जब इन चर्चाओं में कोई भी तुक नहीं है, इन चर्चाओं में कोई सार नहीं है, फिर हम क्यों उस पर गौर करें? बहुत-से लोग गौर करते भी नहीं हैं। उनके मन में कोई न कोई डाउट रहता है किंतु बस आगे से आगे बात को फैलाना होता है और फैला देते हैं।

एक बार एक महासती जी ने एक वक्तव्य दिया था साबुदाने के लिए। देखो तो आए दिन पत्रिकाओं में, अखबारों में उन्हीं पंक्तियों को थोड़ा तोड़-मरोड़कर लोग अपने-अपने नाम से दे रहे हैं कि साबुदाना ऐसा है, साबुदाना वैसा है। मानो कि सबको बड़ा ज्ञान हो गया। बड़े ब्रह्मज्ञानी हो गए सब के सब। लेकिन कुछ ही महीनों के बाद महासती जी ने वापस स्पष्टीकरण दिया कि मैंने जो देखा था वह साबुदाने का वेस्टेज था। फेंका जाने वाला पदार्थ था। उसके संदर्भ में बात कही थी। उसके बाद में सारे मेढकों की टर्र-टर्र शांत हो गई। सब गायब हो गए। पानी गिरता है, बरसात होती है तो एक बार मेढकों की टर्र-टर्र चालू हो जाती है और उसके बाद टर्र-टर्राहट खत्म।

मेरा इंदौर चातुर्मास (2006) था। उस समय जयपुर में एक संथारा हुआ। उसको लेकर कोर्ट में अपील हो गई। उसकी चर्चाएं होने लगीं। अखबारों में देखो तो इतने ज्ञानी, महाज्ञानी, महात्मा हो गए। उनको इतना ज्ञान पैदा हो गया। वे अपना-अपना वक्तव्य दे रहे हैं। कोई कुछ दे रहा है तो कोई कुछ दे रहा है। बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जिनको नवकार मंत्र का भी शुद्ध उच्चारण आता नहीं होगा, वे लोग लंबी-लंबी चर्चाएं कर रहे हैं। लंबा-लंबा वक्तव्य दे रहे हैं। उनको यूं कह दो लिखने के लिए तो शायद दो लाइन नहीं लिख पाएंगे। किसी को पकड़ लिया कि लिख दो-चार लाइनें मेरे नाम से। कई बार ऐसे लोगों को भी देखा है कि यदि उन्हें कोई पत्रिका निकालनी है तो कहते हैं, भाई! आपके नाम से लिख दूं क्या। लेख लिख दिया और नीचे उनके हस्ताक्षर करवा दिये। लिखा किसी और ने और नाम किसी और का है।

आप समझ सकते हैं कि यथार्थ क्या है? वैसे ही चर्चा करने वाले कुछ भी करें। क्या उन चर्चाओं के कारण हम अपने महत्त्वपूर्ण लाभ को छोड़ दें। उस महत्त्वपूर्ण लाभ से वंचित रह जायें? हम वंचित क्यों रहें। दुनिया कुछ भी कहती रहेगी, दुनिया के कहने से, दुनिया की बदनामी से हमें डरने की जरूरत नहीं है। सत्य को समझने वाले को दुनिया चाहे कुछ भी कहे। कायर कहे या कुछ भी कहे। वह ऐसी बातों से डरने वाला नहीं। उनकी किसी बात में आने वाला नहीं।

उपादान निमित्त की चर्चा करें तो यदि उपादान हमारा सही होता है तो निमित्त कोई भी काम आ जाता है। यदि उपादान सही नहीं है तो निमित्त कितना भी मिल जाए, वह कारगर नहीं हो पाएगा। मिट्टी में घड़ा बनने की क्षमता है तो कुंभकार या कोई भी मिलकर घड़ा बना सकता है। किंतु रेती, बालू, जैसलमेर के धोरों की रेत से घड़ा बन जाएगा क्या? कुछ भी प्रयास कर लो, कितने कुंभकार आकर उस रेती से घड़ा बना पाएंगे? यदि उपादान उसमें नहीं है तो किसी का भी कोई-भी निमित्त काम आने वाला नहीं है। वैसे ही यदि हमारे कर्मों का क्षयोपशम है और कोई निमित्त मिले तो काम हो जाएगा। यदि हमारा तदनुरूप क्षयोपशम नहीं है तो कितने भी निमित्त मिल जाएं, बहुत सारे निमित्त मिलकर भी हमारे उपादान को तैयार करने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। यदि ऐसा होता तो गौतम स्वामी को भगवान महावीर निमित्त बनकर अपने से पहले मुक्ति भेज सकते थे, किंतु ऐसा होता नहीं है।

इसलिए असत् से प्रभावित इस मानस को ठीक करो। बुद्धि में जो विपर्यास हैं, उस विपर्यास को दूर करो। जिन विषय और भोगों को महत्त्व दिया जा रहा है उसे समझने की तैयारी करो। सही बात समझने पर स्वतः ज्ञात हो पाएगा कि हमें क्या करना चाहिए? साथ ही जो लक्ष्य बनाया जाये, उसके प्रति अपना संकल्प 'सुदृढ़' होना चाहिए और उसके साथ 'सत्य का समन्वय' होना चाहिए। संकल्प में सत्य मिलेगा तो दृढ़ता आएगी और अपने आप कई बातें, कई विचार प्रकट होने लग जाएंगे। सत्य से अपने आप ही सारी बातें प्रकट होने लग जाती हैं। हमारी संकल्प शक्ति सुदृढ़ हो और संकल्प शक्ति के अनुसार हमारी पुरुषार्थ की शक्ति क्रियान्वित हो जाए। यदि ये दो शक्तियां मिलकर काम करने लगेंगी तो व्यक्ति निर्भीक हो जाएगा। फिर वह जो कार्य करना चाहेगा उसमें सफलता प्राप्त करने में सफल बन सकता है।

इसलिए हम इन दोनों शक्तियों को अपने भीतर प्रकट करें। इनको महत्त्व दें और उनके अनुसार आगे बढ़ें तो धन्य बनेंगे। श्री गुलाब मुनि जी म.सा. के संथारे का आज कौन-सा दिन है? आज 18वां दिन है। वे अपनी शांत मुद्रा में विराजे रहते हैं। कभी बैठ जाते हैं, कभी सो जाते हैं। कमजोरी होने से प्रायः करके सोने का रहता है। कमजोरी स्वाभाविक है, फिर भी मनोबल मजबूत है। हम उस मनोबल की कदर करते हैं। शरीर तो आज है और शरीर कभी-भी जाएगा ही किंतु आत्मबल मजबूत रहना चाहिए। संकल्प और पुरुषार्थ हमारा भी ऐसा ही सुदृढ़ बने और हम अपने लक्ष्य की दिशा में गतिशील बनें। इतना ही कहते हुए विराम।

28 सितम्बर, 2019

8

कागज काला स्याही सफेद

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे...

इस मनुष्य जीवन को बड़ा महत्त्वपूर्ण माना गया है। महत्त्वपूर्ण इस मायने में नहीं कि उसको बुद्धि प्राप्त है। उसको पांचों इन्द्रियां प्राप्त हैं। उसको वैभव प्राप्त है। सोचने-समझने की शक्ति प्राप्त है। ये सारे अवयव प्राप्त हैं किंतु उनसे भी एक बड़ी दुर्लभ चीज प्राप्त हुई है मनुष्य को या प्राप्त होने की संभावना है। वह है, 'संसार से मुक्त होने की शक्ति। सिद्धि अवस्था को प्राप्त करने की क्षमता।' दुनिया में अन्य कोई ऐसी योनि नहीं है जिसमें जन्म लेने वाला मुक्ति को प्राप्त कर ले। यह संभावना एक मात्र मनुष्य में रही हुई है और मनुष्य ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न है कि प्राप्त करने का तरीका क्या है? चीज मुझे दूर से दिख रही है किंतु वह प्राप्त कैसे हो? उसको पाएं कैसे? यदि कांच लगा हुआ है बीच में, तो हमको चीज दिखती जरूर रहेगी किंतु हाथ डालकर उसको प्राप्त नहीं कर पाएंगे। बहुत बार ऐसा होता भी है कि हमें चीज नजर आ रही है, हम प्राप्त करना चाहते हैं किंतु प्राप्त होती नहीं है। प्राप्त नहीं होने पर मन विचलित हो जाता है। मन दुःखी हो जाता है। मुझे उस चीज की आवश्यकता थी, मुझे उसकी जरूरत थी, पर मिल नहीं पाई। हम सोचें कि उसको पाने का तरीका क्या है? पाने का तरीका यदि हमने जान लिया, पाने का तरीका यदि हमने अनुभव में ले लिया तो किसी भी चीज को पाना कोई दुरूह नहीं है। उसको पाया जा सकता है किंतु पाने का तरीका, उसको हासिल करने का तरीका हमारे ध्यान में होना चाहिए।

एक छोटा ग्राम था। उस गांव में एक गृह संन्यासी रह रहा है। गृह संन्यासी का मतलब कि गृहस्थ में रह रहा है। उसके पत्नी है, पुत्र है, छोटी-सी कुटिया

है, अपना घर है। फिर बात होगी कि संन्यासी कैसे? जब घर-परिवार के बीच में रह रहा है तो संन्यासी कैसे? प्रकाश चंद जी गांधी, संन्यासी किसको कहते हैं? आप हाथ हिला रहे हो, ऐसे करने से काम कैसे चलेगा? संन्यासी किसको कहते हैं? संन्यासी किसको कहा गया है? कौन होता है संन्यासी? पुखराज जी, बताओ कौन होता है संन्यासी? (प्रत्युत्तर– परिवार से मोह छोड़ दिया) आप बोल रहे हो कि परिवार से मोह छोड़ दिया। घर छोड़ा या नहीं छोड़ा, परिवार से मोह छोड़ दिया। आप बता रहे हैं कि घर छोड़ने से, परिवार छोड़ने से संन्यासी होगा। न्यासी कहते हैं ट्रस्टी को और न्यास कहते हैं ट्रस्ट को। इंग्लिश में न्यास को ट्रस्ट कहा जाता है। हिंदी में या संस्कृत में कहते हैं न्यास और न्यासी वह होता है, जो ट्रस्टी होता है। जो ट्रस्टी की तरह जीता है, वह होता है संन्यासी। इसमें 'सम्' उपसर्ग है कि जो किसी भी प्रकार की लाग-लपेट नहीं रखता है। यदि घर में भी रह रहा है तो वहां भी संन्यासी का जीवन जीया जा सकता है।

वैदिक ग्रंथों में आपको मिलेगा कि राज ऋषि कहे जाने वाले राजा जनक घर में रहते हुए भी निर्मोही अवस्था में जी रहे थे। हमारे यहां पर कहते हैं कि 'भरत जी तो घर माही वैरागी'। ऐसा कहा जाता है कि भरत चक्रवर्ती छः खंड के राज्य का संचालन करते हुए भी भीतर वैराग्य भावों से जी रहे थे। भरत अयोध्या में रह रहे थे। उन्होंने घर तो नहीं त्यागा पर एक संन्यासी का जीवन जी रहे थे। उन्होंने संन्यासी का जीवन जीया। मैं इसलिए कह रहा हूं कि 'सिंहासन के निकट रहकर भी सिंहासन पर बैठने का जिनका मन नहीं हुआ।' आदमी का मन लोभी होता है, लालची होता है। वह पराई वस्तु को देखकर भी हड़पने की कोशिश करता है। सामने चीज पड़ी हो और कोई रोकने वाला नहीं हो तो क्या करता है? आप यहां से निकल रहे थे और सौ ग्राम का एक सोने का बिस्किट आपकी नजर में आया। देखा इधर-उधर। कोई नहीं है देखने वाला। मन क्या कहेगा? आप बोल रहे हो कि उसे उठा लेंगे। क्यों भाई? और अगर सौ ग्राम का पत्थर पड़ा हुआ है तो क्या करेंगे? सोने की शिला सौ ग्राम की उठा लेंगे किंतु सौ ग्राम का पत्थर पड़ा है तो...। देखते ही देखते कई लोग ठोकर खा गए, आप उसको उठाने की हिम्मत नहीं करेंगे। उसे देखकर आप चले जाएंगे और 100 ग्राम की सोने की शिला उठाने की रुचि जल्दी हो जाती है। चीज हमारी नहीं है, फिर भी मन लुभा गया या नहीं लुभा गया?

भरत सिंहासन के पास बैठे हैं। एक दिन-दो दिन नहीं, तीन दिन, चार दिन भी नहीं। 14 वर्ष तक बैठे रहे किंतु एक दिन भी ऐसा विचार नहीं आया कि इस सिंहासन का मालिक बन जाऊं। ये भाव 'संन्यासी भाव' हैं। सिंहासन का मोह नहीं जगना सामान्य बात है या टेढ़ी बात है? बहुत ही टेढ़ी खीर है। जिसमें रह रहे हैं, उसी से दूर रहना। सिंहासन के इर्द-गिर्द रह रहे हैं, फिर भी उससे दूर रहना। दिल से उससे हजारों कोसों की दूरी बनाए रखना कोई सामान्य बात नहीं है।

मैं जिस संन्यासी की बात कह रहा हूं, वह संन्यासी मस्त जीव था। न किसी का लेना, न किसी को देना। अपने हाल में ही मस्त रहना। उसके पास एक घोड़ा था। बड़ा ही जातिवान् घोड़ा था। बड़ा ही लाक्षणिक घोड़ा था। एक बार सम्राट उधर से निकले तो उस संन्यासी के द्वार पर घोड़े को देखा। देखकर राजा के मुंह में पानी आ गया। राजा ने संन्यासी से कहा, संन्यासी जी, आपको घोड़े से क्या लेना-देना है? ऐसा घोड़ा तो मेरी घुड़शाल में भी नहीं है। ये आप मुझे दे दीजिए। संन्यासी ने कहा कि राजन्! मुझे इससे कोई लगाव नहीं है पर यह घोड़ा मेरे पास प्रसन्न है और मैं इसके साथ प्रसन्न हूं। जब हम दोनों आपस में प्रसन्न हैं तो फिर इस प्रसन्नता को भंग क्यों करना। अर्थात् उसने राजा को घोड़ा नहीं दिया। राजा अपना सा मुंह लेकर चला गया। राजा के मन में विचार तो था कि मुझे मिल जाए तो धन से तोल दूं किंतु नहीं मिला। राजा वैसा भी नहीं था कि मुझे कैसे मना कर दिया? मुझे नहीं मिला तो ईंट से ईंट बजा दूंगा। ऐसा भी नहीं कि तुम्हारे घर को उजाड़ दूंगा, अस्त-व्यस्त कर दूंगा और घोड़ा उठाकर ले जाऊंगा।

कई राजा ऐसे होते हैं कि मन की मुराद पूरी करना उनका काम होता है। मेरे मन में जो बात आ जाए उसे पूरा होना चाहिए। कुछ भी हो। न्याय क्या है, अन्याय क्या है, नीति क्या है, अनीति क्या है? उससे कोई लेना-देना नहीं है। जो भी अच्छी चीज है, वह राजा के घर में होनी चाहिए। राजा के महलों में होनी चाहिए। राजा के अधीन होनी चाहिए। ऐसी भी धारणा लेकर चलने वाले राजा हुआ करते थे किंतु कुछ राजा शांतिप्रिय होते थे। कुछ राजा जनता की शांति और समृद्धि के अभिलाषी हुआ करते थे। वे किसी के साथ जबरदस्ती नहीं करते थे।

राजा चला गया। गांव के लोगों को यह बात मालूम पड़ी तो 5-7-10 गांव वाले व्यक्ति मिलकर आ गए संन्यासी के घर पर और कहा कि

संन्यासी जी, तुम्हारे भाग में ही कांकरे पड़े हुए हैं। अभी सम्राट तुम्हारे से घोड़ा मांगकर गये। तुम्हारे पास कितना सुंदर अवसर था। राजा से घोड़े के बदले में तुम्हें मुंह मांगा धन मिल सकता था। देखते ही देखते तुम्हारी यह झोपड़ी, आर.सी.सी. का भवन बन जाती। बंगला-महल बन जाता। पर क्या करें? समझ भी अपनी होती है। संन्यासी ने कहा, भाई मुझे किसी से कोई लेना-देना नहीं है। मैं अपने हाल में प्रसन्न हूं और यह घोड़ा भी मेरे पास प्रसन्न है।

हमारे एक म.सा. कई बार फरमाया करते थे, 'गांठ की सूझे नहीं और दूसरे की माने नहीं।' अपनी अक्ल में कोई बात आती नहीं है और अपने आप कोई बात सूझती नहीं है। दूसरा कहता है तो उस बात को मानता नहीं है। 'गांठ की सूझे नहीं और दूसरे की माने नहीं।' गांव वाले संन्यासी से बोलते हैं, यही बात तुम्हारी है। हमारी बात मानते नहीं हो। नहीं तो यह मौका था। इस मौके को चूक गए। संन्यासी ने कहा, ठीक है हम दोनों खुश हैं, हम दोनों प्रसन्न हैं। अभी क्या निर्णय करें? संयोग ऐसा बना कि उसी रात घोड़ा रस्सी तोड़कर भाग गया। जंगल में घोड़ा लापता हो गया। गांव वालों को मालूम पड़ा तो सुबह आ गए वापस। कहने लगे, संन्यासी जी बहुत खराब हुआ घोड़ा भागकर चला गया। वे सांत्वना देने की कोशिश करने लगे। संन्यासी कहने लगा कि कल मेरे पास घोड़ा था, मैं खुश था, घोड़ा खुश था। आज उसका मन हुआ तो वह चला गया। वह चला गया तो मुझे क्यों दुःखी होना? दुःखी होना चाहिए या सुखी रहना चाहिए? आप लोग बोल रहे हो कि सुखी रहना चाहिए। कहना बहुत आसान है कि सुखी होना चाहिए। संन्यासी ने कहा, भाई! उसका मन हुआ तो चला गया, इसमें मुझे दुःखी होने की क्या बात है? क्या अवसर है? क्या चांस है? मैं दुःखी क्यों होऊं? उसकी मरजी थी चला गया। यहां पर रह रहा था, उसका स्थान था, रह रहा था किंतु अब चला गया तो चला गया।

गांव वाले समझ नहीं पाए किंतु वह संन्यासी अपने हाल में मस्त था। घोड़ा था तो कोई विशेष बात नहीं थी और घोड़े के चले जाने के बाद उसमें कोई कमी नहीं आ गई। एक बार हम इस 'दर्पण में' अपने आपको देखें। इस दर्पण में अपने चेहरे को देखें कि मेरे पास जो मुंहपत्ती है, पूंजणी है वह आगे-पीछे हो जाए, एक किताब आगे-पीछे हो जाए तो क्या मन शांत रहेगा? सोने का हार आगे-पीछे हो जाए फिर तो कहना ही क्या है? सोने का

हार आगे-पीछे हो जाए तो पूरा घर खंगाल लेंगे कि कहां गया, कहां गया? चला गया तो क्या हानि हो गई हमारी?

यदि सोने का हार, हीरों का हार चला गया तो मेरा क्या चला गया, यह बताओ। जन्मे तब क्या गले में सोने का हार, हीरों का हार था? मरेंगे तो सोने का हार, हीरों का हार साथ में रहेगा क्या? मरने पर नहीं रहेगा, पहले चला गया तो क्या फर्क पड़ गया? किंतु रोना आ जाता है। आ जाता है या नहीं आ जाता है? मन दुःखी हो जाता है या नहीं हो जाता है? आप लोग बोल रहे हो कि मन दुःखी हो जाएगा तो क्यों मन दुःखी करना? हमें क्यों दुःखी होना? यही कला तो समझ में नहीं आती है। बात मैंने कहां से चालू की भूलना मत कि मोक्ष जाने की तैयारी रखते हैं, मोक्ष जाने की चाह करते हैं। मनुष्य में वह सामर्थ्य होता है, यह संभावना है कि 'नर नारायण' बन जाएगा। मानव मुक्ति को पाता है, यह संभावना उसमें रही हुई है। वह चीज हमें दिख रही है किंतु प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। प्राप्त नहीं कर पाने का मतलब हम बीच में बिखर गए। सोने का हार, हीरों का हार किसी ने गले में पहना दिया तो पहना दिया और किसी ने खोल लिया तो खोल लिया।

राजगृही नगरी में पुखराज जी[1] जैसे सेठ बैठे हुए होंगे सामायिक में। पुखराज जी कंठा रखते हैं या नहीं? उन सेठ जी ने कंठा खोलकर रख दिया। पुराने लोग कंठा खोलकर रखते थे। एक घटना घटने से क्या लोगों ने कंठा खोलना ही बंद कर दिया। वे सेठ जी नगर सेठ थे। वे समता में रह गए, सामायिक में रह गए। यहां तो सामायिक ही खत्म हो जाएगी। क्यों सुराणा जी। सामायिक रहेगी या चली जाएगी? रह जाएगी या चली जाएगी? यदि सोने का कंठा है, समझ लो 100 ग्राम का है। 100 ग्राम का कंठा सेठ साहब का सामायिक में से उठाकर ले जा रहे हैं, कोई फर्क नहीं पड़ा। आप लोग अभी अपने-अपने गले में हाथ डाल रहे हो। अरे! भाई अभी ऊंचे-नीचे क्यों हो रहे हो। अभी तो बात चल रही है, कोई लेकर गया थोड़े ही है। वहां, वह कंठा ले गया। सेठ जी का मन सामायिक में रहा या नहीं रहा? सामायिक के बाद चिंता हुई क्या कि मेरा कंठा वह ले गया। सेठ साहब चाहते तो आदमी भेजकर कंठा वापस ला सकते थे या पुलिस को भेजकर अरेस्ट करवा देते कि अरेस्ट करो इसको। लेकिन उन्होंने क्या किया? उन्होंने क्या किया?

1. पुखराज जी बोथरा (अहमदाबाद–अलाय)

सीमंधर स्वामी मुक्ति जाने की डिग्री दीजिए...

हम तो डिग्री देने के लिए तैयार बैठे हैं। सीमंधर स्वामी डिग्री देने को तैयार हैं पर डिग्री के लिए हमारे पास योग्यता भी तो होनी चाहिए। हमारे पास डिग्री लेने के लिए पात्रता तो होनी चाहिए। यदि हमारे में पात्रता नहीं होगी तो डिग्री कैसे मिलेगी? मिल भी गई तो हम क्या हासिल कर लेंगे? डॉक्टर बनने की योग्यता नहीं है और उसको डॉक्टरी की डिग्री मिल गई। ऑपरेशन करते-करते कैंची या ब्लेड भीतर छोड़ दी और ऊपर से सिलाई कर देगा। ऐसी कई घटनाएं घट गईं क्योंकि अब आरक्षण हो गया है। परीक्षा में नम्बर कम-ज्यादा आने से कोई लेना-देना नहीं है। पहले उसको डॉक्टर बनाया जाएगा क्योंकि आरक्षित है। कम नंबर आए, कम योग्यता है तो भी उसको डॉक्टरी में भरती कर दिया जाएगा। यह नहीं सोचा जाता है कि ऐसा डॉक्टर आदमी की जान लेगा या जान बचाएगा? ये सारी सोच पता नहीं हम लोगों की कहां चली गई? हम किस व्यवहार में चल रहे हैं? मुझे तो वोट चाहिए। आदमी मरे तो मरे, मुझे कोई लेना-देना नहीं है। मेरा वोट बैंक सुरक्षित हो रहा है। हकीकत में क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए? सही मायने में विचार होना चाहिए। जहां व्यक्ति के जीवन-मरण का खेल है, क्या वह हर किसी डॉक्टर के सुपुर्द कर दिया जाना चाहिए?

हमारे राजनेता अपने इलाज के लिए अमेरिका, न्यूयॉर्क, इंग्लैंड और पता नहीं कहां-कहां जाते हैं। क्यों, उनकी जिंदगी बड़ी महत्त्वपूर्ण है और दूसरे किसी भारतीय की जिन्दगी का कोई मूल्य नहीं है? वे भारत में इलाज क्यों नहीं कराते हैं? क्या भारत में डॉक्टर्स नहीं हैं? भारत के डॉक्टर्स पर उन्हें विश्वास नहीं है तो दूसरे आदमी क्यों भारत के डॉक्टर्स से इलाज करवाएंगे? यदि उन्हें सरकार से पैसा मिलता है तो दूसरी जनता को सरकार से पैसा मिलना चाहिए या नहीं मिलना चाहिए? राजनेता सरकार से पैसा खाते हैं, सरकार से पैसा लेते हैं, सरकार उन्हें पैसा देती है और जिनसे सरकार पैसा वसूलती है, उनके लिए सरकार के पास कोई गुंजाइश नहीं है। ये दुविधाएं, यह द्वंद्व बनता जा रहा है। बढ़ता ही जा रहा है।

होना तो यह चाहिए कि जैसे एक अफसर की, एक मंत्री की, एक नेता की जिंदगी है, वैसे ही दूसरे की जिंदगी है। यह जनतंत्र है, प्रजातंत्र है। आज जो संकट में है या जिसके आज शरीर में बीमारी आई, कल वह भी राजनेता बन सकता है। बन सकता है या नहीं बन सकता है? यदि ऐसी दुविधाएं होंगी

तो हर आदमी राजनेता बनने के लिए दौड़ेगा। वह दूसरा रास्ता चुनेगा क्यों? इस विषय में सरकार क्या सोचती है, क्या नहीं सोचती है किंतु सरकार का विचार बहुत स्पष्ट होना चाहिए। हर व्यक्ति की जान किसी भी सौदे में नहीं जानी चाहिए। किसी की भी जान सौदे में नहीं चली जानी चाहिए कि 'अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों।' हमने किसी के हवाले कर दिया, ऐसी स्थिति नहीं बननी चाहिए। जो चिकित्सा में प्रवीण हो, प्रखर हो, उसी के हाथों में व्यक्ति को सौंपा जाना चाहिए ताकि मरने पर भी यह रहेगा कि मैं ऐसे-वैसे नीम-हकीम के हाथों नहीं मरा। मरा तो एक अच्छे डॉक्टर के हाथों से मरा। रामजेठमलानी वकील अब रहे नहीं फिर भी कोई हारा तो उसे लगता अच्छे वकील के हाथों से हारा। आदमी को मन में संतुष्टि रहती है कि मैं हारा तो अच्छे वकील के हाथों से हारा या अच्छे डॉक्टर के हाथों से मरा।

आपने सुनी होगी भगवान महावीर की कहानी। भगवान महावीर त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में थे तब उन्होंने एक शेर को चीरकर दो फाड़ कर दिए थे। शेर के दो फाड़ कर दिए। उस समय शेर बहुत तड़फ रहा था। उस समय सारथी के रूप में गौतम स्वामी के जीव ने उस सिंह को सांत्वना दी थी कि सिंहराज, तुम यह विचार मत करो कि एक मामूली आदमी ने तुम्हें कैसे चीर दिया? तुम्हें चीरने वाला कोई मामूली आदमी नहीं है। ये आम इंसान नहीं है। ये वासुदेव हैं। ये सामान्य आदमी नहीं हैं। तुम जिनके हाथों से मरे हो वे एक वासुदेव हैं। इससे सिंह के मन में विचार हुआ कि वह किसी सामान्य आदमी से नहीं मर रहा है। वह वासुदेव के हाथों से मर रहा है। यह भी आदमी को संतोष होता है। मरा भी तो बड़े डॉक्टर के हाथों से मरा। आदमी हारा भी तो बड़े वकील के दिमाग से हारा। वैसे ही हम जीतें, तो भी होना चाहिए कि हम जीते तो किससे जीते? किसी न किसी बड़े आदमी की बुद्धि से जीते? जीत में बुद्धि की महानता रही है किंतु यहां पर गांव के लोग संन्यासी से कहने लगे, संन्यासी जी, तुमने मौका खो दिया। घोड़ा तुम्हारा भागकर चला गया। संन्यासी कहने लगा कि चला गया तो चला गया। उनके ऊपर कोई असर नहीं हुआ।

संयोग ऐसा हुआ कि तीन दिन बाद वह घोड़ा वापस लौटकर आ गया। साथ में 10-12 घोड़ों को और लेकर आया। उसी क्वालिटी के 10-12 घोड़े साथ में लेकर आ गया। गांव में हल्ला मच गया कि घोड़ा वापस आ गया और साथ में 10-12 घोड़ों को लेकर आया है। उसी क्वालिटी के 10-12 घोड़े और आ गए। गांव वाले कहने लगे कि संन्यासी जी, आपका

घोड़ा तो बहुत सधा हुआ है, साथ में 10-12 घोड़े लेकर आ गया। लेकिन संन्यासी के मन में कोई हलचल नहीं। आ गए तो आ गए। संन्यासी ने रस्सी की व्यवस्था कर दी और उनको भी बांध दिया। 10-12 अच्छी क्वालिटी के घोड़े, पानीदार घोड़े आ गए तो भी कोई हर्ष नहीं हुआ। आ गए तो आ गए। घोड़ा चला गया तो चला गया और 10-12 घोड़ों को लेकर आ गया तो आ गया। गांव वाले वापस गए संन्यासी के घर पर। लोग तो आए थे कि संन्यासी जी को बधाई देंगे, उनका बधावा करेंगे, पर संन्यासी तो अपने हाल में चलता है। अपने ही ढंग में चलता है। उन जंगली घोड़ों से संन्यासी का बेटा खेलने लगा। वह उनको साधने लगा। उनको ठीक करने लगा।

संयोग से एक दिन घोड़े की पीठ से वह नीचे गिरा और उसकी टांग टूट गई। फिर गांव के लोग आये कहने लगे कि संन्यासी जी बहुत बुरा हो गया। ये घोड़े ऐसे निकम्मे हैं जिनको साधने में आपके पुत्र की टांग चली गई। उसकी टांग टूट गई। संन्यासी ने कहा कि जल्दी से निर्णय मत करो। टूट गई तो टूट गई। टांग टूट गई तो टूट गई। लोग कहते हैं कि क्या बात करें आकर? बात करने का कुछ है ही नहीं। अंगुली टेकने की जगह दे तो पहुंचा भी पकड़ लें। अंगूठा या अंगुली पकड़ने दे तो हाथ भी पकड़ने में आवे, किंतु यहां तो अंगूठा टिकाने का भी मौका नहीं दिया जा रहा है।

संयोग ऐसा हुआ कि कुछ ही दिनों में एक पड़ोसी राजा ने इस राजा के राज्य पर युद्ध झोंक दिया। युद्ध का ऐलान कर दिया। इस कारण राष्ट्र के सम्राट ने कहा कि जितने भी युवा हैं, वे सेना में भर्ती हों। उनको अनिवार्य रूप से सेना में भर्ती होना है। गांव के एक-एक लड़के को पकड़ कर सेना में भर्ती किया जाने लगा। गांव वाले फिर संन्यासी के पास आए और कहने लगे कि संन्यासी जी धन्य है आपको। आपके लड़के की टांग टूट गई तो वह कम से कम आपके पास में मौजूद है। हमारे लड़कों को तो सम्राट जबरदस्ती ले गया और सेना में भर्ती कर दिया।

हम देखें और विचार करें कि संन्यासी को किसी से कोई लेना-देना नहीं है। घोड़े आए तो क्या और घोड़ा चला गया तो क्या। राजा को घोड़ा दिया तो क्या, नहीं दिया तो क्या। किंतु हम दुनिया की पंचायती करने के लिए तैयार रहते हैं। हम हर किसी को सलाह देने के लिए तैयार रहते हैं। सलाह देने वाले संन्यासी को भी दे रहे हैं कि तुम घोड़ा राजा को दे देते तो धन मिल जाता। गांव वाले कहते हैं कि देखो तुम्हारा घोड़ा चला गया। हमदर्दी से होगा क्या?

आपकी हमदर्दी व्यक्त करने से घोड़ा लौटकर आ जाएगा क्या? उसके रिक्त स्थान की पूर्ति हो जाएगी क्या? नहीं होगी, किंतु हम सोचते हैं कि कुछ व्यवहार रखना चाहिए। व्यवहार रखने के लिए हम हमदर्दी जताने लग जाते हैं।

एक व्यक्ति मरा। उसके कई मित्र थे। वे आकर सांत्वना देने लगे उसकी पत्नी को कि तुम कोई विचार मत करना। हमको उसके स्थान पर ही समझ लेना। हम सब तुम्हारे साथ हैं। मित्र कहने लगे कि 12वें के दिन ऐसा-ऐसा करना है। उस व्यक्ति की पत्नी ने कहा कि 12वां दिन तो करना है। आप कह रहे हो ठीक है लेकिन पहले उन पर जो 10 करोड़ का कर्ज है वह आप लोग आपस में बांट लो और उसे चुका दो फिर आगे की बात करते हैं। इतना सुनते ही सबको जैसे बिच्छू काट गया। कोई इधर खिसक गया, कोई उधर से खिसक रहा है और कोई किसी तरफ खिसक रहा है। इस तरह देखते ही देखते सारे मित्र चले गए। अभी वे क्या बोल रहे थे? अभी तो सांत्वना दे रहे थे। अभी कह रहे थे कि तुम विचार मत करना, हम हैं। हम हैं तो अब दो पैसे। तुम कह रहे हो कि हम हैं। तुम हो तो अब दो पैसे। करो सब कुछ। कितने दोस्त मिलेंगे? कितने दोस्त बाद में मिलेंगे? है कोई ऐसा दोस्त यहां पर भी! नहीं है क्या? यहां धर्म सभा में भी नहीं है क्या? इतना-इतना सुनते हो फिर भी एक भी ऐसा मित्र नहीं है यहां पर? फिर सुना हुआ काम क्या आया भाई? फिर मानव जन्म पाकर क्या किया? मनुष्य बनकर क्या कर लिया फिर, बोलो? हम सांत्वना देकर भी सांत्वना देने के मूड में नहीं हैं। क्या औपचारिक सांत्वना देना चाहते हैं? कहते हैं कि कोई विचार मत करना, हम खड़े हैं तुम्हारे साथ।

अभी पहले जो वित्त मंत्री थे ना! कौन थे? (प्रत्युत्तर– चिदंबरम, अरुण जेटली) हां अरुण जेटली ही नाम था ना? आप चिदंबरम कह रहे हो। वे तो उनसे भी पहले वित्त मंत्री थे। वे तो अभी जीवित हैं। अभी तो अरुण जेटली थे ना। जिनकी मृत्यु होने पर कई राजनेता पहुंचे। मोदी जी ने विदेश से ट्वीट किया था कि हम आपके साथ खड़े हैं। मोबाइल में क्या बोलते हैं? ट्वीट ही बोलते हैं ना! ट्वीट ऐसा कुछ था। उसमें उन्होंने भेजा था कि हम आपके साथ खड़े हैं। पैसे वालों के साथ तो लोग खड़े हैं और कहने में कह देते हैं। किसी की शहादत होती है, कोई शहीद हो गया तो उनके लिए भी कहते हैं कि हम तुम्हारे साथ खड़े हैं। उधर शहीद की पत्नी कहती है कि दो बेटे हैं, उनकी पढ़ाई का खर्चा नहीं हो पा रहा है। एक बेटा बड़ा हो गया

है उसकी नौकरी नहीं लग रही है तब कितने लोग तैयार होते हैं? हम प्रयत्न करेंगे यह आश्वासन तो दे देते हैं किंतु होता क्या है? कौन किसके साथ खड़ा है? अखबार में हमारा नाम आना चाहिए। पत्रिका में हमारा नाम आना चाहिए कि हम तुम्हारे साथ खड़े हैं। न कोई साथ में खड़ा है, न कोई किसी के साथ खड़ा है। कहीं लूटना है तो लूटने के लिए हम तैयार हो जाते हैं किंतु कहीं चुकाना होता है तो वहां पर क्या होता है? मुट्ठी भरने के लिए तो हम तैयार हैं। एक नहीं दो मुट्ठी भर लेंगे और यदि पॉकेट खाली है तो पॉकेट में और भर लेंगे किंतु जहां कुछ हाथ से लुटाने की बात आ जाए, वहां पर कितने लोग लुटाने के लिए तैयार होते हैं?

वहां गांव के लोग कहते हैं कि संन्यासी जी आप जीत में रहे। आपका लड़का घोड़े से नीचे गिर गया, उसके पांव में चोट आ गई, टांग टूट गई, अपंग हो गया इस कारण से राजा उसको जबरदस्ती पकड़कर नहीं ले गए। हमारे घर से हमारी संतानों को वे ले गए। आपका लड़का लूला-लंगड़ा रहा किंतु आपके पास रहा। वह संन्यासी कहता है कि जो हुआ सो हुआ। निर्णय करने में कोई फायदा नहीं है। अभी क्या निर्णय किया जाए?

ये एक प्रसंग है। इससे हम विचार कर सकते हैं कि हम कहां जी रहे हैं और संन्यासी कहां जी रहा था? पुखराज जी[1] ने अभी कहा कि घर तो छोड़ना जरूरी है। मैंने कहा कि चलो घर नहीं छोड़ा। हम इतना रहम करते हैं। हम इतना रहम करते हैं कि घर नहीं छोड़े। अभी दो दिन से मैं बोल रहा हूं कि साधु बन गए तो ठीक, नहीं तो कम से कम घर छोड़कर धर्म स्थान में बैठ जाओ। इतना तो करो। पुखराज जी के पास बहाना जरूर है कि मैं तो तैयार बैठा हूं दीक्षा लेने के लिए। तैयार हो ना? हो ना तैयार? तैयार हो तो घर छोड़कर स्थानक में बैठ जाओ। पच्चक्खाण कर लो कि घर नहीं जाना है। दिक्कत क्या है? दीक्षा लेने के लिए एक पैर पर खड़े हैं लेकिन कुछ सरकारी अड़चनें हैं, इस कारण से दीक्षा नहीं ले पा रहे हैं। शारीरिक नहीं सरकारी अड़चन है, यह समझ लो या मान लो। घर छोड़कर स्थानक में बैठने पर तो सरकार रोक नहीं लगा रही है फिर इसमें क्यों चूकना? आप कह रहे हैं कि जल्दी ही कर लेंगे? कब करोगे? आसोज सुदी बीज को? आसोज सुदी बीज को छोड़ दोगे घर?

जो करना सो अच्छा करना, फिर दुनिया में किससे डरना...

1. पुखराज जी बोथरा (अलाय-अहमदाबाद)

एक साल में छोड़ दोगे घर? (पुखराज जी–एक साल के अंदर-अंदर) एक साल का आप कह तो रहे हो लेकिन एक साल का प्रमाण पत्र तो है। एक साल का प्रमाण पत्र लिख देना। अब कह रहे हो कि कोई भरोसा नहीं है कि कब क्या हो जाए? तो फिर देर क्यों करनी?

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होवेगी, बहुरि करेगा कब।।

चलो एक साल के भीतर-भीतर घर में नहीं रहना है (सभा–हर्ष-हर्ष) अरे! क्या हो गया? इनको पच्चक्खाण दिलाया तो आप सभी हर्ष-हर्ष बोल रहे हो और कोई आपके लिए हर्ष-हर्ष बोले तो कितना अच्छा होगा? कहते हैं लोग कि 'चढ़ जा बेटा शूली पर, भगवान तेरा भला करे', भला होता है तो आप क्यों नहीं चढ़ रहे हो। हर्ष-हर्ष करने में मजा आया किंतु हम भी उसी रास्ते पर चलेंगे तो कितना अच्छा होगा। कितना बढ़िया होगा। दुनिया को कितना हर्ष होगा। बताओ दुनिया को हर्ष होगा या नहीं होगा? दुनिया को हर्ष हो या नहीं किंतु सबसे पहले तुम्हारे भीतर हर्ष होगा। तब ऐसा लगेगा कि आज मैं हलका हो गया, हलका हो रहा हूं। हलका हो गया हूं। हलका हो जाएगा या नहीं हो जाएगा? घर की झंझट, झमेले सब निकले तो बोलो उसका दिमाग कितना हलका हो गया। दिमाग हलका हो जाएगा या नहीं हो जाएगा?

वह संन्यासी घर में रहते हुए भी घर के झंझट को दिमाग में नहीं लेता है। यदि घर में जीना है तो वैसे जीयें। कैसे जीयें? घर में रहते हुए जीना है तो कैसे जीयें? 'कोई गया तो भला, नहीं गया तो भला।' गया तो क्या? आ गया तो क्या? गया तो क्या लाभ हो गया और आ गया तो क्या लाभ हो गया? एक मगरमच्छ श्वास लेता है तो उसके एक श्वास में कितनी मछलियां अंदर चली जाती हैं? कितनी मछलियां चली जाती हैं? वापस श्वास छोड़ता है तो कितनी बाहर आ जाती हैं? कितनी मछलियां रह गईं? वह जीवन यदि जीना आ जाए फिर देखो कि शांति कहां है, सुख कहां है, समाधि कहां है? बोलने में हम बोलते हैं कि

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों में।

भगवान के चरणों में चंड प्रद्योतन राजा भी गया। कई राजा लोग आए। क्या उनको सुख मिल गया? सुख भगवान के चरणों में नहीं है। सुख हमारे भीतर है। यदि हमने ऐसा जीना सीख लिया तो कहीं से कहीं तक कोई हमारा

सुख छीन नहीं सकेगा। नहीं तो हम कितना ही भगवान के निकट जाकर बैठ जाएं और कितनी भी आरती उतार लें, सुखी होना संभव नहीं है।

नोखा मंडी, जोरावरपुरा में आचार्य पूज्य गुरुदेव विराज रहे थे। नोखा चातुर्मास पूर्ण होने के बाद की बात है। धर्मपाल जी जैन बीकानेर वाले उपस्थित होते हैं गुरुदेव के चरणों में और कुछ वार्तालाप करते हैं। गाड़ी में उनके भाई भी हैं प्रकाश चंद जी, जिन्होंने 70 बसंत पार कर लिए थे। उन्हें लेकर आये हैं। 50 बसंत साधु जीवन में व्यतीत किए, 20 वर्ष की उम्र में दीक्षित हुए थे। एक चेला भी बना किंतु वह भाग गया। चला गया। ज्यादा दिन रहा नहीं। गुरु भाई संभालने की तैयारी में नहीं। सेवा करने की तैयारी में नहीं। धर्मपाल जी के पास समाचार गए कि बड़ी दुविधा में हैं, कठिनाई में हैं तो धर्मपाल जी गए और गाड़ी में लेकर आ गये। वे दिमाग से डिस्टर्ब हो गए थे। डिप्रेशन में थे। जब उन्हें भोजन परोसा गया तो कहा कि मैं थाली में नहीं खाऊंगा, मैं तो पातरे में ही खाऊंगा। धर्मपाल जी ने कहा कि देखो भाई आपकी सेवा तो मैं कर सकता हूं किंतु आपकी सेवा के लिए मैं स्वयं साधु नहीं बन सकता। मैं साधु जीवन स्वीकार करके आपकी सेवा नहीं कर सकता हूं। धर्मपाल जी कहते हैं कि मैंने विचार किया और मुझसे लोगों ने भी कहा कि आपके संघ में वृद्ध साधुओं, वृद्ध पुरुषों की सेवा की व्यवस्था है इसलिए मैं इन्हें लेकर आया हूं। गुरुदेव! इनकी सेवा करनी ही रहेगी किंतु ये किसी की सेवा कर सकें ऐसी स्थिति नहीं है। यहां से वहां भी चलना मुश्किल है। थोड़ी दूर तक चलना भी बहुत दुरूह था। एक गत्ता भी हाथ से उठाना बहुत कठिन काम था।

गुरुदेव ने कहा कि यदि इनकी साधु जीवन पालने की भावना है तो मैं सहयोग देने में पीछे रहने की स्थिति में नहीं हूं किंतु मैं विहार करता हूं, मैं विहार करने वाला हूं, मैं एक जगह रुकने वाला नहीं हूं। बीकानेर में मेरे एक गुरु भाई इन्द्रचंद जी म.सा. विराजे हुए हैं। वे इनकी वृत्ति को देख लेंगे कुछ दिनों तक और फिर जैसी स्थिति नजर आई वैसा किया जा सकता है। 50 साल का साधु जीवन जीकर अब गृहस्थ में आए तो कैसा लगेगा आदमी को? वे बीकानेर रहे। उनकी वृत्ति को देखा गया। गुरुदेव का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं होने से, बी.पी. ज्यादा होने से संयोग से बीकानेर की तरफ पधारना हो गया। गंगाशहर-भीनासर में उनका पधारना हुआ। इस दौरान श्री इन्द्रचंद जी म.सा. के भी भीनासर आने का प्रसंग बना। साथ में उन संत को भी लाना

था दीक्षा पच्चक्खाने के लिए किंतु बड़ा मुश्किल-सा काम था। संत का कहना था कि आप आज्ञा ले लो और वहीं पर दीक्षा हो जायेगी। लेकिन श्री इन्द्रचंद जी म.सा. ने कहा कि नहीं, दीक्षा तो गुरुदेव से ही दिलाएंगे। बड़ी कठिनाई से भीनासर लेकर आने का प्रसंग बना। भीनासर में हॉल के पीछे जो बगीचा था, वहां पर दीक्षा का पाठ पच्चक्खाया गया। दीक्षा होने के बाद उनका मन सांत्वना में आ गया। जब उनकी अच्छी तरह से सेवा हुई तो जो डिप्रेशन जैसी स्थिति बनी हुई थी वह भी दूर हो गई। फिर तो उन्होंने तपस्याएं भी शुरू कर दीं। कभी उपवास, कभी एकासना, कभी 108 आयंबिल एक साथ कर लेते। कभी कुछ और कभी कुछ। इस प्रकार वे शरीर को इतना फिटनेस में ले आए कि दो किलोमीटर, तीन किलोमीटर गोचरी के लिए स्वयं घूमने लगे।

ये सब कैसे हो गया? अच्छा सहयोग मिला तो उनकी मानसिक स्थिति भी शांत हो गई और वे समाधि में आ गए क्योंकि उन्हें लगा कि यहां मेरा जीवन निर्वाह हो जाएगा। यहां पर मेरी साधु चर्या पल जाएगी। हालांकि पहले कहीं दीक्षा दी गई थी किंतु गाड़ी में लेकर आ गए और सब स्थितियां बदल गईं, इस स्थिति में नई दीक्षा दी गई। फिर भी वे अपने हाल में मस्त थे और अच्छे ज्ञानी थे। पहले 50 साल दीक्षा पाली हुई थी। उनके द्वारा उर्दू में लिखे हुए बहुत सारे कागज आज भी हैं। वे उर्दू में लिखा करते थे। विषय समझाने के लिए कई प्रकार के चित्र, कलाकारी किया करते थे। कई प्रकार के त्याग, पच्चक्खाणों से आत्मा को भावित करते हुए चले गए।

बंधुओ, एक प्रसंग यह है कि ऐसी वृद्धावस्था में कौन किसको सहयोग देने को तैयार हो? किंतु हमने धर्म को समझा है तो ऐसे प्रसंग पर ही तो हमारी परीक्षा है। किसी को संयम में सहयोग की आवश्यकता लग रही है और ऐसे समय में यदि उसमें सहयोग नहीं दिया जाये तो फिर वह सहयोग कब काम आएगा।

मुझे याद आती है ईश्वर भगवान की एक उक्ति। जब आचार्य पूज्य गुरुदेव गुजरात में विराज रहे थे। सुरेंद्र नगर के आस-पास उनका विराजना हुआ। एक संत की भावना हो गई कि मुझे गुरुदेव के पास जाना है। अब बीकानेर से गुरुदेव तक ले जावे कौन। उस समय ईश्वर चंद जी म.सा. वहीं पर विराज रहे थे। उनके समाचार आए तो वापस गुरुदेव ने लिखवाया कि ईश्वर! (प्रेम से गुरुदेव ईश्वर चंद जी म.सा. को ईश्वर ही फरमाया करते

थे।) मैं इतनी दूरी पर हूं, कैसे पहुंचोगे तुम? कैसे क्या होगा? ईश्वर चंद जी म.सा. ने लिखवाया या उनके शब्द थे कि 'घोड़ा गणगोरिया में नहीं दौड़े तो घोड़ा कांई काम रा'। आप में से कईयों ने उनके दर्शन किए होंगे। वे कहते थे कि 'घोड़ा गणगोरिया में नहीं दौड़े तो घोड़ा कांई काम रा'। बीकानेर में घोड़े बहुत दौड़ाए जाते हैं। उनके शब्दों का यह अर्थ था कि जो घोड़े गणगोरियों में नहीं दौड़े, उस घोड़े को रखने से मतलब क्या निकला? आप विचार कीजिए कि किस-किस प्रकार की साधुओं की उत्कृष्ट विचारधारा है। कैसी-कैसी उनकी भावना है। यह तब बनती है जब ममत्व का त्याग किया जाता है। मेरा कुछ भी नहीं है। 'इदं न मम'। मेरा कुछ नहीं है। मेरा कुछ भी नहीं है। जब आसक्ति का त्याग किया जाता है, ममत्व का त्याग किया जाता है, मेरी कोई आसक्ति नहीं है, मेरा किसी में कोई ममत्व नहीं है, तब वह भावना बनती है। नहीं तो कहने में हम कह सकते हैं कि अरे! मैं जाऊंगा तो घुटने में दर्द होगा। घुटने दुख जाएंगे। दस बार सोचेंगे कि आगे कैसे जाएं? ईश्वर चंद जी म.सा. की भावना थी कि कुछ भी नहीं होगा। जो भी होगा मैं तैयार हूं। ये भावनाएं जब होती हैं, तब कहीं जाकर हम मोक्ष के अधिकारी बनते हैं। डिग्री देने के लिए तो सीमंधर स्वामी तैयार हैं।

सीमंधर स्वामी, मुक्ति जाने की डिग्री दीजिए

डिग्री अवश्य मिलेगी किंतु पहले संन्यासी की तरह जीना होगा। कुछ भी आए और कुछ भी जाए कोई फर्क नहीं हो। बहुत सारा धन भर जाए, ऐसी आवक हुई, ऐसी आवक हुई कि आगे से धक्का दें तो पीछे वह खिसकता नहीं है और वापस आगे आ जाता है। इतना धन भर गया घर में तो भी कोई खुशी नहीं है और एकदम से चला गया तो भी कोई बात नहीं। मानो बाढ़ का पानी नीचे उतर गया। बाढ़ का पानी आता है तो पूछकर आता है या बिना पूछे आता है? जैसे बाढ़ का पानी आता है वैसे ही बाढ़ आ गई धन की तो उछलेंगे नहीं और वापस पानी उतर गया तो वह उतरेगा ही। बाढ़ का पानी सदा रहता है क्या? (प्रत्युत्तर– नहीं) ये दृष्टि जिस दिन आ जाएगी, उस दिन मोक्ष हमारे से दूर नहीं रहेगा। तब मोक्ष हमारे से दूर नहीं रहेगा। ये दृष्टि लानी जरूरी है। ये दृष्टि आएगी तो ऑनलाइन घर बैठे ही डिग्री मिल जाएगी। फिर सीमंधर स्वामी के पास, उनके ऑफिस में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। किसी के भी दरवाजे पर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। घर बैठे ही डिग्री आ जाएगी।

एक बार जब मोदी जी मुख्यमंत्री थे तब अमेरिका की सरकार ने उनको वीजा नहीं दिया। कह दिया कि हम वीजा नहीं देंगे और प्रधानमंत्री बने तो 'आइए आपका स्वागत है।' अब तो क्या हो गया? अब तो 'अमेरिका भा गया। लेणियो है। मोदी जी रो लेणियो कठे है? लेणियो है अमेरिका में।' लोग कहते हैं कि मोदी जी का अमेरिका में लेणिया है। हम अपने भीतर काबिलियत पैदा करेंगे तो घर बैठे ही क्या मिल जाएगी?

सीमंधर स्वामी, मुक्ति जाने की डिग्री दीजिए

वह डिग्री हमें प्राप्त हो जाएगी। आज कौन-सा दिन है और कल कौन-सा दिन है? आसोज सुदी बीज है। आसोज सुदी बीज है या आसोज बदी बीज है? कुछ आसोज सुदी बीज कह रहे हैं, कुछ आसोज बदी बीज कह रहे हैं। अच्छी तरह बोलना। मदनमुनि जी म.सा. ने क्या बोला था? जोधपुर वालों को या बाहर वालों को ऐसे कार्यक्रम में क्या होना चाहिए? कितने लोग एकासना करेंगे? अध्यक्ष साहब! अध्यक्ष साहब कहेंगे कि मेरे हाथ में क्या है? मैंने तो सब कुछ दूसरों के हाथों में सौंप दिया है। भोजनशाला वाला कौन है? कौन दरवाजा बंद कर सकता है? आज ही कह देंगे कि कल हमारे यहां पर सुबह नाश्ता-पानी बंद है। यदि संघ वाले भोजनशाला बंद करें कि एकासना करो तो यह शिकायत नहीं होनी चाहिए कि संघ वालों ने तो चौका बंद कर दिया। संघ वाले चौका बंद करें, ऐसो माजणों क्यों कराणों। आज ही पच्चक्खाण कर लो कि कल एकासना करना है। कल एकासना करने वाले खड़े हो जाओ। एकासना करना है तो आज ही निर्णय कर लो। आज ही पच्चक्खाण कर लो। आज ही पच्चक्खाण करा देते हैं। बस इतना ही कहते हुए विराम।

29 सितम्बर, 2019

9

'स' को समझें-साधें

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे...

शांति और समाधि में कोई विशेष अंतर नहीं है। शब्दों में अंतर जरूर है किंतु इनकी भावात्मकता में विशेष अंतर नहीं है। समाधि का स्परूप कैसे निखरता है और व्यक्ति असमाधि में कैसे चला जाता है? शांति की टोह में चलने वाला अशांति में कैसे चला जाता है, इसकी हम थोड़ी समीक्षा करेंगे, विचार करेंगे।

प्रत्येक प्राणी शांति का इच्छुक है। प्रत्येक प्राणी समाधि चाहता है, सुख की परिकल्पना करता है पर दुःखी हो जाता है, अशांत हो जाता है। उसका चित्त द्वंद्व में चला जाता है। बहुत सारी दुविधाएं उसको अपने सामने नजर आती हैं और बहुत बार अपने विचारों के जाल में वह इतना उलझ जाता है कि समाधान ढूंढ़ नहीं पाता। नेशनल हाई-वे पर चलना शायद आसान होता है, गति वाला होता है किंतु वहां पर भी सावधानी जरूरी है। यदि सावधानी नहीं रहे तो वहां भी व्यक्ति द्वंद्व में जा सकता है। वहां पर भी गत्यावरोध खड़े हो सकते हैं।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. हमारे आदर्श पुरुष रहे हैं। उन पर ही हम थीसिस लिखें, यदि उन पर ही हम शोध करें तो हमें शांति और समाधि का मार्ग मिल जाएगा। हम वहां से चलते हैं, जहां उनके भीतर धार्मिकता का पुट नहीं था। उन्होंने भादसोडा में व्याख्यान सुना। उस पर सोच बनी, चिंतन हुआ और दिशा मुड़ गई। दिशा मुड़ने के बाद कुशल नेतृत्व की शोध में चले गए। 'मैं अपने जीवन की बागडोर किनके हाथों सौंपू?' कुशल खेवैया के रूप में आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. उन्हें प्राप्त हुए और उनके चरणों में वे समर्पित हो गए। उनका एक लक्ष्य,

एक उद्देश्य था कि आचार्य श्री जी को साता पहुंचे। आचार्य श्री की जिसमें चित्त की प्रसन्नता हो वही मेरी गति, वही मेरी प्रवृत्ति। वे चलते रहे, चलते रहे, चलते रहे। सेवा कार्य संपादित करते रहे। अलग विहार कराया, वृद्ध संतों की सेवा में भेजा। उन्हीं भावों से वहां भी गए और शारीरिक सेवा करते-करते कब मानसिक सेवा के क्षेत्र में प्रवेश हो गए, शायद किसी मुहूर्त को नहीं देखा होगा। कर्तव्य था कि मुझे सर्व प्रकार से साता पहुंचानी है और उसी लक्ष्य से चलते रहे।

एक समय आया और आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. ने घोषणा कर दी युवाचार्य पद की। मुनि श्री नानालाल जी म.सा., युवाचार्य श्री नानालाल जी म.सा. पहुंचे आचार्य श्री के चरणों में और निवेदन किया, भंते! 'आपने जो घोषणा की है, उसमें मेरा एक निवेदन है कि मेरे स्थान पर अन्य किसी मुनि को आप नियुक्त करें तो ज्यादा ठीक होगा और मैं उनकी सेवा में इसी प्रकार कार्यरत रहूंगा। चाहे दीक्षा पर्याय में छोटा मुनि भी क्यों न हो, मुझे उसके सान्निध्य में रहकर कार्य करने में भी कोई ऐतराज नहीं होगा।' यह मैं उनके भाव बोल रहा हूं।

यहां तक हम पहुंचे हैं। अब आगे हम विचार करेंगे। अब हम थोड़ी समीक्षा करेंगे। नेशनल हाई-वे पर आदमी चल रहा है। आगे जाकर वही नेशनल रोड 'ए' और 'बी' दो भागों में विभक्त हो जाती है। दोनों सड़कें बराबर लग रही हैं। समान लग रही हैं। चौड़ाई में बराबर हैं। अन्य व्यवस्था में भी दोनों रोड बराबर हैं। बराबर लग रही हैं। समान लग रही हैं। पर दोनों दो अलग-अलग दिशाओं में जा रही हैं। यदि आदमी विचार न करे तो क्या स्थिति बनेगी? क्या स्थिति बनेगी? शायद वह रास्ता भटक जाए। यदि सावधानी नहीं रहे तो थोड़ी-सी चूक भी जीवन के लिए भयंकर भूल हो जाती है। थोड़ी-सी चूक भी बहुत भटकाने वाली हो जाती है।

यहां हम थोड़ा और विचार करेंगे। कार्यकर्त्ता काम कर रहा है, कार्य कर रहा है। उसको प्रेरणा मिली तो वह काम कर रहा है। वह उस बिंदु पर पहुंच गया जहां पर हाई-वे दो भागों में विभक्त हो रहा है। केवल गति करना ही लक्ष्य नहीं होना चाहिए। मंजिल के अनुरूप गति होना चाहिए। गति कर लेने से मंजिल नहीं मिलती है। मंजिल के अनुरूप गति करने से मंजिल प्राप्त होती है। मंजिल के अनुरूप गति करना ही सच्ची गति है। सच्ची प्रवृत्ति है। सही दिशा है और वही सही दिशा में गमन है। अन्यथा मंजिल से विमुख यदि

चले गए तो हम मंजिल प्राप्त नहीं कर पाएंगे। वह गति होते हुए भी गति नहीं होगी। वहां भटकन होगी। पता नहीं कहां से कहां तक हम भटक जाएंगे और मंजिल नहीं मिलेगी। समुद्र में कई बार भ्रांति हो जाती है कि ये किनारा है। उस किनारे को समझकर व्यक्ति उसका सहारा लेना चाहे तो बहुत बार धोखा खा जाएगा। वहां किनारा मिलने वाला नहीं है। वैसे ही हमें यहां पर अपनी गति में सावधानी रखनी होगी। एक गति वह है जो हमें मंजिल की ओर ले जा रही है।

आचार्य देव की गति, मुनि श्री नानालाल जी म.सा. की गति मंजिल के अभिमुख थी। वे उसी ओर चलते रहे। उस समय कोई ख्वाब नहीं था। कोई स्वप्न नहीं था। कोई विचार भी नहीं था। कोई ऐसा भाव नहीं था कि मुझे युवाचार्य बनाया जाना चाहिए। ध्यान देना अच्छी तरह से। मन में ये कल्पना पैदा नहीं होनी चाहिए। रंगीन स्वप्न नहीं देखे जाने चाहिए। यदि कार्य करते हुए मुनिश्री नानालाल जी म.सा. ये ख्वाब देखने लगते, रंगीन स्वप्न देखने लगते और ये विचार करते कि मुझे अब युवाचार्य बनाया जाना चाहिए तो वह प्रतिष्ठा, वह स्थान उन्हें शायद नहीं मिलता। क्योंकि उसके बाद उनकी जो अभिव्यक्ति होगी, वह कुछ भिन्न होगी।

मैं जब आचार्य पूज्य गुरुदेव के जीवन की समीक्षा करता हूं और थीसिस के रूप में उस पर विचार बनता है तो मुझे लगता है कि उन्होंने नेशनल हाई वे पर चलते हुए 'ए' और 'बी' के नुक्कड़ पर बड़ी सावधानी रखी और वे विपरीत दिशा में नहीं गए। अन्यथा व्यक्ति विचार करने लगता है कि मैं इतने समय से काम कर रहा हूं, अब ऐसा हो जाना चाहिए। हम गौर करें आचार्य पूज्य गुरुदेव के उद्‌गार पर। वे निवेदन करते हैं कि भगवन्, आप किसी दूसरे मुनि को इस पर नियुक्त कर दीजिए। गुरुदेव के मुख से यह भी सुना कि उन्होंने पूज्य श्री करणीदान जी म.सा. के नाम का भी निवदेन किया कि वे बड़े विलक्षण संत हैं। ये कार्यभार उनके सुपुर्द किया जाए। मैं उनके चरणों में रहकर कार्य संपादित करने के लिए तैयार रहूंगा। हम उनके जीवन में एक बात और देख सकते हैं कि एक ही लक्ष्य था आचार्यदेव को शांति पहुंचाना। उनको किसी प्रकार का टेंशन, तनाव नहीं होना। जिसमें उनके चित्त की प्रसन्नता हो, वह कार्य करते रहना। हमारे जीवन में भी एक यह बिंदु आ जाए कि हमें संघ के विकास के लिए काम करना है। संघ जो भी काम सौंपे, जो कार्य सुपुर्द करे, वह कार्य मुझे करना है। कभी कदाचित्

हमारे तक किसी की दृष्टि नहीं पहुंचे तो हमें स्वयं कार्य करने में जुट जाना चाहिए।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री गणेशलाल जी म.सा. के पास वे अकेले संत नहीं थे। उनसे भी विलक्षण, उनसे भी प्रतिभासंपन्न अन्य मुनिराज भी थे किंतु वे उस मार्ग पर नहीं चले। इन्होंने एक लक्ष्य बना लिया, दिशा बना ली। वह दिशा थी गुरु महाराज की सेवा करने की। उनको साता पहुंचाने की। उनके चित्त की आराधना करने की। उनका चित्त जिस प्रकार प्रसादित हो/प्रसन्न हो, वैसा कार्य करने की। यदि व्यक्ति ऐसा सोच लेता है, विचार कर लेता है तो उसके भीतर कार्य क्षमता अपने आप विकसित होती है। काम गुरु होता है। जब व्यक्ति कार्य में लगता है तो अपने आप उसको रास्ता मिलने लग जाता है। आचार्य देव एक छोटे-से गांव में जन्म लेने वाले, संघ संचालन के तौर-तरीके क्या जाने। किंतु कार्य संपादित करते-करते वे उस मुकाम पर पहुंच गए। यदि कार्यकर्त्ता अपना लक्ष्य वैसा ही बना लेता है कि मुझे कार्य संपादित करना है, संघ का विकास जिसमें हो, मुझे वह कार्य करना है, किसी ने कार्य सौंपा या नहीं सौंपा, हम कार्य करने लग जाते हैं तो हमको अपने आप ही रास्ता मिलेगा। कार्य करते हुए मन में आकांक्षा पैदा नहीं होनी चाहिए। मन में तरंगें तरंगित नहीं होनी चाहिए। यदि किसी प्रकार का कार्यभार नहीं दिया गया, कोई भी कार्यभार नहीं दिया गया तो मन खिन्न नहीं होना चाहिए। उद्यम हमारी गति होनी चाहिए। हमें उद्यमशील बने रहना चाहिए। उद्यमता हमें अन्यों से अलग करेगी। उद्यमता हमें दूसरों से भिन्न करने वाली बनेगी और हमारी गति हमें मंजिल दिलाने वाली बनेगी।

संघ की स्थापना पहले भी थी। साधुमार्गी संघ से पहले भी यह संघ था। उसका नाम आचार्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. का हितेच्छु श्रावक मंडल था। उसके बाद पूज्य जवाहराचार्य ने एक आचार्य के नेश्राय की योजना प्रस्तुत की थी संवत् 1990 के अजमेर सम्मेलन में। वह जब मूर्त रूप लेने लगी तब आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री गणेशलाल जी म.सा. घाणेराव, सादड़ी पधारे और नवनिर्मित 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' में सम्मिलित हुए। सम्मिलित होने में उन्होंने एक नोट लगाया था कि 'संघ एकता की योजना जब तक अखंडित रहे, तभी तक संघ में रहने को बाध्य हूं।' उन्हीं के नेतृत्व में संघ का निर्माण हुआ। अध्यक्ष के रूप में, शांतिरक्षक के रूप में वे ही उसकी अध्यक्षता कर रहे थे। वहां पर संप्रदायों का विलीनीकरण हो गया

था। आचार्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. की संप्रदाय भी उसमें विलीन हो गयी किंतु कालांतर में संघ एकता की योजना अखंड नहीं रही। वह खंड-खंड हो गई। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। संघ एकता की योजना में उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया था कि एक ही आचार्य के नेतृत्व में साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका चलेंगे। शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित्त, विहार आदि एक आचार्य के नेतृत्व में संपन्न होंगे। लेकिन तीन-चार साल के बाद ही चर्या में परिवर्तन आने लगा। एक दिशानुगामी अवस्था नहीं रह पाई।

मैं बता रहा था कि नेशनल हाई-वे से अलग-अलग रास्ते फटे और मुनिगण भिन्न-भिन्न मार्गों पर गति करते हुए नजर आने लगे। अनुशास्ता के नाते आचार्य देव ने दिशा बोध दिया। सावधानी दिलाई किंतु निरंकुश मति जल्दी से अंकुश में आना नहीं चाहती। तब आचार्य देव ने विचार किया कि कहीं मैं अपने सम्यक् मार्ग से नहीं चूक जाऊं। उनकी अंतरात्मा ने पुकारा कि मैं सही दिशा में चलूं। फिर उन्होंने एक व्यवस्था सूत्र दिया। व्यवस्था के साथ यह भी कि इस व्यवस्था को जो स्वीकार करेगा, उसके साथ संबंध रहेगा। कालांतर में श्रावक समुदाय ने निवेदन किया कि गुरुदेव, हमारे लिए आधार क्या है? आचार्य देव ने कई प्रयत्न किए। अपने साथियों से भी राय ली। परामर्श लिया। उन्हें आमंत्रित भी किया गया किंतु उनका इशारा भी पंडित रत्न मुनि श्री नानालाल जी म.सा. की ओर रहा और आचार्य देव ने वह निर्णय लिया।

कहने का आशय यह है कि यदि हम इसका बहुत बारीकी से अध्ययन करेंगे और समीक्षा करेंगे तो आचार्य पद तक नानालाल जी म.सा. कैसे पहुंचे, यह हम भली-भांति जान पाएंगे। जिस दिन उन्होंने आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. की सेवा के लिए कार्य करना आरंभ किया, उस समय कोई सोच नहीं थी, कोई विचार नहीं था कि मुझे आगे बढ़कर आचार्य बनना है। ऐसी कोई सोच नहीं थी। ऐसी कोई प्लानिंग नहीं थी। बस संघ सेवा का कार्य करना है और आचार्य देव के जीवन को शांति पहुंचानी है। उसी उद्देश्य से गतिशील रहे। वही गतिशीलता उनको उस मुकाम पर पहुंचाने में समर्थ हो पाई।

हमारे भीतर एक संकल्प हो कि संघ विकास के लिए हम हर वक्त उपलब्ध रहेंगे। संघ विकास से ही हमारा विकास है। संघ जितना ऊंचाइयों पर पहुंचेगा, हम भी उसमें ऊंचाइयां प्राप्त करने वाले बनेंगे। कभी-भी मन में

तरंगें तरंगित नहीं हों। किसी भी पद की, किसी भी प्रतिष्ठा की कोई कामना अंतर्मन में नहीं हो। गीता का एक वाक्य है 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। यानी कर्म करो, गति करो, पुरुषार्थ करो, पराक्रम करो किंतु 'मा फलेषु कदाचन' अर्थात् उसके फल की कामना मत करो। ये बहुत जटिल काम होता है। कोई चीज सामने दिखती है तो उसको पाना आसान होता है। कोई चीज सामने नहीं हो तो उसको पाना जटिल होता है। हम साधना किस आधार से कर रहे हैं? हमें कहां हमारा चैतन्य नजर आ रहा है? हमारी दृष्टि कहां परमात्मा को देख रही है? फिर भी हम परमात्मा की शोध में गतिशील हैं। वैसे ही हमारे को कार्य में गतिशील रहना चाहिए। हमें कोई पद-प्रतिष्ठा नजर नहीं आनी चाहिए। जहां हमारे भीतर पद-प्रतिष्ठा और गौरव की भावना आ जाती है, वहां हमारा विकास रुक जाता है। फिर न हम संघ की समुचित सेवा कर पाएंगे और न स्वयं को ही विकसित कर पाएंगे। हमारी गति में बाधा आ जाएगी। हमारी सोच में बदलाव आ जाएगा। हमारे बोलने की टोन में अंतर आ जाएगा। वैसी स्थिति नहीं बने और हम मार्ग से भटकें नहीं। कोई पद मिले या नहीं मिले सही दिशा में चलते रहें। यदि सही दिशा में चलेंगे तो निश्चित रूप से सिद्ध पद मिलेगा। यदि भटक गए तो दूसरे पद कहीं मिल भी गए पर सिद्ध पद प्राप्त नहीं कर पाएंगे। हम सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। इसलिए हम अपनी मंजिल की दिशा में आगे बढ़ें। मेरा कार्य संघ सेवा है। मैं संघ की सेवा करता रहूंगा। जो मेरे से बन पड़ेगा, जो मेरी समझ में आएगा, मैं समझ के अनुसार संघ सेवा के लिए तत्पर रहूंगा।

अभी उपाध्याय श्री जी ने पांच 'सत्त्व' बताए। इनको अपना वक्तव्य जल्दी पूरा करना था, इसलिए उस पर विशेष प्रकाश नहीं डाला। हमारी साधना और सिद्धि कहां से चालू होती है और मुकाम कहां है। मंजिल कहां है? हमारी मंजिल 'स' से चालू होती है। साधना, सम्यक्त्व, समर्पण, श्रावकत्व, साधुत्व और सिद्धत्व। 'स' से हमारी साधना प्रारंभ होती है और मंजिल भी 'स' है। हमें 'स' स्मृति में रहेगा और हमारी स्मृति बनी रहेगी कि मेरी साधना का, सिद्धि का मूल उद्देश्य 'स' है। मुझे उन्हीं पंच सत्त्व, पांच प्रकार के 'स' की ताकत को क्रियान्वित करना है। हमें तत्परता से यह कहना चाहिए कि मैं कार्य करने के लिए तैयार हूं, ताकि आपको कार्य समर्पण करने वाले सोच सकें, विचार कर सकें और समवितरण करने में सुविधा हो

सके। कठिनाइयां जरूर आएंगी, आती भी हैं। कठिनाइयों से हिम्मत हारने वाले मंजिल नहीं पाया करते। कठिनाइयों को पहचान कर, कठिनाइयों को परखकर, कठिनाइयों को किनारे करने की जिसमें शक्ति होती है, वह व्यक्ति मंजिल पाता है। वह व्यक्ति मुकाम को प्राप्त करता है।

पूर्व वक्ताओं से हम कुछ बातें सुन गए हैं। पूर्व अध्यक्ष, अभी भी अध्यक्ष ही हैं, जयचंद लाल जी डागा अपनी बात कह गए। महिला समिति की अध्यक्ष भी अपने विचार कह गईं। किंतु उन्हें यह नहीं समझना चाहिए कि वे निर्भार हो गए। उनको यह नहीं सोचना चाहिए कि वे निर्भार हो गए, बल्कि उनको विशेष जवाबदारी का बोध होना चाहिए। कोई यह नहीं कह सके कि जयचंद लाल जी का उत्तराधिकारी सही नहीं हुआ। इसकी जवाबदारी किसकी होगी, यह जवाबदारी किसकी होगी? और महिला समिति की जवाबदारी किसकी होगी? अध्यक्ष को यह नहीं समझना चाहिए कि मैं तो हलका हो गया। कभी-कभी आदमी सोचता है कि मेरा भार उतर गया। उतरा नहीं बल्कि उनकी जवाबदारी और दुगुनी हो गई है। पहले जवाबदारी स्वयं तक सीमित थी, अब उत्तराधिकारी की जवाबदारी भी उन पर आ चुकी है। ऐसा हुआ है, होता है।

एक आचार्य जब किसी युवाचार्य का चयन करता है तो उसके विकास के लिए वह पहले से कई गुणा ज्यादा विचार करता है। कई गुणा ज्यादा सोचता है क्योंकि उसे भी, उस आचार्य के मुकाम तक पहुंचाना है और जनता के दिल में उसके प्रति वही श्रद्धा भक्ति व्यक्त करानी है। पूर्व आचार्य अपनी जवाबदारी समझते हैं। वैसी ही जवाबदारी हमें संघ के क्षेत्र में समझनी चाहिए। एक पिता भी यदि अपने पुत्र को कार्यभार सौंपता है तो एकदम से निवृत्त नहीं हो जाता है। देखता रहता है कि सही दिशा में काम हो रहा है, तो ठीक है। उसकी दृष्टि पुत्र के कार्यों पर बनी रहती है। कहीं आवश्यकता होती है तो दिशा निर्देश भी दिया जाता है और कहीं आवश्यकता नहीं होती है तो कुछ कहने की जरूरत है ही नहीं। हम प्रत्येक व्यक्ति संघ के प्रति, संघ के लिए कोई भी कार्य कर रहे होते हैं। हमारे मन में यह कभी नहीं आना चाहिए कि मैं संघ पर बहुत बड़ा अहसान कर रहा हूं। मैं संघ पर कोई अहसान नहीं कर रहा हूं। संघ के लिए मुझे सेवा का अवसर मिला है। मैं यदि संघ के लिए कोई सेवा नहीं कर सकता हूं या संघ के दायित्व के प्रति मेरा जो एक रुझान होना चाहिए, जो कर्तव्य होना चाहिए, वह नहीं कर पाता हूं तो उस

दायित्व से-उस कर्तव्य से मैं च्युत हो जाऊंगा। मुझे अपने कर्तव्य पर अडिग कदमों से आगे बढ़ते रहना है। मेरे कदम न डिगने चाहिए, न ही रुकने चाहिए और न मुड़ने चाहिए। मेरे कदम निरंतर अग्रसर-गतिशील होते रहना चाहिए, मंजिल की दिशा में। मुकाम की दिशा में। ऐसा यदि हम अपना प्रयत्न करेंगे तो आचार्य देव के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजंलि होगी।

'अनन्य महोत्सव' के क्षेत्र में संघ ने काफी ऊंचाइयां प्राप्त की हैं किंतु हमें अभी और ऊंचाइयां प्राप्त करने की दिशा में गतिशील रहना है। ये नहीं समझना है कि 2020 हो गया तो एकदम निवृत्त हो गए। उसके बाद जवाबदारी बढ़ेगी या घटेगी? (सभा–बढ़ेगी) मेरे सामने ही जवाबदारी बढ़ेगी? मेरे सामने बोलने की जवाबदारी बढ़ेगी या संघ के लिए कार्य करने की जवाबदारी बढ़ेगी? हम सभी अपने-अपने दायित्व का, कर्तव्य का बोध करें। आचार्य पूज्य गुरुदेव के जिंदगी को, एक व्यक्ति के जीवन की यदि सम्यक् प्रकार से शोध करते हुए हम आगे बढ़ें तो मैं जहां तक सोचता हूं हमें हर समाधान मिलेगा। हमारी समस्याओं का हमें समाधान मिलेगा। केवल एक आचार्य पूज्य गुरुदेव के जीवन का अध्ययन कर लें तो उसमें सारी चीजें हमें प्राप्त होती हुई चली जाएंगी। हम अपने आपको धन्य बना पाएंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

पुनश्चः–

श्री गुलाब मुनि जी म.सा. के संथारे का आज कौन-सा दिन आ गया? आज संथारे का 20वां दिन गतिशील है। वे अपने समता भावों में गतिशील हैं। शांत भाव और ऊंचे विचार की साधना निरंतर जारी है। समय-समय पर पूछा भी जाता है किंतु निष्काम भावों में, निस्पृह भावों में हैं। काया के संयोग के लिए भी कहते हैं कि छोड़ना है, त्यागना है। उन भावों में वे गतिशील हैं। यह भी हमारे लिए एक प्रेरणा का विषय है। हम उनसे भी प्रेरणा लें और धन्य बनें।

30 सितम्बर, 2019

10

अपना दर्पण देख

शांति जिन एक मुज विनति...

धर्म संघ के उद्देश्य के संदर्भ में एक सुंदर बात मदनमुनि जी म.सा. ने याद दिलाई कि हमारे धर्म संघ का उद्देश्य क्या है? धर्म संघ की स्थापना किस उद्देश्य से हुई? उद्देश्य आप लोगों के ध्यान में होगा, आप लोगों की जानकारी में होगा, उपयोग में होगा। उद्देश्य के कई कॉलम हैं, जिसमें एक मुख्य उद्देश्य है ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि। इन तीनों में सम्यक् का समावेश हो जाता है यानी सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र। ज्ञान की दिशा में हम कुछ आगे बढ़े हैं।

आचार्य श्री की शताब्दी, जन्म शताब्दी 'अनन्य महोत्सव' के संदर्भ में ज्ञान के कई आयाम दिए गए। उन आयामों के आधार पर काफी भाई-बहन उसमें गतिशील हैं। कुछ प्रतिज्ञा भी दी गई थी। उसमें से पौषध, सामायिक, संवर आदि में काफी लोगों ने अपना उत्साह दिखाया है किंतु हमें अपनी जड़, अपनी नींव की ओर भी ध्यान देना चाहिए। नींव की तरफ प्रायः करके ध्यान नहीं दिया जाता है। ध्यान दें भी क्या? एक बार नींव भर दी तो भर दी। उसके बाद नींव को खोलकर थोड़ा ही न देखा जाता है कि नींव में क्या भरा हुआ है? एक बार नींव को भरने के बाद वापस नींव को देखा नहीं जाता है। किंतु हमें समीक्षा करनी पड़ेगी, हमें देखना होगा कि हमारा सम्यक् दर्शन कितना विशुद्ध है, कितना निर्मल है, कितना पवित्र है? हमारी श्रद्धा, हमारी आस्था सुदृढ़ है या नहीं है? हमारा मन अन्य अपेक्षाओं से जुड़ा हुआ तो नहीं रहता है?

बहुत बार सुनने को मिलता है कि हम वहां यात्रा लेकर गए, वहां यात्रा लेकर गए, वहां यात्रा लेकर गए। देवी-देवताओं के चक्कर में हम अपने

सम्यक्त्व की कहीं विराधना तो नहीं कर रहे हैं? यदि देवी-देवताओं की आराधना से हमें कुछ मिल भी रहा है परंतु उससे मोक्ष का मार्ग अवरुद्ध हो रहा है तो जो मिल रहा है, वह उसके बदले में नगण्य है। कुछ भी नहीं है। हम मूल मार्ग को भूल जाएंगे, मूल मार्ग से भटक जाएंगे। हमारा मूल मार्ग स्पष्ट रहना चाहिए। आकांक्षाएं, लालसाएं, अभिलाषाएं कोई मायने नहीं रखती हैं और जब विश्वास डोल जाएगा तो आराधना का हमारा भव्य भवन सुस्थिर नहीं रह पाएगा।

एक कहानी में बताया गया है कि राजा जनक को राज ऋषि भी कहा जाता था। उन्होंने एक बार वेद व्यास जी से निवेदन किया अपनी राजधानी चलने का। वेद व्यास जी उनकी राजधानी में पधार गए, पहुंच गए और प्रतिदिन सत्संग का कार्यक्रम चालू हो गया। बड़े ऋषि आए हैं तो अन्य भी कई ऋषिगण पहुंच गए कि हमें भी सत्संग करना है। समय निर्धारित हो गया कि अमुक समय से सत्संग चालू होगा। बहुत सारे ऋषि, महर्षि और पूरी सभा आकर जुट जाती पर सत्संग का कार्यक्रम चालू नहीं होता। राज ऋषि जनक जब सभा में पहुंचते तब कार्यक्रम चालू होता। लोगों ने एक दिन देखा, दो दिन देखा, चार दिन देखा। धीरे-धीरे फुसफुसाहट चालू हो गई। यहीं पर आप समझ लो कि यह व्याख्यान सभा और यहां नेमीचंद सा[1] न आए तो व्याख्यान चालू नहीं होगा। नेमीचंद जी ही नाम है ना अध्यक्ष साहब का! तो जब तक वे नहीं आएंगे तब तक व्याख्यान चालू नहीं होगा। जब आएंगे तो चालू होगा। आधा घंटा लेट आने पर आधा घंटा लेट चालू होगा तो क्या वार्तालाप होगा, क्या फुसफुसाहट होगी? कोई चर्चा नहीं होगी क्या? नहीं होगी तो बहुत बढ़िया है। आप अध्यक्ष के प्रति इतने समर्पित हैं तो बहुत बढ़िया बात है।

यदि व्यक्ति की अपने अध्यक्ष, अपने सदस्य के प्रति इतनी यदि आस्था है, अध्यक्ष को अपने सदस्यों के प्रति आस्था है और सदस्यों को अपने अध्यक्ष के प्रति आस्था है तो बहुत महत्त्व की बात है। अभी पीछे कौन बैठे हैं? मदनलाल जी हैं ना? देख लो मदनलाल जी सांखला[2] को। इनकी मातुश्री का देहवसान अभी 2-3 दिन पहले ही हुआ और कल उठावणे

1. नेमीचंद जी पारख–श्री साधुमार्गी जैन संघ, जोधपुर के अध्यक्ष

2. मदनलाल जी सांखला (बालेसर–जोधपुर)

के बाद आ गए। कल मेरा मौन था तो उपाध्याय श्री ने कहा कि शोक नहीं रखना व धर्म कार्यों में अंतराय नहीं रखना और आज ये सभा में उपस्थित हैं। जोधपुर में कोई चर्चा नहीं करे लेकिन बालेसर जैसे गांव में लोग चर्चा कर सकते हैं कि कल मां मरी है और आज धर्म सभा में चले गए। ऐसी चर्चाएं यद्यपि पहले से अब कम हो गई हैं फिर भी गांव में ये चर्चाएं रहती हैं कि मां मरी और व्याख्यान नहीं छूट रहा है। लोग ऐसी चर्चाएं शुरू कर देते हैं। उन्होंने उन चर्चाओं को महत्त्व नहीं दिया। मां मर गई तो क्या 12 दिन बैठने से वह जिंदा होकर आ जाएंगी? चाहे मां हो, चाहे बाप हो, चाहे कोई भी हो। वृद्धावस्था में मरे चाहे जवानी में। कोई भी यहां वापस आने वाला नहीं है। फिर शोक रखना क्या हमारे जैन सिद्धांत की बात है? भगवान कहते हैं कि आत्मा कभी मरती नहीं है तो फिर शोक किसका करोगे? शोक किसका? संयोग का वियोग हुआ है और संयोग का वियोग होगा, होता रहा है। उसको टालने वाला कोई नहीं है। अतः ऐसी दृढ़ता हर किसी को रखनी चाहिए। चाहे मदनलाल जी की मां हो या किसी अन्य व्यक्ति के परिवार के लोग हों। कोई भी घटना घट जाए तो शोक नहीं रखना चाहिए। घटनाएं तो घटती हैं। हमें धर्म ध्यान में अंतराय नहीं रखना चाहिए। मां मर गई तो खाना छूट गया क्या? खाना तो खाते हैं ना? हो सकता है कि घर में नहीं बनावे और पड़ोस वाले लाकर खिला दें, पर खाना छूटता है क्या?

शरीर को शक्ति देने के लिए खाना नहीं छोड़ते हैं फिर आत्मा की खुराक क्यों छोड़ी जाए? देशनोक की एक बहन के पति का स्वर्गवास हो गया तो उससे लोगों ने कहा कि कोने में बैठना पड़ेगा। उसने कहा कि क्यों बैठना पड़ेगा कोने में? वह बहन सुबह आई और गुरुदेव के पास पौषध पच्चक्ख लिया। वह तीन दिन तक पौषध में रही। कोई रोना-धोना नहीं। उन्होंने कह दिया कि मैं नहीं रोऊंगी। क्यों रोऊं मैं? लोगों ने कहा कि घर में बैठना पड़ेगा, बैठक में। किंतु वह तीन दिन पौषध करके बैठी।

वस्तुतः हमें यह विचार करना ही चाहिए। शोक, संताप, पीड़ा अचानक मिटेगी नहीं। वह धीरे-धीरे मिटेगी। यदि घर में बैठे रहेंगे तो बार-बार वह चीज याद आती रहेगी। शोक करना, दुःखी होना, आर्त-ध्यान करना, अशांतिदायक कर्मों का बंध कराने वाला होता है। शोक क्यों किया जाए? मदनलाल जी ने हिम्मत की और आ गए व्याख्यान में। उन्होंने सोच लिया कि धर्म ध्यान में अंतराय नहीं रखना। मैं बता रहा था कि यदि ऐसा ही कोई

सख्स हो, सोचें कि उसके आने पर व्याख्यान सुना जाएगा, उसके आने पर सत्संग चालू होगा। उसके पहले सत्संग चालू नहीं होगा तो ऐसे व्यक्ति की हम भी चर्चा करेंगे या नहीं करेंगे? यदि नहीं करेंगे तो बहुत अच्छी बात है किंतु हम चर्चा किए बिना रहेंगे नहीं। लोगों में खुसर-फुसर होने लग जाएगी। वहां भी ऋषियों में चर्चा होने लगी कि वेद व्यास जी बहुत पहुंचे हुए ऋषि हैं, बड़े महत्व के ऋषि हैं। हम लोग बहुत मान-सम्मान देते रहे हैं। पर ये ऋषियों के बजाय सम्राट जनक को ज्यादा महत्व दे रहे हैं। ये सत्ता से प्रभावित हैं। सत्ता के लोभ का ये भी संवरण नहीं कर पाये हैं आदि। यद्यपि यह मान-सम्मान तो अभी भी दे रहे हैं। अभी भी हाथ जोड़ रहे हैं। अभी भी आते हैं तो मान-सम्मान देते हैं। पर वह मान-सम्मान किस काम का? मान-सम्मान भी दे रहे हैं, हाथ भी जोड़ रहे हैं और भीतर में खुसर-फुसर भी कर रहे हैं कि शायद ये भी राजसत्ता के पीछे धर्मसत्ता को भूल गए हैं। राजसत्ता आने पर सत्संग चालू करना और इतने ऋषि वगैरह की उपस्थिति में सत्संग चालू नहीं करने की बात समझ में नहीं आई।

आदमी एक दिन गौण कर दे, दो दिन गौण कर दे, पर ज्यादा दिन होते हैं तो फुसफुसाहट कुछ आगे बढ़ जाती है। फुसफुसाहट आगे बढ़ गई। वेद व्यास जी विचार करने लगे कि लोग सत्य को कम समझते हैं। हम यहां आए किसलिए हैं? सत्संग के लिए आए हैं या फुसफुसाहट करने के लिए आए? सत्संग करने के लिए आएं तो फिर फुसफुसाहट क्यों करनी? फिर प्रतिक्रिया क्यों? (जोर देकर) फिर प्रतिक्रिया क्यों? प्रतिक्रिया आने का मतलब है कि हमारे मन में कुछ न कुछ खरोंच लगी हुई है। हमारे मन में कुछ पीड़ा हुई है। हमारे मन में यह पीड़ा पैदा होने के पीछे जरूर कहीं न कहीं ईर्ष्या की भावना है। हम किसी की बढ़ोत्तरी को देखने के लिए तैयार नहीं हैं। किसी की ऊंचाइयों को देखने के लिए तैयार नहीं हैं। कोई ऊंचाई पर जा रहा है तो हमें सहन नहीं होता है। अमुक व्यक्ति को इतना महत्व क्यों मिल गया? अमुक व्यक्ति को इतना रिस्पॉन्स क्यों मिल गया? अभी यहां पर ये भाई आए हैं। क्या नाम है? सलीम जी। जिन्होंने संकल्प लिया है कि नाना गुरु के जन्म शताब्दी वर्ष में पांच लोगों को कत्लखाना छुड़वाऊंगा। ऐसा संकल्प लिया है। एक बार मुझे खड़े होकर बताओ कि 5-5 आदमियों को कत्लखाना छुड़ाने वाले कौन-कौन हैं? आप हर्ष-हर्ष बोल रहे हो और कत्लखाना बंद नहीं करवा सकते तो हर्ष-हर्ष बोलने का मतलब क्या हुआ? ऐसा कौन है जो

कहें कि मैं पांच आदमियों को कत्लखाने का त्याग करवाऊंगा? अध्यक्ष जी चाहें तो कइयों को छुड़वा सकते हैं। पंकज जी शाह ने तो कह रखा है कि जो भी कत्लखाना बंद करेगा, उसको अन्य काम देना मेरी जिम्मेदारी है। मैं उसको काम दूंगा। ऐसे बहुत से लोगों ने आश्वासन दिया है। वह आश्वासन लोगों तक पहुंचा नहीं है कि कोई कत्लखाना बंद करेगा तो उनको रोजगार देंगे। यदि कोई कत्लखाना बंद करता है तो उसकी एवज में उसको कोई न कोई रोजगार या व्यापार करने में मदद दी जाएगी ताकि उसकी आमदनी हो। उसका रोजगार चलता रहे। पंकज जी शाह बोल रहे थे कि ये जो आए हैं यहां पर ये पच्चक्खाण करने वाले हैं तो करवा दूं पच्चक्खाण?

आप सभी भाई जो यहां आए हैं, जो अब से कत्लखाना बंद करेंगे, आप अपना-अपना नाम, पिता का नाम व स्थान का नाम बोलें। अपने शपथ पत्र का वाचन करें।

'मैं शपथ लेता हूं। मैं जाति से कसाई हूं। पूर्व में मैं बकरे काटने का कार्य करता था। इस कार्य को मैं हमेशा के लिए बंद करता हूं। ये कार्य मैंने मेरे मन से बंद किया है। मुझे इस कार्य से घृणा हो गई है। मैं अपने जीवन निर्वाह के लिए दूसरा कार्य करूंगा। मैं अपने बच्चों को भी ये कार्य नहीं करने दूंगा तथा हमेशा जीव दया करूंगा। दूसरों को भी जीव दया करने की सलाह दूंगा। आज से मैं शुद्ध शाकाहारी भोजन करूंगा। मांस व अंडे नहीं खाऊंगा। मालिक मेरी मदद करें।'

इन सबके ये शपथ पत्र हैं और नीचे इनके हस्ताक्षर हैं। साक्षी में भी कई लोगों के नाम लिखे हुए हैं।

कोशिश करने वालों की हार नहीं होती। हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे तो अवश्य ही मंजिल को प्राप्त करेंगे। वैसे ही हम यदि पुरुषार्थ करेंगे, प्रयत्न करेंगे तो ऐसा नहीं है कि हम सफलता प्राप्त नहीं कर सकें। कई लोगों ने आश्वासन दे रखा है कि कोई भी यदि कसाईखाने को छोड़ने को तैयार होता है तो वे उसको रोजगार देने के लिए तैयार हैं। आपको तो केवल प्रेरणा करनी है। लोगों को समझाना है कि जीवों की घात से उनको कितनी पीड़ा होती है? हमारे अगर थोड़ी सी चोट लग जाए तो हमको कितना दर्द होता है? हम किसी का जीवन लेने का अधिकार कैसे प्राप्त कर लें? हम किसी को जीवन दे नहीं सकते तो किसी का जीवन कैसे ले लें? हमें लोगों का जीवन लेने

की बजाय, उनके जीवन की रक्षा करनी चाहिए। हमें उनका जीवन बख्शना चाहिए। यदि कोई मौत की चपेट में आ जाए तो मुझे उसे बचाने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसी हम समाझाइश देंगे, ऐसा हम समझाएंगे। एक-दो आदमी मानें या नहीं मानें तो हमारी हार कहां है? हम हारने वाले क्यों हैं? एक व्यापारी, एक दुकानदार किसी ग्राहक को कितनी बार माल दिखाता है? चाहे आभूषण हो, चाहे कपड़ा हो, चाहे कोई भी माल हो, वह कहता है कि यह अच्छा है, वह अच्छा है। वह कितना प्रयत्न करता है? दिन में दस आदमी बिना पसंद वाले, बिना खरीदने वाले आते होंगे, फिर भी वह माल दिखाता है या नहीं दिखाता है?

राजगृही नगरी में रत्न कम्बल बनाकर जो व्यापारी आए थे, कितने रत्न कम्बल बनाकर लाए थे? 16 रत्न कम्बल बनाकर वे लाए थे। बिक्री करने के लिए प्रयत्न किए किंतु नहीं बिके और वे थक गए, हार गए। अंत में जब शालीभ्रद के घर में काम करने वाली बहनें आईं और उन्होंने कहा कि आप चलो हमारे साथ, हो सकता है कि आपका काम हो जाए। तब एक भाई कहने लगा कि अब क्या करना है? जब राजा ही हमारे रत्न कम्बल नहीं ले सका तो दूसरा कौन ले लेगा? दूसरे व्यापारी ने कहा कि हम तो व्यापारी हैं। यदि हम ऐसे हार जाएंगे तो व्यापार कैसे करेंगे? चलो एक और प्रयास सही। इतनी बार प्रयत्न किया है तो एक बार और सही। यदि भाग्य प्रबल हुआ, भाग्य अनुकूल हुआ तो मौका मिल जाएगा, नहीं तो इतनी देर घूमे थक गए तो थोड़ा और थक जाएंगे। वे गए तो काम हुआ या नहीं हुआ? काम उनका हो गया। यदि नहीं जाते, वहीं बैठ जाते तो क्या रत्न कम्बल बिक पाते? वैसे ही हम प्रयत्न करेंगे और कसाईखाना बंद करने के लिए मनाएंगे। जरूरी नहीं है कि सब मान जाएं। यदि हमारा तर्क समझाने का होगा, हम सही रूप में समझाएंगे, हम सच्चे मन से समझाएंगे तो मुझे विश्वास है कि जल्दी से आदमी का बोला खाली जाता नहीं है। यदि हम समझाएंगे तो कुछ न कुछ तो उसके मन में असर पड़ेगा। कुछ न कुछ तो विचार पैदा होंगे। हमने एक को भी त्याग करा दिया। हालांकि यहां सभा में 5-5 आदमियों का कहा गया है किंतु हमने एक आदमी को भी त्याग करा दिया तो कितने जीवों को अभयदान मिलेगा, कितने जीवों को जीवन दान मिलेगा, आप विचार कर सकते हैं।

दानों में श्रेष्ठ अभयदान है। यह भगवान महावीर की वाणी है और हमने यदि किसी को प्रेरणा देकर अभयदान दिलाया तो जीव बचेंगे। वे तो बचेंगे

ही किंतु जो भाई जीवों का कत्ल कर कितने कर्मों का बंध कर रहा था, उसे आने वाले जन्मों में उन कर्मों का भोग करना पड़ता, वह उन कर्मों के भोग से बचा या नहीं बचा? दोनों तरफ फायदा है। दोनों तरफ लाभ ही लाभ है। हानि की तो कोई बात है ही नहीं। सामने वाले ने यदि पच्चक्खाण नहीं लिया, प्रतिज्ञा नहीं की तो भी आपको कोई नुकसान नहीं है। यदि उपदेश देने वाला, सच्चे भाव से उपदेश देता है तो शास्त्रकार कहते हैं कि उसके कर्मों की निर्जरा निश्चित रूप से होती है। वह कर्मों की निर्जरा करने वाला बनेगा, उसको लाभ मिलेगा। इसलिए हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि जो संकल्प लिया गया है, साधुमार्गी संघ ने विचार किया है कि इस शताब्दी पर, जन्म शताब्दी पर कम से कम सौ कसाईखानों को बंद कराना है, सौ कत्लखानों को बंद कराना है, वह पूरा हो। यह किसी एक व्यक्ति की जवाबदारी नहीं है। हर व्यक्ति को यह बीड़ा उठाना चाहिए और इस कार्य में जैसी हमारी क्षमता है, हमें उसके अनुसार गतिशील होना चाहिए।

बात क्या चल रही थी? राजा जनक की कि राजा जनक नहीं आवें तो व्याख्यान चालू नहीं होता। यहीं पर ले सकते हैं कि सुंदरलाल जी आवें तो व्याख्यान चालू होवे और सुंदरलाल जी नहीं आवें तो व्याख्यान नहीं होवे। अमुकलाल जी साहब आवें तो व्याख्यान होवे, तो लोग चर्चा करेंगे या नहीं करेंगे? आप कहेंगे कि अरे! साहब ये तो ज्यादा ही तवज्जो मिल रहा है। ये ज्यादा ही कुछ हो रहा है। दूसरे लोगों के लिए ऐसा नहीं हो रहा है। आप लोग ये बोलकर अपना मुंह क्यों खराब कर रहे हो? आप अपना मन क्यों खराब कर रहे हो? आप अपना मस्तिष्क, दिमाग क्यों खराब करते हो? आप तो अपने चित्त को स्वस्थ रखो। वेद व्यास जी भ्रष्ट हो गए तो हो गए, तुम क्यों भ्रष्ट हो रहे हो? वेद व्यास जी भ्रष्ट हुए या नहीं हुए किंतु खुसुर-फुसुर करने वाले ऋषि अपने मन को अपवित्र बना रहे हैं या नहीं बना रहे हैं? इसलिए कर्मों को तोड़ने के हम कार्य कर रहे हैं या कर्मों को बांधने के लिए? यदि हम संघ की सेवा कर रहे हैं, समाज की सेवा कर रहे हैं तो वहां भी कर्मों को काटने का लक्ष्य होना चाहिए। हमारी ऐसी कोई प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए जिसके कारण हमारे कर्मों का बंध हो। वेद व्यास जी ने जब इस बात को देखा तो उन्होंने थोड़ा विचार किया कि मुझे हकीकत का सबको बोध करा देना चाहिए और हकीकत का बोध कराने के लिए उन्होंने योग माया का प्रयोग किया। योग माया का प्रयोग हुआ।

राज ऋषि जनक आए और सत्संग चालू हो गया। राज ऋषि जम गए और सत्संग का पूरा लाभ ले रहे हैं। इतने में एक आदमी दौड़ा-दौड़ा आया और आकर बोला कि राजन्! गजब हो गया, अमंगल हो गया। राजमहल में आग लग गई है और इतनी जोरों से आग पकड़ ली है कि बुझाने पर भी बुझने का नाम नहीं ले रही है। राजा जनक बैठे रहे। सत्संग का लाभ लेते रहे। कोई चर्चा नहीं, कोई विचर्चा नहीं। कुछ नहीं। कहने लगे कि देखो, अभी मुझे सत्संग का लाभ लेने दो। वेद व्यास जी ने योग माया को और फैलाया। धीरे-धीरे वह अग्नि हवा के साथ वेग खाती हुई सत्संग भवन की ओर आने लगी। कितने लोग रहे होंगे वहां पर? वहां पर कितने लोग बैठे रहेंगे, व्याख्यान में कितने लोगों का मन लगेगा? अग्नि राज ऋषि जनक के आसन के नजदीक पहुंच गई और आसन में भी स्पर्श होने लगा। वे शांति से बैठे हुए हैं। इतने में एक-दो ऋषि जोर से चिल्लाए कि राज ऋषि जनक, संभलो! आपके निकट अग्नि पहुंच गई। आग आपके आसन को पकड़ रही है। बहुत सारे ऋषि अपना कमंडल और कंबल समेटकर छू मंतर होने की तैयारी कर रहे थे। इतने में राज ऋषि जनक बोले कि अग्नि का काम है जलाना किंतु वह ज्वलनशील पदार्थ को ही जलाती है।

अग्नि किसको जलाती है? ज्वलनशील पदार्थ को ही अग्नि जलाती है। मेरे शरीर को अग्नि जला सकती है पर मैं ज्वलनशील पदार्थ नहीं हूं। अग्नि मुझे नहीं जला सकती। मैं सत्संग का आनन्द ले रहा हूं। मैं उसी में आनन्द लेता रहूंगा और वे नहीं उठे। उनके आसन को भी आग ने पकड़ लिया, फिर भी वे नहीं उठे। तब वेद व्यास जी ने अपनी माया को समेटा और माया को समेटकर उद्बोधन दिया कि ऋषियों, आप लोगों के मन में उतार-चढ़ाव आने लगा। आप अपने मन को खराब करने लगे, कलुषित करने लगे।

अन्य स्थान पर किए गए पाप कर्म को धर्म स्थान-सत्संग में आकर धोते हैं और यहां पर यदि पाप कर्म का उपार्जन करोगे तो, 'वज्रलेपो भविष्यति' यानी उससे छुटकारा मिलना मुश्किल हो जाए, वैसी ही स्थिति बनेगी। एक कहावत है ना कि डाकण भी एक घर तो टालती है। क्या है कहावत? 'एक घर तो डाकण भी टाले'। हम डाकण तो नहीं हैं ना? लेकिन डाकण भी जब एक घर छोड़ती है तो हमें कितने घर छोड़ने चाहिए। हम एक घर क्यों नहीं छोड़ें? एक घर तो हम भी छोड़ें कि धर्म स्थान में हम किसी प्रकार की कोताही नहीं करेंगे। हम किसी प्रकार की किसी की भी कोई

चुगली नहीं करेंगे। हम अपने मन को कलुषित नहीं करेंगे। हम अपने दिल को अपवित्र नहीं करेंगे। यह परमात्मा का स्थान है, जहां से परमात्मा का संबंध जोड़ा जाना चाहिए। यदि यहां आकर भी काले-कलुटे काम करते रहोगे तो फिर क्या करोगे? फिर कहां जाओगे?

नहीं प्रभु से प्यार फिर क्या पाएगा,
रोना है बेकार छूट सब जाएगा।

क्या मिलेगा? क्या मिलने वाला है? क्या मिल जाएगा? यहां के धंधे यहीं रह जाने वाले हैं। चाहे किसी की भी निंदा कर लो, किसी की भी चुगली कर लो, कुछ भी कर लो, कितने भी दोष निकालने का काम कर लो, उससे सामने वाले का कुछ बिगड़ेगा या नहीं बिगड़ेगा किंतु हमारा बिगाड़ तो निश्चित रूप से होगा। धर्म की यदि श्रद्धा है, धर्म पर यदि श्रद्धा है तो ये सब चीजें क्यों होंगी? और ये चीजें यदि हो रही हैं तो ये अधर्म है, यह धर्म नहीं है। मेरे भीतर यदि दूसरे के दोष देखने के विचार पैदा होते हैं, मेरे भीतर यदि दूसरे की कमियां झलक रही हैं तो ये मेरे दर्पण की खराबी है। ये मेरे दिल की खराबी है कि मेरे दिल में दूसरों के दोष झलक रहे हैं। मेरा दर्पण निर्दोष होना चाहिए। मेरे दर्पण में जो भी आकर देखे उसका चेहरा सुंदर ही दिखे। वह बदरूप नहीं दिखे। मतलब जैसा होगा वैसा ही दिखेगा। हम क्यों किसी को बदरूप होते हुए दिखावें? मेरा दर्पण किसी का चेहरा बदरूप बनाने वाला क्यों बने? हकीकत है कि हमारा दिल खराब होगा तो हमारा चेहरा आने वाले समय में खराब होगा। आज नहीं तो कल खराब होगा। उसके परिणाम हमें भोगने पड़ेंगे। इसलिए अपने दिल को पवित्र रखो। दुनिया में हजारों आदमी खराब होंगे, सारी दुनिया खराब होगी किंतु मेरा दिल अच्छा है तो मेरे दिल में खराबी नहीं होगी। मेरे दिल में किसी के प्रति खराबी पैदा नहीं होगी। और यदि मेरा दिल खराब है, मेरा ही दिल खराब है तो मेरे दिल में किसी की अच्छाई दिख नहीं सकती।

जिसकी आंखों में मोतिया हो गया है, जिसको पीलिया हो गया तो वह उसकी स्वयं की लाचारी है, दुनिया की लाचारी नहीं है। स्वयं को पीलिया हो गया है और वह कह रहा है कि अरे! सामायिक में पीले वस्त्र पहनकर क्यों बैठे हो? सामायिक में पीले कपड़े क्यों पहने हैं, सफेद वस्त्र पहनने चाहिए। अब दोष किसका है? क्या लोगों ने पीले कपड़े पहने हुए हैं? लोग सफेद कपड़े पहने हुए हैं या पीले कपड़े पहने हुए हैं? लोगों ने तो सफेद वस्त्र ही पहने हुए हैं किंतु उसे दिख क्या रहा है? उसे पीले दिख रहे हैं। ये बीमारी

किसकी है? ये दोष किसका है? दोष उसका है तो अन्य कोई क्या करेगा? वह स्वयं अपने दोष से दूषित है। उसको सारी दुनिया पीली-पीली नजर आएगी। दुनिया चाहे किसी रंग की हो, दुनिया का इलाज करने से पहले हमें अपने पीलीया की बीमारी का इलाज करना चाहिए। दुनिया का इलाज करने के पहले हमें किसका इलाज करना चाहिए? अपने पीलिया का, अपने मोतियाबिंद का इलाज पहले करना चाहिए। मेरी आंखें स्वस्थ होंगी तो सारी दुनिया, सारी सृष्टि मुझे अच्छी दिखेगी।

मैं बता रहा था कि हमारी धर्म आस्था, हमारी धर्म श्रद्धा डांवाडोल क्यों हो रही है? क्यों हमारे भीतर उथल-पुथल हो रही है? क्यों हमें घर पर किसी पर भरोसा नहीं है? क्यों हमें इधर-उधर भटकना पड़ रहा है? क्यों हमें इधर-उधर ताकना पड़ रहा है? क्या होगा इससे? क्या मिलेगा? यदि धर्म से आपको कुछ नहीं मिलेगा तो अधर्म से तो कुछ भी मिलने वाला नहीं है। अर्हन्नक श्रावक के लिए ऐसा कथन आता है कि देवता ने दो अंगुलियों पर जहाज को उठा लिया और कहा कि तुम्हारा धर्म झूठा है, तुम धर्म क्रिया को छोड़ो नहीं तो तुम्हारे जहाज को मैं नीचे गिरा दूंगा। सारा माल समुद्र में स्वाहा हो जाएगा और सारे लोग समुद्र में डूब जाएंगे। 'एक', सोच लो, 'दो', सोच लो। अर्हन्नक शांति से बैठा हुआ है। उसके मन में एक बार भी विचार नहीं हुआ कि मेरी जिंदगी का क्या होगा, मेरे जीवन का क्या होगा, मेरे धन और माल का क्या होगा? इतने लोगों को मैं अपने साथ व्यापार में लेकर आया हूं, उनका क्या होगा? दिल पवित्र होता है तो सारी बातें पवित्रता की ओर बढ़ती हैं। मन पवित्र होता है तो विचार पवित्र होते हैं। मन में खटास भरी हुई हो तो वैसा ही होता है जैसा खटास वाली हांडी में दूध रखने पर होता है। खटास वाली हांड़ी में कितना भी बढ़िया दूध भर दो तो क्या होगा? (प्रतिध्वनि– वह दूध फट जाएगा।) क्या? आप बोल रहे हो कि फट जाएगा। अनुभव है क्या आपको? देखा कभी? देखा तो क्या देखा? जानकर भी देखने जाएंगे कि नीबू डाल कर देखें कि दूध फटा या नहीं फटा? ऐसा देखेंगे क्या? कह रहे हो कि जान रहे हैं। सभी जानते हो फिर भी कह रहे हो कि मैं प्रयोग करूंगा। देखूं कि क्या होता है? क्या होगा प्रयोग करने से? प्रयोग करने से क्या बदलेगा? हो सकता है कि आपकी हांडी ऐसी हो जिसमें नींबू का रस ही बदल जाए तो बात अलग है। नहीं तो नीबू का रस या खटाई या इमली का रस जिस बर्तन में भरा है, उस बर्तन में से निकाल

लिया किंतु अभी बर्तन धोया नहीं है या कोई मिट्टी का बर्तन है, उसमें निरंतर आपने नीबू और इमली का रस रखा होगा या अचार रखकर उसको धूप में रख दिया। कई दिनों तक ऐसा किया। कुछ समय पश्चात् उसमें से अचार निकालकर गर्मागर्म दूध डाल दिया। अभी अचार नहीं है किंतु खटाई उसमें जमी हुई है। उसमें यदि गर्मागर्म दूध डाल दिया है तो वह दूध फटेगा ही। उसको फटना ही है।

वैसे ही यदि मन खराब रखोगे तो धर्म फटेगा या क्या होगा? परमात्मा दिखेंगे या फिर नरक दिखेगा? अरे! परमात्मा दिखेंगे या नरक दिखाई देगा? रत्न प्रभा दिखेगी या शर्करा प्रभा को देखोगे? आप समझ गए। जानते हैं सभी। लोग जानते हैं ना? इसलिए कहा गया है कि अन्य स्थानों पर किए गए पाप को धर्म स्थान में धोया जाता है, धर्म स्थान में साफ किया जाता है, धर्म स्थान में परिष्कृत किया जाता है, वहां मन को पवित्र किया जाता है। 'धर्म स्थाने कृतं पापम्' और धर्म स्थान में यदि तुमने पाप कर्म किया तो उसका क्या परिणाम होगा? उसका कैसा परिणाम होगा?

साथियो, जैसे एक घर तो डाकण भी छोड़ती है वैसे ही कम से कम एक घर, एक स्थान तो हम भी छोड़ें कि वहां हम पाप कर्म नहीं करेंगे। दुनिया में अन्य जगह कुछ भी करते हों किंतु धर्म स्थान में झूठ, छल, कपट नहीं करें। धर्म स्थान में किसी की बुराई नहीं करें। वह बुरा है तो मैं उसकी बुराई करके अपना मुंह क्यों बुरा बनाऊं? 'वह बुरा है', उसमें बुराई होगी किंतु मैं बुरा बोलकर अपने मुंह को बुरा क्यों बनाऊं? कहां पर बुरा नहीं बनाना? धर्म स्थान में बुरा नहीं बनाना। सब जगह अच्छा रखो तो अच्छी बात है। कहीं पर भी मन बुरा मत करो, कहीं पर भी मुंह को बुरा मत करो किंतु अन्य जगह पर नहीं रुक पाते हो, अन्य जगह पर बुराइयों को नहीं छोड़ पाते हो तो एक स्थान पर तो तैयारी रखो। कौन से स्थान पर? धर्म स्थान पर। यहां आने के पहले, धर्म स्थान पर प्रवेश करने के पहले सारी बातें बाहर रखो। जैसे मोबाइल उतारते हो, बाहर रखते हो, जूते-चप्पल उतारते हो, सेल की घड़ी उतारते हो, वैसे ही दिमाग का सारा कचरा धर्म स्थान से बाहर ही रख देना चाहिए।

दिल साफ होगा तो धर्म की बात को बहुत अच्छी तरह से सुन पाएंगे, नहीं तो वही ऋषियों वाली बात हो जाएगी कि राजा जनक के आने पर ही वेद व्यास जी व्याख्यान देते हैं। ऋषियों को उनका सत्संग राजसत्ता की तरफ दिख गया। उन्हें लगा कि इनका पैसे वालों की तरफ लगाव हो गया है। इनको

पैसे वाले दिख रहे हैं। ये हो रहा है, वो हो रहा है। ऐसा हो रहा है, वैसा हो रहा है। अपने मन की सोच, अपने मन की बातें, अपने मन के विचार से किसी ने कैसा अर्थ लगा लिया, किसी ने वैसा अर्थ लगा लिया किंतु वेद व्यास जी का ध्यान स्पष्ट रूप से सत्संग करने पर ही था। एक चंद्रमा जब उदित होता है तो वह अंधकार का अंत कर देता है। वह अंधकार को मिटा देता है और हजारों, लाखों, करोड़ों, अरबों, खरबों तारे मिलकर भी उस अंधकार को दूर करने में समर्थ नहीं होते हैं। सभा में एक भी सच्चा श्रोता हो जाए तो सभा महत्त्वपूर्ण हो जाती है। वह धर्म सभा, वह सत्संग कामयाब हो जाता है। देवता के कहने पर, 'एक', 'दो' गिनने पर भी अर्हन्नक श्रावक का एक भी रोयां खड़ा नहीं हुआ। एक भी रोंगटा खड़ा नहीं हुआ और वह अर्हन्नक श्रावक सोचता है कि हमें तिराने वाला धर्म ही है। यदि धर्म नहीं तिराएगा तो अधर्म कभी नहीं तिरा सकता है। अधर्म तो हमें तिरा ही नहीं सकता है।

बंधुओ, हम विचार करें, हम चिंतन करें, हम मनन करें कि क्या कभी अधर्म हमें तिरा पाएगा? हम किसी की कांट-छांट करेंगे तो मन को खराब करेंगे या नहीं करेंगे। यह धर्म होगा या अधर्म होगा? (जोर देकर) धर्म होगा या अधर्म होगा? धर्म के क्षेत्र में हम ऐसा अधर्म कार्य क्यों करें? मैं तो कहूंगा कि कहीं पर भी हमें नहीं करना चाहिए। क्यों करें? क्यों किसी के काट-छांट में पड़ें? ऐसा करने से क्या मिलेगा? क्या मिल जाएगा? खरबूजा काटोगे, मतीरा काटोगे तो उसमें से खाने का पदार्थ मिल जाए और ये दुनिया की कांट-छांट करोगे तो क्या मिलेगा? क्या मिलेगा? क्या स्वाद आएगा? खरबूजे का स्वाद आएगा या तरबूजे का? क्या स्वाद आएगा? जैसे सर्प किसी को काटता है तो उसको क्या स्वाद आता है? उसको कोई स्वाद नहीं आता है। वैसे ही हमारा मन चाहे कितनी भी किसी की काट-छांट करे उसका स्वाद नहीं आएगा। कुंथुनाथ भगवान की स्तुति में कहा गया है कि 'सांप खाये ने मुखडुं थोयुं', सांप काटता है तो उसको स्वाद नहीं आता है, वैसे ही मन को स्वाद नहीं आएगा।

साथियो, समीक्षा करने के लिए बात थोड़ी चली थी कि हमारे संघ का उद्देश्य क्या था? हमारे संघ की जो स्थापना की गई, उसका लक्ष्य क्या था? ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि। हम मन को पवित्र रखेंगे तो सम्यक् ज्ञान की आराधना होगी, सम्यक् दर्शन की आराधना होगी और मन यदि काला रहेगा, मन कलुषित रहेगा, मन में खोट भरी रहेगी तो चाहे कितना भी कुछ

कर लें, कितने भी बढ़िया कपड़े पहन लें, कितनी भी सामायिक, पौषध, संवर, दया कर लें, वह सारे ऐसे ही बेकार चले जाने वाले हैं।

आचार्य पूज्य गुरुदेव बहुत बार फरमाया करते थे कि घी का व्यापारी कभी भी घासलेट के पीपे में घी नहीं देता है। आप घी के व्यापारी के पास गए घासलेट का डिब्बा लेकर और कहा कि पांच किलो घी चाहिए। व्यापारी पहले उस डिब्बे को लेकर देखता है। घासलेट के उस खाली पीपे में घासलेट नहीं है किंतु उसमें गंध आती है तो वह दुकानदार उस पीपे में घी नहीं डालेगा। वह कहेगा कि तुम तो इसमें घी भर लोगे लेकिन जब घी में गंध आने लगेगी, खराब हो जाएगा तो लोगों से कहोगे कि उस दुकान का घी खराब है। मेरे दुकान का नाम खराब हो जाएगा इसलिए मैं घासलेट के पीपे में घी नहीं भरूंगा। वही दृष्टिकोण हमारा होना चाहिए।

हम अपने मन को पवित्र करें। हम अपने मन को पवित्र करके यदि धर्म स्थान में आएंगे तो हमें शुद्ध धर्म का बोध होगा। हम शुद्ध धर्म को जान पाएंगे और शुद्ध धर्म की सच्ची आराधना कर पाएंगे। देवी-देवताओं के पीछे भी आज लोग कितने भटकते जा रहे हैं? क्या मिलेगा विचार कर लेना? रास्ता भटक गए तो मोक्ष मार्ग से च्युत हो जाएंगे। मोक्ष मार्ग किनारे रह जाएगा तो हमारी सारी क्रियाएं किनारे रह जाएंगी। इसलिए ज्ञान की दिशा में हम गतिशील बनें। श्रद्धा को सुदृढ़ कर लें। श्रद्धा दृढ़ होगी पर उसे और मजबूत कर लो और मन को इतना पवित्र कर लो कि हमारे मन में ऊंचे-नीचे विचार पैदा नहीं हों। ऐसी क्षमता हमारे भीतर रहे। अर्हन्नक श्रावक, जिसके जहाज को दो अंगुलियों पर देवता ने उठा लिया, परंतु उसके मन में देव के प्रति कोई द्वेष नहीं कि ये ऐसा क्यों कर रहा है? उसके प्रति मन में कोई द्वेष नहीं कि मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हैं? परमात्मा की पहचान करना है तो गुणों को देखो। हर व्यक्ति के, हर व्यक्ति में गुणों को देखो। यदि ऐसा तुम्हारा मन है तो समझो की तुममें धर्म है और यदि हर आदमी में बुराई ही दिखे तो इसका मतलब है कि अभी धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। जिसकी आंखों में पीलिया बसा हुआ है, वहां पर धर्म की बात नहीं आएगी। हर किसी में अच्छाई नहीं दिखे, हर किसी में अच्छाई नहीं देख सकें तो कम से कम बुराई तो नहीं देखें। जो किसी की बुराई नहीं देख सकता है, तो समझो कि धर्म का वहां पर वास हो गया है। धर्म की आवाज जहां सुन लेता है, वहां धर्म का वास होता है। जहां शुद्धि है, वहां धर्म का वास

होता है। हम अपने दिल को पवित्र करें, अपने दिल को साफ-सुथरा करें, अपने दिल को अच्छा करें। हम अपने दिल को पवित्र बना पाएंगे तो धर्म का अनुभव कर पाएंगे। हमें धर्म की अनुभूति होगी। हमें धर्म का अहसास होगा। धर्म का आभास होगा और निश्चित रूप से हमें तृप्ति की अनुभूति होगी। हमें सत्य की अनुभूति होगी। हमें संतुष्टि की अनुभूति होगी। हमारे मन में खटास रहेगी ही नहीं। कोई कितना भी खटास हमारे भीतर डालना चाहे, मेरा दिल पवित्र है तो दूसरों की डाली हुई खटास मेरे दिल को खट्टा करने वाली नहीं होगी। मेरे दिल की परतें इतनी संगीन होंगी कि मेरा दिल खट्टा होगा ही नहीं। उसमें खटास आएगी ही नहीं। मेरा दिल अपवित्र नहीं होगा। ऐसा यदि हम बन पाएंगे तो धन्य बन जाएंगे और सही मायने में धर्म की आराधना करने में हम सक्षम होंगे। हम ऐसा लक्ष्य बनाएं, ऐसा उद्देश्य बनाएं और इस दिशा में आगे बढ़ें।

आज संथारे का 21वां दिन है और उनके बारे में उनके पुत्र ने लिख कर दिया था कि उनमें किसी का बुरा देखने की आदत नहीं थी। एक ऐसा प्रसंग बना कि एक बार वे पौषध में थे और एक दूसरे भाई का भी पौषध था। उनके साथ उनकी बोलचाल नहीं थी किंतु रात को उस भाई को सर्प ने काट लिया तो उन्होंने आव देखा न ताव। अपने पास से कोई कपड़ा या कुछ लेकर उसके पैर को बांधा और उपचार करके उसको लाभ पहुंचाया। ऐसा नहीं कि ये मेरा शत्रु है। मैं इससे नहीं बोलता हूं तो मैं उसका उपचार क्यों करूं। ऐसा नहीं था। अच्छाई की ओर उनका ध्यान था। हम भी उनकी तरह अच्छाई की ओर लक्ष्य बनाएंगे। आज उनके संथारे का 21वां दिन चल रहा है। अपने शांत भावों से वे संथारे की आराधना में लगे हुए हैं। हम भी उनसे प्रेरणा ले और धन्य बनें।

01 अक्टूबर, 2019

11

हंसा तो मोती चुगे

शांति जिन एक मुज विनति...

व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैं। एक व्यक्ति उपकारी के उपकार को मानने वाला होता है। दूसरा व्यक्ति उपकारी का भी अपकार करने को तैयार रहता है और तीसरा व्यक्ति अपकारी का भी उपकार करने को तैयार रहता है। इन तीन प्रकार के व्यक्तियों के रूप में उत्तम, मध्यम और अधम को ले सकते हैं। शरीर से ऊंचा हो जाना उत्तम नहीं है। शरीर से ऊंचा हो जाना ऊंचाई नहीं है। अपने जीवन व्यवहार से जो व्यक्ति ऊंचा बन सकता है, उसको उत्तम कहा गया है। मध्यम व्यक्ति भी ऊंचाई की ओर गतिशील है किंतु अभी वह उस ऊंचाई को प्राप्त कर नहीं पाया है। कौन सा ऐसा कार्य है जिसको करने से व्यक्ति उत्तम हो जाता है और जिसको नहीं करने से अधमता की दिशा में चला जाता है। इतिहास के पृष्ठ यदि हम खोलकर देखें तो ऐसे बहुत सारे उदाहरण हमारे सामने मौजूद मिलेंगे। दो पात्र हमारे सामने हैं। एक दुर्योधन है और दूसरा युधिष्ठिर है। एक हमारे सामने शिशुपाल है और दूसरा हमारे सामने श्री कृष्ण हैं। शिशुपाल भी राजा है और दुर्योधन भी राजा है किंतु राजा होते हुए भी जो युधिष्ठिर में था, वह दुर्योधन में नहीं मिलेगा। जो श्री कृष्ण में देखने को मिला, वह शिशुपाल में नहीं मिलेगा। क्या था वह, जो श्री कृष्ण में था, युधिष्ठिर में था?

'सर्वजीवस्य हितकारणम्', सभी के लिए हितकारी बात होना, सबके हित का विचार करना और सबके हित की दिशा में कार्यशील होना, कर्मशील होना। 'दुःखी देख करुणा करे', दुःखी व्यक्ति के प्रति करुणा भाव होना। अभी हम चींटियों की रक्षा की बात सुन रहे थे। कौन थे चींटियों की रक्षा करने वाले? धर्म रुचि अणगार। उन प्राणियों के प्रति अनुकंपा भाव की बदौलत कड़वे तुंबे को वे स्वयं ग्रहण कर लेते हैं। 'मेरा जीवन चला जाएगा

इसकी चिंता नहीं। मेरा शरीर एक दिन जाने ही वाला है और मेरा शरीर कृष भी हो चुका है। यह अवार-नवार हो नष्ट हो जाएगा किंतु ये बेचारी चींटियां आर्त-ध्यान और मूर्च्छित होकर इस जीवन लीला को समाप्त करेंगी। इनको कितनी पीड़ा होगी, इनको कितनी वेदना होगी, कितने कर्मों का ये बंध करके जन्म-मरण के चक्रव्यूह में चलती रहेंगी।' उनके प्रति यह करुणा का भाव था। श्री कृष्ण वासुदेव के लिए बताया गया है कि वे किसी के गुण को ही देखते थे, अवगुण को नहीं। किसी के भी गुण को देखना, दुर्गुण को नहीं, बहुत बड़ी बात है। हमें कहां-कहां गुण दिखते हैं और कहां-कहां दुर्गुण नजर आते हैं? कितना भी गुणी व्यक्ति होगा, हम उसमें कोई न कोई दुर्गुण ढूंढ़ निकालने में सक्षम हैं या नहीं हैं? हम किसी में भी दोष निकालने में समर्थ हैं। दोष निकालने में हमारी मति, हमारी बुद्धि इतनी प्रखर है कि वह किसी में भी दोष निकाल दे।

बताया गया है कि लोग तीर्थंकर भगवंतों में भी दोष निकाल देते हैं। उनकी बुद्धि की बलिहारी है कि वे कहीं भी दोष को ढूंढ़ सकते हैं किंतु श्री कृष्ण वासुदेव के लिए ऐसा बताया जाता है कि वे किसी में दोष नहीं, गुण ही देखा करते थे। इसकी चर्चा एक बार जब देवलोक में हुई तो एक देव ने सोचा कि मुझे पहले परीक्षा करनी चाहिए कि बात में सत्यता कितनी है? ऐसा बहुत कम संभव है कि कोई व्यक्ति किसी के दोष को न देखे। बल्कि कहीं न कहीं गुण को ही ढूंढ़ ले। देव ने एक सड़े कान वाली कुतिया का विकृत रूप बनाया, जिसमें से पीब निकल रही है। उसके शरीर से भयंकर दुर्गंध निकल रही है और उधर से श्री कृष्ण वासुदेव की सवारी निकल रही थी। अन्य लोगों ने नाक के सामने वस्त्र लगा लिया। लोगों ने श्री कृष्ण को भी सुझाव दिया, परामर्श दिया कि बहुत दुर्गंध है, नाक के सामने वस्त्र रख लीजिए। वे उस कुतिया के नजदीक पहुंचे, जो देव की माया की हुई थी। लोग कह रहे हैं कि कैसी दुर्गंध है, कैसे कान सड़ा हुआ है, कैसा वीभत्स रूप है? कृष्ण वासुदेव उस कुतिया के खुले हुए मुंह के दांतों को देखकर कहते हैं कि देखो! इसके दांत कितने सुंदर हैं। एकदम पंक्ति में इसके दांत हैं। मोती की तरह इसके दांत चमक रहे हैं। कइयों के दांत टेढ़े-मेढ़े, ऊंचे-नीचे होते हैं किंतु इसकी दंत पंक्ति बड़ी सुंदर है और कैसे मोती की तरह चमक रहे हैं।

देवता ने विचार कर लिया, समझ लिया कि ये किसी में भी दुर्गुण नहीं देखते हैं। सद्गुण ही देखते हैं। इतने वीभत्स रूप में भी जिन्होंने दुर्गुण नहीं

देखा, वीभत्स रूप को नहीं देखा। देखा तो दांतों की पंक्ति को। हम अपने आप में विचार करेंगे, तुलना करेंगे कि हम कहां खड़े मिलते हैं? हम कहां नजर आते हैं? हमारी दृष्टि दोषों पर जाती है या गुणों पर जाती है?

ध्यान रखिए, हम दोषों को देखने वाले बनेंगे तो धीरे-धीरे हमारे भीतर दोष बढ़ते जाएंगे। हम दोषों के पिटारे बन जाएंगे जबकि हमारी दृष्टि गुणों को देखने वाली बनेगी तो हमारा जीवन गुणमय बन जाएगा। कोयले का व्यापारी दिन भर में कई बार कोयला लेता है, बेचता है तो उसके हाथ काले मिलेंगे। एक जौहरी के हाथ में रत्न मिलेंगे और कोयले के व्यापारी के हाथ में कोयले मिलेंगे। वैसे ही हम जैसे ग्राहक बनेंगे, वैसी चीजें हमारे पास मिलेंगी। हमारे पास क्या है, यह हमें अपने आप में अनुभव करने की आवश्यकता है। जब शिशुपाल और श्री कृष्ण के बीच युद्ध होने की बात होती है, तब शिशुपाल विपरीत शब्दों का प्रयोग करता है, अधम शब्दों का प्रयोग करता है, जबकि कृष्ण वासुदेव, सधे हुए शब्दों से बात करते हैं। सधे हुए शब्द अपने मुंह से निकालते हैं।

एक राजा की सवारी जा रही थी। एक सूरदास वहां बैठा हुआ था। आगे चलने वाली पुलिस ने, आगे चलने वाले कर्मचारी ने उसको हटाने के लिए कहा, 'ऐ अंधे! रास्ता छोड़।' वह बैठा रहा। दूसरा व्यक्ति आता है और कहता है, 'प्रज्ञा चक्षु जी, रास्ता छोड़िए'। तीसरा व्यक्ति कहता है, 'सूरदास जी, आपको क्या तकलीफ है?' तीनों के शब्द व्यक्तियों के भीतर की पहचान कराने वाले हैं। एक कहता है 'ऐ अंधे!' हकीकत में झूठ नहीं है, किंतु किसी को भी अंधा कहना उसके दिल को चोट पहुंचाने वाला होता है। इसलिए नीति में कहा गया है कि 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्', अर्थात् सत्य बोलना चाहिए किंतु सत्य भी मधुर और प्रिय होना चाहिए। जो सत्य अविवेक से बोला जाएगा, उसमें कहीं न कहीं हानि की बात रहेगी। संस्कारों की बात है। जिसने 'ऐ अंधे!' कहा, उसके संस्कार कैसे होंगे, यह हम समझ सकते हैं।

कहा जाता है कि जिसकी बुद्धि ग्रसित होती है, वह ग्रामीण होता है। जिसकी बुद्धि विकसित नहीं होती है, उसको ग्रामीण कहा जाता है। आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. छोटे गांव के थे। आचार्य देव छोटे गांव के जरूर थे किंतु उनमें तुच्छता नहीं थी। आचार्य देव कर्म से विराट, भाषा से भी विराट और मन से भी विराट थे। मन, वचन, काया तीनों की विराटता

होती है तो काम आती है। मन यदि क्षुद्र होता है, तो वचन में भी क्षुद्रता आ जाती है और मन यदि क्षुद्र होगा तो व्यक्ति के जीवन में संकीर्णता होगी। उसके कार्यों में भी तुच्छता झलकेगी। भले ही आदमी के पास पैसे कितने ही हो जाएं, धन-दौलत कितनी भी हो जाए।

एक सेठ के पास प्रचुर मात्रा में अन्न है। उसने भयंकर दुष्काल के समय विचार किया कि यह अन्न सबके काम आये। उसने बिरादरी में पंचों के जाजम पर निवेदन किया कि मैं चाहता हूं कि जब तक यह दुष्काल चले, सारी बिरादरी मेरे यहां भोजन ग्रहण करे। कठिनाई का समय सभी जान रहे थे कि हम लंबे समय तक चलने वाले नहीं हैं, अन्न खरीदने से मिलता नहीं है। पंचों ने सेठ के निवेदन को स्वीकार कर लिया और वे सभी निरंतर सेठ के यहां भोजन ग्रहण करने लगे। सेठ बड़ी आत्मीयता से भोजन कराते हैं। बड़े आदर और सत्कार के साथ भोजन कराते हैं। कहीं-कहीं होता है, एक दिन, दो दिन, तीन दिन मेहमानगिरी हो जाती है। लंबे समय तक यदि मेहमान भी घर में टिक जाए तो कंटाला आने लग जाए। फिर उनके साथ मेहमान जैसा व्यवहार नहीं हो पाता।

लंबे समय तक सेठ ने सबको बड़े आदर से, सम्मान से भोजन कराया। जब सुकाल आ गया तो पंचों ने सेठ से कहा कि 'सेठ साहब! आपका ऋण ऐसा है जिससे हम उऋण नहीं हो सकते। भयंकर समय में, जीवन-मरण का संकट आने के समय में जो रक्षा करता है, उस उपकारी के उपकार से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। अब सुकाल का समय आ गया है, इसलिए हम चाहते हैं कि अब हम अपने घरों में भोजन करें।' सेठ ने कहा कि 'कौन किसके यहां रहता है और कौन मेहमान कितने दिन के होते हैं? यह तो मैं नहीं कह सकता हूं कि जिंदगी भर मेरे यहां ही भोजन कीजिए। नीतिगत बात है और जो सही बात है, उसको मैं ठुकरा भी नहीं सकता किंतु मेरा एक निवेदन अवश्य है कि एक लास्ट दिन, एक अंतिम दिन मुझे और मौका दिया जाए ताकि एक दिन और मैं अच्छे से सबको भोजन करा दूं।'

पंचों ने सेठ की बात को स्वीकार कर लिया और सेठ ने भी बड़े सम्मान से, बड़े मान से सबको भोजन दिया। सेठ स्वयं परोसगारी में हैं। उनके कंवर साहब भी परोसगारी में है, किंतु दोनों में कुछ अंतर है। परोसगारी करते समय कंवर साहब किसी को परोसना भूल गए और आगे निकल गये तो उस भोजन करने वाले भाई ने, वहां जो बैठा हुआ था, उसकी धोती का पल्ला

पकड़ा और कहा, 'कंवर साहब! मेरे इधर भी परोसते हुए पधारो।' धोती का पल्ला पकड़ना था कि कंवर साहब के मुंह से निकल गया कि 'इतने-इतने महीनों से खिला रहे हैं, अब भी धोती का पल्ला पकड़ना नहीं छोड़ा।'

क्या बात निकली? प्रकाश चंद जी क्या करना? चुपचाप भोजन कर लेंगे या क्या करेंगे? आप कह रहे हो कि चुपचाप भोजन कर लेंगे या जो कुछ भी कह रहे हो। कहने में हम बहुत अच्छी बात कह सकते हैं किंतु दिल पर चोट नहीं पड़े, यह बहुत कठिन है। लोग खड़े हो गए। सारी बिरादरी खड़ी हो गई। सभी कहने लगे कि 'हम कोई भिखारी नहीं हैं। हमने चलाकर नहीं कहा कि आप हमको भोजन दीजिए। ये तो सेठ साहब की मनुहार थी, उनकी भावना थी, इसलिए हमने स्वीकार कर लिया। हम पीड़ित हो सकते हैं, भूखे रह सकते हैं किंतु ऐसा अनादर सहन नहीं कर सकते।' अब भले ही सेठ साहब क्षमा-याचना करें और कंवर साहब क्षमा मांगें किंतु अब क्षमा-याचना से वह पहले वाली बात नहीं रह जाती है। मन में किरकिरी पैदा हो गई। क्षमा-याचना के बाद लोगों ने भोजन किया जरूर किंतु मन में वह मजा नहीं रहा। उसमें किरकिर आ गई। क्यों हुआ ऐसा? ऐसा क्यों हुआ? वर्तमान युग के लिए बताया गया है कि ह्रास का युग है। निरंतर गुणों का ह्रास हो रहा है। हम यदि देखें तो पहले से वर्तमान में तुलना करने पर यह ज्ञात हो सकता है कि पहले जो शारीरिक बल था, वह कम पड़ गया है। पहले व्यक्ति में जितना धैर्य था, वह काफी कम पड़ गया है। जितनी सहनशीलता थी, वह आज नजर नहीं आती है। छोटे-छोटे बच्चों में भी झट से नाराजगी हो जाती है।

एक घटना मैंने सुनी कि प्राइमरी में पढ़ने वाला बच्चा, छोटी कक्षा में पढ़ने वाला बच्चा स्कूल की ड्रेस सजा रहा है। वह तैयारी कर रहा है। जूते में रहे हुए धागे को वह बांध रहा है। वह उल्टा-पुल्टा हो गया। मां ने, मम्मी ने समझाया कि बेटा! ऐसे नहीं, ऐसे बांधते हैं। उस समय उसी के स्कूल का एक दूसरा बालक खड़ा है। वह बच्चा कहता है कि मम्मी मेरे मित्र के सामने तुमने मेरी इन्सल्ट कर दी। क्या बोल रहा है? 'मेरे मित्र के सामने तुमने मेरी इन्सल्ट कर दी।' 7-8 वर्ष का बच्चा है और वह क्या समझने लगा है? वह क्या सोचने लगा है? ये युग की बात हो सकती है। कुछ संस्कारों की बात हो सकती है। निश्चित रूप से ये संस्कारों का ह्रास दुःखदायी होता है। किंतु जहां देखो ह्रास चारों ओर नजर आ रहा है। उसी का परिणाम है कि सेठ के कंवर

साहब के मुंह से निकल गया कि 'इतने दिन हो गए खिलाते हुए, इतने महीने हो गए खिलाते हुए और अभी तक धोती का पल्ला पकड़ना नहीं छोड़ा।' बंधुओ, ये एक छोटी सी बात कितना बखेड़ा खड़ा कर सकती है?

आचार्य पूज्य गुरुदेव 'साधु' थे। साधना के क्षेत्र में जीये थे। साधु के लिए पांच समिति, तीन गुप्ति प्रमुख है। जिन्होंने भी आचार्य देव का सानिध्य प्राप्त किया है, वे बहुत अच्छी तरह से अनुभव कर सकते हैं कि तू-तकार की भाषा उनके मुंह से लगभग नहीं निकलती थी। लगभग तो कह रहा हूं किंतु यह समझ लीजिए कि कभी संतों को भी तू-तकार नहीं बोलते थे। एक छोटे से बच्चे को भी 'आप' कहकर पुकारा करते थे। उसको भी बड़े सम्मान से पुकारा करते थे। आदमी की लैंग्वेज, आदमी की बोली उसके जीवन का दर्पण है। बोली से मालूम पड़ जाता है कि व्यक्ति कितना संस्कारी है। कितनी उत्तमता लिए हुए है। बोली व्यक्ति की पहचान करा देती है कि ये कैसा है। मैंने सुना है कि जोधपुर की भाषा भी बहुत ऊंची भाषा है, सम्मान की भाषा है। उदयपुर की भाषा भी ऊंची मानी जाती है। मानी जाती थी, यों कह दो। क्यों ऐसा कहना? फर्क पड़ा या नहीं? जब तक उदयपुर वाले उदयपुर में थे, उनकी भाषा सधी हुई थी। जब बाहर के लोग वहां के रहवासी बन गए तो वहां की भाषा में भी फर्क आ गया। परिवर्तन आया या नहीं आया? नहीं आया क्या? परिवर्तन आ गया और जोधपुर की भाषा में भी परिवर्तन आ गया। बड़े शहरों में बाहर के लोग आने लगे तो वहां की मूल संस्कृति धीरे-धीरे वहां से च्युत होने लगी। पहले मैंने सुना था कि यहां की भाषा भी सामने वाले को बहुत सम्मान देने वाली है। आज भी बोलने वाले 'सा' पीछे लगा लेते हैं। 'सा' लगाते हैं ना? बड़ा महत्त्वपूर्ण है। भाषा से व्यक्ति की पहचान होती है कि वह व्यक्ति कितनी ऊंचाई लिए हुए होता है? वह कितनी ऊंचाई लिए हुए है?

आचार्य देव भले ही छोटे गांव में जन्मे थे, छोटे गांव में ही संस्कार मिले थे किंतु ऊंचे व्यक्ति किसी भी छोटे गांव में जन्मे, उनकी ऊंचाई मापी नहीं जा सकती। भारत के प्रधानमंत्री रहे लाल बहादुर शास्त्री के विषय में जानने वाले, सुनने वाले मानते हैं कि वे अपनी सानी के प्रधानमंत्री थे। उनकी सानी के प्रधानमंत्री वे ही थे। उनके बचपन की घटना है कि एक बार उन्होंने आम्र वृक्ष पर पत्थर फेंका, आम नीचे गिरा इतने में माली दौड़कर आ गया। दूसरे बच्चे दौड़ कर भाग गए। लाल बहादुर शास्त्री खड़े रहे। वे हटे

नहीं। जब हमने गलती की है तो भागना क्यों? डरकर भागकर गलती को छुपाना क्यों? माली आया, कान पकड़ा। उन्होंने कहा कि मुझसे गलती हो गई। ये बहुत ऊंची बात है कि गलती करने के बाद भय से भागे नहीं और गलती को स्वीकार करने के लिए तैयार रहे। ऐसी उनमें सामर्थ्य थी, क्षमता थी, जिसकी बदौलत वे भारत के प्रधानमंत्री की पोस्ट तक पहुंच गए।

आचार्य देव के विषय में हमने बहुत बार सुना है। पिता के देहवसान के बाद जब वे व्यापारिक लाइन में गए तो अपने चचेरे भाई कन्हैयालाल जी के साथ शेयर का, भागीदारी का व्यापार चालू किया। उनके मन में एक विकल्प पैदा हुआ, उनके मन में एक विचार पैदा हुआ। वे कन्हैयालाल जी से कहते हैं कि 'भाई कन्हैयालाल, देखो, जब मुझे गुस्सा आ जाए तो तुम चुप रहना और तुम्हें गुस्सा आ जाए तो मैं चुप रहूंगा। यदि ऐसा रखोगे तो हमारा व्यापार अच्छा चलेगा। नहीं तो आपस में कभी खींचतान हो जाए तो पता नहीं पड़ेगा।' यह एक छोटा सा सिद्धांत था। गुजरात के एक अखबार वाले ने उसे हाईलाइट किया। उसने समाचार का शीर्षक दिया– 'आचार्य नानालालजीनुं मजेदार सिद्धांत'।

साथियो! एक छोटी सी बात, उनका एक छोटा सा यह विचार यदि व्यक्ति परिवार में स्वीकार कर ले तो बताइए कि परिवार में टूटन होगी या परिवार जुड़ा रहेगा? समाज में भी यदि इस एक बिंदु, एक सूत्र को हम स्वीकार कर लें तो समाज में नई क्रांति आ जाये। हम हजार शिक्षाएं स्वीकार नहीं कर सकते, हजार शिक्षाएं याद नहीं रख सकते तो कोई बात नहीं है लेकिन क्या एक शिक्षा भी याद नहीं रख सकते? एक शिक्षा यदि हमने याद रख ली तो चाहे परिवार हो, चाहे समाज हो, उसमें जल्दी से खिंचाव पैदा नहीं होगा। जल्दी से तनाव पैदा नहीं होगा। अन्यथा यदि घर-घर में देखें तो दंगल मिलेगा। समाज के क्षेत्र में देखें तो समाज नाम की कोई चीज हमें नजर नहीं आएगी। समझ होती है तो समाज होता है। हमारी समझ ही नहीं होगी तो समाज होगा कहां से? समझ व्यक्ति में होती है तो वह बिना विचारे बोलता नहीं है, बिना विचारे कुछ करता नहीं है। करने के पहले, बोलने के पहले वह सोचेगा कि इसका क्या दुष्परिणाम हो सकता है? इससे क्या हानि हो सकती है? जिसमें समझ होगी, वह ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा जिससे परिवार में हानि हो, समाज में हानि हो। आज उस प्रकार से समाज नजर नहीं आता है। हम किसी ग्रुप में बंध गए, वही समाज नहीं है। मैंने बात

कही कि समझदारी से समाज होता है। यदि हमारी समझदारी उतनी काम नहीं कर पा रही है तो आज समाज नेतृत्व के लिए तरसता है। कोई ढंग का लीडर नहीं मिलता है। कोई ढंग का नेतृत्व देने वाला समर्थ पुरुष प्राप्त नहीं होता है। ऐसा क्यों हो गया? ये कैसे हो गया? क्योंकि हमारे भीतर अहंकार पैदा हुआ। हमारे भीतर नासमझी पैदा हुई। हमने व्यक्ति के मूल्य को आंकना छोड़ा। हमने किसी को आदर देने का भाव हटाया। कई लोग कहते हैं, 'कौन होता है वह व्यक्ति? वह होगा राजा, अपने घर का होगा। मैं उसकी बात क्यों मानूं?'

घर की हालत भी यही है। आदमी घर में भी किसी की बात सुनने को तैयार नहीं है। एक जमाना था कि गांव का भी कोई आदमी कह देता तो उसको तवज्जो दी जाती थी, उसको आदर मिलता था पर आज घर का मुखिया भी कह दे तो उसको तिरस्कृत किया जाएगा। लोग उसका अनादर कर देंगे। उसको सम्मान नहीं मिलेगा। ये सारे ह्रास के कारण हैं। इसको कैसे बचाया जा सकता है? संस्कारों का दीप प्रज्वलित रहे और जैसे ही थोड़े से संस्कार हटते हुए नजर आएं, वहां पर झट से संस्कारी भाव और समझ पैदा की जाए। यदि इस प्रकार का लक्ष्य रहेगा तो हम क्षरण होते हुए इन गुणों को रोकने में समर्थ हो सकते हैं। भाषा इतनी मधुर होनी चाहिए जिससे किसी के दिल में कटुता पैदा नहीं हो। किसी का दिल पीड़ित नहीं हो। आगमों में एक छोटा शब्द 'स्वर्णिम अवसर' कितना मधुर है? कितना प्रिय संबोधन है? भगवान महावीर कहते हैं, 'अहासुहं देवाणुप्पिया'। 'हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो।' कितना मधुर संबोधन। मधुर संबोधन व्यक्ति के दिल को उत्साहित करने वाला होता है। कटु शब्द चाहे सत्य ही क्यों न हो, वह भी चुभता है तो व्यक्ति के भीतर दर्द पैदा करने वाला हो जाता है।

मैं बता रहा था कि अधम, उत्तम और मध्यम; तीन प्रकार के प्राणी हैं। उपकारी के उपकार को बनाए रखना, उपकारी के उपकार को स्वीकार करना मध्यम है और अपकारी का भी उपकार करना उत्तम पुरुष का परिणाम है। मेरे से किसी ने बुरा बरताव किया और मैं यदि उसके साथ बुरा बरताव करूं तो मेरी क्या विशेषता है? मेरे साथ में चाहे करने वाले ने कितना भी बुरा बरताव किया हो, कितना भी अधम बरताव किया हो किंतु मैं अपने बरताव को अधम नहीं होने दूंगा।

एक घटना आप लोगों ने सुनी होगी। एक प्रसंग है। एक दार्शनिक, एक विचारक नदी के किनारे गया। वहां पर उसने देखा कि एक बिच्छू पानी में तड़प रहा था। उसने उसको निकाला, हाथ में लिया और बाहर रखने की कोशिश की किंतु बिच्छू ने उसके हाथ पर डंक मार दिया और फिर पानी में गिर गया। उस व्यक्ति ने उसे पानी से फिर निकाला, फिर उसने डंक मारा और फिर नीचे गिर गया। फिर पानी में से उसको निकाला, फिर उसने डंक मारा और वापस नीचे पानी में गिर गया। एक दूसरा व्यक्ति वहीं पर खड़ा था। उसने कहा कि साहब! इसकी आदत ही ऐसी है। आप इसका भला कर रहे हो किंतु ये आपको काट रहा है। फिर आप क्यों ऐसा कर रहे हो? इसकी आदत ही ऐसी है। वह सज्जन पुरुष कहने लगा कि यदि इसकी आदत किसी को काटने की है, किसी को डंक लगाने की है और ये अपनी आदत से बाज नहीं आता है तो न आए। ये तो जानवर है। मैं तो मनुष्य हूं। मेरे में समझ है। मैं समझदार व्यक्ति क्या अपने उपकार भाव को छोड़ दूं? मेरे सामने यह जीव छटपटाता रहे और मैं इसको नहीं बचाऊं, यह कैसे हो सकता है?

यह समझदारी की बात है। यह उत्तम पुरुष की बात है। मेरे खयाल से यदि हमारे साथ ऐसा हो तो हमारे बीच मतभेद हो जाएगा। लोग कहेंगे कि ऐसी उत्तमता रहने दो। जो ऐसी उत्कृष्टता बतावे, उसे कहेंगे कि ऐसी उत्कृष्टता नहीं चलती है। हो सकता है कि आज के जमाने में लोग कहें कि ऐसी उत्कृष्टता नहीं चलती है किंतु ऐसा भी होता है।

हमने सेठ धन्ना जी की कहानी सुनी होगी। एक जगह उनको भूख लगी हुई है। वे एक किसान के खेत में बैठे हैं और किसान के घर से भाता आया। किसान भोजन करने के लिए आया और एक मेहमान को देखा, अतिथि को देखा तो कहा कि भाई, तुम भी हाथ वगैरह धो लो फिर साथ में भोजन कर लेते हैं। सेठ धन्ना जी ने झूठी मनुहार नहीं कराई। वे कहते हैं कि 'मुझे भूख तो लगी हुई है, भोजन करने की इच्छा भी है किंतु मेरा एक नियम है कि बिना काम किए मैं किसी का भोजन ग्रहण नहीं करता। मुझे कोई छोटा सा भी काम आप बात दो। मैं पहले थोड़ा काम करूंगा, उसके बाद भोजन करूंगा।' उसने कहा कि भाई काम तो क्या है? ये मेरा खेत है और हल खड़ा है। आप हल चला लो। हल लेकर घूम आओ। हल लेकर वे घूमकर आ गये और क्या हो गया? क्या हो गया? सोने की अशर्फियां निकल आईं। वे हल

के साथ चलती रहीं, चलती रहीं। सारे खेत में वह अशर्फियां फैल गईं। जहां-जहां हल चलाया, वहां-वहां सोने की अशर्फियां फैल गईं और धन्ना जी निष्पृह भाव से हल चलाते रहे। एक बार भी उनके मन में लार नहीं टपकी। एक बार भी मन में लालच नहीं आया। हल चलाकर आए और कहा कि भूख लगी है, भोजन करते हैं। किसान ने कहा कि पहले अशर्फियां तो उठा लो, बाद में भोजन करना। धन्ना जी कहने लगे कि अरे! बाकी बातें मत करो, मुझे कड़ाके की भूख लगी है, भोजन करते हैं।

थोड़ी देर पहले किसान मनुहार कर रहा था कि पहले भोजन कर लो और अब कहता है कि पहले अशर्फियां उठा लो। लेकिन धन्ना जी ने कहा कि वो सब बाद की बातें हैं। पहले भोजन कर लें, भूख लगी है। दोनों ने भोजन कर लिया। भोजन करने के बाद जब धन्ना जी जाने लगे तो किसान ने हाथ पकड़ लिया। कहा कि 'कहां जा रहे हो? जा कहां रहे हो?' धन्ना जी ने कहा, 'भाई, और क्या करूं? मेरा तो कोई ठिकाना है नहीं। कहां जाना है, कहीं कोई पता नहीं है।'

ठिकाना पूछते हो क्या, हमारा क्या ठिकाना है,
मिले जो झोंपड़ी आगे, निशा उसमें बिताना है...ठिकाना पूछते...

उसने कहा कि, भाई मेरा कोई ठिकाना नहीं है। ऐसे ही आगे बढ़ रहा था तो थक गया, थकान हो गई, भूख लगी तो यहां बैठ गया। विश्राम कर लिया। अब आगे बढ़ेंगे। किसान ने कहा कि 'आप ऐसे आगे नहीं बढ़ सकते। पहले ये अपना धन लेकर जाओ।' यह कौन बोल रहा है? किसान बोल रहा है। क्या बोल रहा है? यदि आपके खेत में ऐसा ही कुछ हो जाए तो? क्या करोगे तब? धन्ना जी कहते हैं, 'भाई, मेरा कौनसा धन? मैंने तो रोटी खाने के बदले में तुम्हारे खेत में काम किया है। तुम्हारा काम था, मैंने तुम्हारा काम किया। किसी धन से मेरा क्या लेना-देना?' किसान कहता है कि 'तुम्हारा नहीं है तो मेरा धन कहां से होगा? यदि मेरे पुण्य में होता, मेरे भाग्य में धन होता तो बाप-दादा के समय से पड़ी इस जमीन को मैं जोत रहा हूं तो ये धन आज तक क्यों नहीं निकला? यह तुम्हारा पुण्य है, यह तुम्हारा भाग्य है, इसलिए तुम इसको स्वीकार करो।' धन्ना जी कहते हैं कि मैं इसको स्वीकार नहीं करता हूं। किसान कहता है कि मैं इसको स्वीकार नहीं कर सकता, मैं इसको नहीं रख सकता हूं। मेरा कोई हक नहीं है। मेरे खेत से निकला तो इसका क्या मतलब? मेरे खेत से निकल जाने मात्र से ये संपत्ति मेरी नहीं हो जाएगी।

दोनों नहीं माने तो चले गए राजा के पास में। आज तो लोग पहले कहते हैं कि 50-50 कर लो, नहीं तो पुलिस को रिपोर्ट करता हूं। और वहां पर वे कहते हैं कि मैं नहीं लेता तो मैं नहीं लेता। दोनों सम्राट के पास गए और अपनी-अपनी बात रखी। धन्ना कहते हैं कि मेरा कोई हक ही नहीं होता है, मैं इसको कैसे स्वीकार करूं? किसान कहता है कि मैं इसको क्यों रखूं? मेरा इस पर कोई अधिकार नहीं है। दोनों ने राजा को कहा कि आप इसको स्वीकार कर लीजिए। राजा ने कहा कि 'मेरा अधिकार क्यों? मेरा तो कोई अधिकार ही नहीं है तो मैं कैसे स्वीकार करूं?'

आप लोग हंस रहे हैं। इसमें हंसने की कोई बात नहीं है। बात समझने की है। देखो कि वहां से यहां तक में कितना ह्रास हुआ है? वहां से यहां तक में ह्रास कितना हो गया है? आज के कोई धन्ना जी होते तो वे कहते कि भाई, पहले ही बंटवारा कर लो। खाना तो बाद में खा लेंगे। कोई बात नहीं, खाना नहीं खाएंगे तो भी चलेगा। लेकिन तुम अकेले इस धन को नहीं पचा सकते हो। तुम अकेले हजम नहीं कर सकोगे। धन्ना जी लेने को तैयार नहीं, किसान लेने को तैयार नहीं और सम्राट भी कहता है कि मैं नहीं रखता हूं। कहानी में बताया गया है कि सम्राट ने कहा कि ऐसा करो कि जिस जगह यह धन निकला है, उस खेत में, उसी खेत पर धन्य नगर, एक कुनबा बसा दो। वहां पर एक नया नगर बसा दिया गया।

उस समय की बात समझ लो कि उस समय किस प्रकार की विचारधारा थी? ये उत्तम विचारधारा है। आंखों में पैसों की चमक पैदा नहीं होना और आज क्या होता है? एक दिन पहले बताया था कि सौ ग्राम का सोने का एक पत्थर, सौ ग्राम सोने की शिला कहीं दिख जाए, यहां बाहर निकलते हुए नजर आ जाए तो इधर-उधर नजर दौड़ाएंगे कि कोई देख तो नहीं रहा है! क्या? कोई दिख तो नहीं रहा है! और झट से उठाकर जेब में। कौन-कौन उठाएगा और कौन-कौन नहीं उठाएगा? कौन ले उसकी परीक्षा? हमारा तर्क होगा कि म.सा. मैं नहीं उठाऊंगा तो मेरा कोई भाई उठाएगा। कोई देखेगा तो छोड़ेगा थोड़ी ना। जब कोई दूसरा ही उठाएगा तो मैं उसे क्यों नहीं उठा लूं? उठा लेंगे या नहीं उठा लेंगे? दिल्ली वाले क्या बोलते हैं? नहीं उठाएंगे? वे तो दिल्ली में रहते हैं, राजधानी में हैं तो जल्दी से पकड़ में आ जाएंगे। कोई चोरी की चीज पड़ी हुई है और उठा ली तो झट से पुलिस पकड़ लेगी। राजधानी वाले समझदार लोग हैं। उनको पता है कि पुलिस पकड़ लेगी। सौ

ग्राम का वह सोने का टुकड़ा चोरी का माल है। सौ ग्राम का यह बिस्किट चोरी का माल है तो यह सोचकर नहीं उठाएंगे। चोरी के माल के भय से कोई नहीं ले तो बात अलग है। बाकी तो मुंह में पानी आ ही जाएगा। खाने के नाम से जैसे मुंह में पानी आ जाता है, वैसे ही धन के नाम से भी मुंह में पानी आ जाएगा। चाहे वह धन किसी भी प्रकार से आवे। नीति से आवे या अनीति से आवे। छल से आवे, कपट से आवे, झूठ से आवे। धर्म छूटकर आवे या धर्म से आवे, किसी भी प्रकार से धन आवे तो क्या चाहिए? कुल मिलाकर धन आना चाहिए।

एक जमाना था, जब कहा जाता था कि 'तन जाए तो जाए, मेरा सत्य धर्म नहीं जाए'। और आज? धर्म जाए तो जाए किंतु मेरा धन कहीं ना जाए। धन मेरा रह जाना चाहिए। चमड़ी जाए तो जाए किंतु दमड़ी नहीं जानी चाहिए। दमड़ी को बचाना है। मेरे ख्याल से वह चीज नहीं है। बंदूक की नोंक आ जाए सीने पर तो दमड़ी बचाओगे या चमड़ी बचाओगे? यह भी अपनी-अपनी समझ की बात है किंतु यह अवश्य है कि हमारे विचारों में ह्रास इसलिए आ गया कि हमने धन को महत्त्व दे दिया। सद्गुण हमारी नजर से ओझल हो गए। उस ओर हमारा ध्यान नहीं रहा। सद्गुण की तरफ यदि हमारा ध्यान होता, ईमानदारी की तरफ यदि हमारा ध्यान होता, सत्यनिष्ठा की तरफ यदि हमारा ध्यान होता तो सौ ग्राम का सोने का पत्थर क्या, एक किलो सोने का पत्थर भी सामने पड़ा मिल जाता तो भी मेरे लिए यही है कि 'मैं समझूं धन को धूल, पाप का मूल।' ये धन धूल है। इसका कोई मतलब नहीं है। उसके लिए एक किलो सोना भी धूल के समान है। एक बार भी उसके मन में विचार नहीं आएगा कि मैं सोने का एक किलो का पत्थर उठा लूं। वह कहेगा कि मेरा नहीं है तो मैं क्यों उठाऊं? यदि उठाएगा भी तो वह कहीं जाकर पुलिस के पास जमा कराएगा। वह उस पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश नहीं करेगा। यह उत्तम पुरुष की पहचान है। मध्यम पुरुष, उस सोने के पत्थर को ठिकाने लगा देगा और अधम पुरुष तो ऐसा समझ लो कि खाने के बाद में डकार भी नहीं लेगा। वापस डकार भी नहीं आएगी। वापस मुंह से थोड़ी भी गंध नहीं निकलेगी, थोड़ी भी दुर्गंध नहीं निकलेगी, ऐसे वह डकार खा जायेगा।

साथियो! हम धर्म स्थान में बैठे हैं। यह धर्म स्थान है। यह धर्म क्षेत्र है। यह कर्म क्षेत्र भी है। हमारा कर्म धर्म से जुड़ा हुआ होना चाहिए। हम

अच्छाई की ओर आगे बढ़ेंगे। हम कभी भी गलत रास्ते की ओर जाने के लिए तैयार नहीं होंगे। हमारी पहचान धर्म के रूप में और उत्तम पुरुष के रूप में होनी चाहिए। हमारी पहचान अधम पुरुष के रूप में नहीं होनी चाहिए। हमारी आंखों में धर्म बसा हुआ होना चाहिए। हमारी आंखों में गुण बसा होना चाहिए ताकि हम किसी को भी देखें, भीतर देखें तो सद्गुण को देखें। किसी का दोष हमें नहीं दिखे। किसी का दुर्गुण हमें नहीं दिखे। जैसा श्री कृष्ण वासुदेव के घटनाक्रम से बताया गया, वैसा ही हम कहीं पर भी, किसी में भी अच्छाई को ढूंढ़ने का प्रयत्न करेंगे तो हम अच्छाइयों से लबालब भर जाएंगे। हमारे भीतर अच्छाइयां लबालब होंगी। हमारे भीतर अच्छाई छलकेगी। बुराइयां हमारे से दूर हो जाएंगी। हम अपने आप में ऐसा लक्ष्य बनाएंगे और उस लक्ष्य की ओर आगे बढ़ेंगे तो धन्य बनेंगे।

मुमुक्षु आत्माएं यहां पर उपस्थित हो चुकी हैं। वे उत्तम मार्ग की ओर आगे बढ़ रही हैं, जो साधना का मार्ग है, जो सच्चाई का मार्ग है। जहां पर किसी प्रकार की चाह नहीं है। जहां पर न यश की कामना है, न ही और किसी प्रकार के नाम आदि की कामना है। अन्यत्र आदमी धन छोड़ देता है, वैभव छोड़ देता है किंतु कुछ यश को पाने के लिए बड़ा ही उत्साहित होता है। नाम की चाह में वह उत्साहित रहता है किंतु साधना का क्षेत्र ऐसा क्षेत्र है, जहां न यश की कामना रहती है, न ही नाम की चाह रहती है। वहां सभी अनामी हो जाते हैं। ये बहनें भी अनामी बनने के लिए आगे बढ़ रही हैं। हमें भी अनामी बनने की ओर अपने आपको गति देनी चाहिए। सिद्ध क्षेत्र में जाने के बाद वहां कौन-कौन सी आत्माएं किस नाम से हैं? वहां कोई नाम नहीं है। वहां सारी आत्माएं अनामी हो गईं। वैसे ही हम उस अनामी क्षेत्र में जाने को तैयार हो रहे हैं। ऐसा मुमुक्षु बहनों ने अपने भीतर गहरा विश्वास जमा लिया है कि मुझे न यश की कामना होगी, न ही किसी नाम की चाह होगी। कर्म मेरा धर्म होगा और मैं सत्कर्म करने की दिशा में अपने कदम आगे बढ़ाती रहूंगी। इस प्रकार उनका लक्ष्य होना चाहिए।

मौसम बदल गया है किंतु तपस्वियों के हौसले अभी भी बुलंद हैं। कई तपस्याएं अभी भी हो रही हैं, चल रही हैं। कौन कितना आगे बढ़ने को तैयार हो रहा है, यह समय के साथ पता चलेगा। आज श्रीमती टीना जी पारख[1]

1. श्री ऋषभ जी पारख की धर्मपत्नी (बालेसर–जोधपुर)

की भी तपस्या है। तपस्या महत्त्वपूर्ण नहीं है। हमारी सच्चाई की तपस्या होनी चाहिए। हमारे सद्गुणों की तपस्या होनी चाहिए। हमारे से कोई अविचारित शब्द नहीं निकले। हम जब भी बोलेंगे, हमारे मुंह से मोती बरसेंगे। कहते हैं ना कि आसोज के महीने का पानी, स्वाति नक्षत्र का पानी जब बरसता है तो सीप में उसका पानी जाने पर वह मोती बन जाता है। वैसे ही हम ऐसे बनें कि हम जब भी बोलें, जो भी बोलें, हमारे मुंह से मोती ही बरसेगा। हमारा मुंह कभी भी विष उगलने वाला नहीं है। हमारा मुंह कभी भी जहर उगलने वाला नहीं है। हमारा मुंह मोती ही उगलने वाला होगा। ऐसा दृढ़ संकल्प करेंगे तो सुनने का फल हमें मिलेगा। सुनने का लाभ हमें मिलेगा। जीवन में शांति मिलेगी। जीवन में समाधि मिलेगी और हम अपने जीवन को ऊंचाई तक बढ़ाने में सक्षम होंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

02 अक्टूबर, 2019

12

सिद्धि का द्वार साधुता

जय, जय, जय भगवान...

सिद्ध भगवान की स्तुति की गई। प्रत्येक आत्मा का स्वरूप सिद्ध जैसा है। 'तुझमें मुझमें भेद ना पाऊं, ऐसा हो संधान'। मेरी आत्मा और सिद्ध भगवान की आत्मा में कोई भेद नजर नहीं आवे, ऐसी शोध होनी चाहिए। ऐसी खोज होनी चाहिए। इस शोध के लिए जो साधक चल पड़ता है, वह साधना का पथ स्वीकार करता है। मैंने पहले भी कई बार कहा है कि साधुता सिद्धि का द्वार है। जब भी कोई सिद्ध बनेगा, साधुता के द्वार से ही प्रवेश पाएगा। दूसरा कोई रास्ता नहीं है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आचार्य उमास्वाति कहते हैं कि 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। यानी सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है। यदि सम्यक् चारित्र को ही मोक्ष का द्वार कहें तो भी माना जाएगा क्योंकि सम्यक् चारित्र बिना सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान के नहीं होता। सम्यक् चारित्र वही होगा, जिसमें दर्शन सम्यक् हो और ज्ञान भी सम्यक् हो तो ही चारित्र सम्यक् बन पाएगा।

इसलिए साधुता ही सिद्धि का द्वार है। इस साधुता में आज तीन भव्य आत्माएं– कुसुमकसा (छत्तीसगढ़) की छाया कोटड़िया, हावड़ा की लवली बोथरा और दांता के पास हथियाना की अक्षिता सांखला साधना के पथ पर अग्रसर होने के लिए तत्पर हैं।

आप तीनों बहनें तैयार हैं ना? पूरी तरह से तैयार हो ना, अच्छी तरह से तैयार हैं? उत्तर– पूर्णरूपेण तैयार हैं।

इनके परिवार के लोग यहां उपस्थित हैं। वे अपनी अनुमति हाथ खड़ा करके देंगे। ये दीक्षा जोधपुर में हो रही है। जोधपुर के सारे साधुमार्गी संघ,

उनके पदाधिकारी व सदस्य जो भी मौजूद हैं और अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के पदाधिकारी व सदस्य और इनसे जुड़ी हुई संस्थाएं और उन संस्थाओं से जुड़े हुए सारे लोग हाथ खड़ा करके अपना अनुमोदन देंगे। जितने भी दर्शनार्थी अनुमोदन के लिए उपस्थित हैं, वे भी हाथ खड़ा करके अनुमोदन का लाभ लें।

छाया कोटड़िया के विषय में आपने सुन ही रखा है। पहले यह बात सामने आई कि 11 फरवरी को दीक्षा स्वीकृत करने के लिए आ रहे हैं और यहां आने के बाद कहने लगे कि जैसा आप कहो। मैंने कहा कि तीन तारीख को दीक्षा हो ही रही है। पिताजी पहले तो बोले कि ठीक है लेकिन फिर कहे कि इतनी जल्दी कैसे होगा? परिवार वाले इतनी जल्दी कैसे आएंगे? माताजी ने कहा कि गुरुदेव तीन तारीख फरमा रहे हैं तो तीन तारीख को ही दीक्षा होगी। दीक्षा तो तीन को ही करानी है। मैंने छाया से पूछा कि तुम्हारी इच्छा क्या है? तो कहा कि मैं तो तैयार हूं।

दीक्षार्थी को ऐसा ही होना चाहिए। आधी रात को खड़ा करके पूछ लें कि दीक्षा के लिए तैयार हो तो कहना चाहिए कि हां, एकदम तैयार हूं। ऐसा नहीं कि अभी तो आधी रात है, नींद भी उड़ी नहीं है। ऐसा कोई विकल्प, ऐसी कोई भावना आनी ही नहीं चाहिए।

ठीक है, दीक्षा का पाठ चालू कर रहे हैं।

(तदन्तर तीनों दीक्षार्थियों को दीक्षाविधि करवाई गई)

दीक्षा का यह मेला है, बड़ा अलबेला है,
आज ये समझना कि, जीव तू अकेला है।

संसार में व्यक्ति जन्म लेता है तो अकेला ही आता है। 'आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।' अकेला आता है और जाते हुए भी अकेला ही जाता है। ये शाश्वत बात है। भले ही एक साथ में कितने ही लोग मर जाएं, एक्सीडेंट की वजह से, सुनामी की वजह से या अन्य किसी कारण से, किंतु जाने वाला, वह अपनी राह पर अकेला होता है। वह जहां जाकर जन्म लेगा, वह स्थान उसके लिए निर्धारित है। इसलिए ऐसे प्रसंगों से हमें यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि मैं किससे मोह करूं, किससे ममत्व करूं? किससे अटैचमेंट बढ़ाऊं? वह अटैचमेंट, वह ममत्व, वह जुड़ाव रोके रखेगा या आगे बढ़ने देगा, यह हमें सोचने की आवश्यकता है। सोचने का एक बिंदु हमारे सामने

उभरता है। निश्चित रूप से संसार का जुड़ाव हमें संसार में रोके रखता है। शरीर की ममता नए शरीर को पैदा कराने वाली होती है। इसलिए सारे ममत्व भावों का विसर्जन करेंगे। उसी विसर्जन का नाम संयम है। वह संयम पोशाक से भी ग्रहण किया जाता है, अर्थात् उसमें पोशाक भी पहनी जाती है और भरत चक्रवर्ती, मरुदेवी माता जैसे लोगों में वह संयम भीतर से प्रकट हो गया।

वह दिशा बड़ी महत्त्वपूर्ण है। पूर्ण शांति और समाधि की वहां पर उपलब्धि होती है। पर स्पष्ट है कि हमारा मोह और ममत्व अलग रहना चाहिए। वह हमारे साथ जुड़े नहीं। संबंध, बंधों तक मौजूद है। आत्मा पर उसका प्रभाव नहीं होने देना चाहिए। उस प्रकार की साधना हमें सिद्धि पथ पर अग्रसर करेगी। सम्यकत्व भाव की आराधना करते हुए हम वीतरागता की ओर अग्रसर हो पाएंगे। जिन भव्य आत्माओं ने इस संयम पथ को स्वीकार किया, उनके विषय में परिचय आप पा चुके। कब किसकी आत्मा अंगड़ाई ले लेती है, कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। कल तक हमें कौन कैसा नजर आ रहा था और आज उसके भीतर क्या जागरण हो जाता है? रोहिणेय चोर, प्रभव चोर, अंगुलिमाल, अर्जुन माली जैसे लोग, जिनके नाम से लोग प्रकंपित होते थे, जब उनके भीतर बोध जगा, उन्होंने जान लिया कि यथार्थ क्या है एकदम मुड़ गए, एकदम बदल गए।

जिसके लिए सोचा नहीं जा सकता है, जिनके लिए विचार नहीं किया जा सकता है कि ऐसे व्यक्ति भी कभी इतना मोड़ ले लेंगे, जिसको हम कहें कि 'यू-टर्न' हो जाता है। ये बोध, आत्म-बोध कब जग जाए, किस एज/उम्र में जग जाए कहा नहीं जा सकता। कभी बचपन में भी वह आत्म-बोध जग जाता है तो कभी यौवन में जंबू कुमार की तरह जग जाता है और कभी वार्धक्य, बुढ़ापे में भी आत्म-बोध जागृत हो सकता है। अगर जागृत नहीं हो रहा है तो हमें अपना अन्वेषण करना चाहिए कि मैं कितना भारी कर्मा जीव हूं कि इतने व्याख्यान सुनने, इतना स्वाध्याय करने, इतने दीक्षा प्रसंग देख लेने के बाद भी मन के किसी कोने में वैराग्य पैदा नहीं हो रहा है। कर्मों से बंधी हुई, जकड़ी हुई आत्मा, जैसे रस्सियों से कोई बंधा हुआ हो कि हिलना-डुलना भी कठिन हो जाए, उसी प्रकार से कर्मों से जकड़ी हुई आत्मा, श्री कृष्ण वासुदेव की आत्मा भी आंदोलित हो गई। अरिष्टनेमि भगवान के पास दीक्षित होने वाले मुनियों को देखकर एक बार तो उनके

भीतर तड़प पैदा हो गई। उन्होंने कहा कि भगवंत क्या कारण है कि छोटे-छोटे राजकुमार के भीतर संयम के भाव जग जाते हैं। मोह, ममता का त्याग करने के लिए उत्कंठित हो जाते हैं और आपके चरणों में दीक्षित हो जाते हैं। मैंने ऐसे कौन से कर्म किए हैं जिससे मेरे भीतर साधु बनने के भाव प्रबल नहीं हो पा रहे हैं?

हमें भी अवश्यमेव अपने भीतर झांकना चाहिए कि हे! चैतन्य देव, क्या तुम भी कभी करवट लोगे? क्या तुम्हारे भीतर भी कभी जागरण होगा? क्या इस संसार के आलित्य-पालित्य में ही झुलस करके इस जीवन को समाप्त कर दोगे या इससे ऊपर उठकर कुछ आगे भी बढ़ोगे। अपने लक्ष्य की तरफ गति भी करोगे? यह प्रसंग हमें अपने चैतन्य देव से, हमें अपनी आत्मा से पूछने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इन आत्माओं ने भी जब तक करवट नहीं ली तब तक इन पर भी छाया पड़ी हुई थी। किसकी छाया पड़ी हुई थी? भौतिकवाद की छाया, संसार की छाया पदार्थों की छाया, पुद्गलों की छाया। वह छाया व्यक्ति को जैसा नाच नचाती है, वह वैसा ही नाचता है। अर्जुन माली पर किसकी छाया पड़ी हुई थी? मुद्गल पाणी यक्ष की और वह जैसा नचा रहा था, वैसा अर्जुन माली नाच रहा था। हमारे पर किसकी छाया पड़ी हुई है? कौनसे यक्ष से हम प्रभावित हैं? हमारे पर किस यक्ष का प्रभाव चल रहा है? ममत्व रूपी यक्ष का प्रभाव हमारी आत्मा पर पड़ा हुआ है। उसके कारण से वह जैसा नचाता है, हम नाच रहे हैं किंतु जब व्यक्ति अपनी छवि को देख लेता है, अपने स्वरूप का बोध हो जाता है, आत्म विज्ञान होता है, आत्म-बोध जग जाता है फिर उस यक्ष का वहां से प्रभाव हट जाता है।

सेठ सुदर्शन के संयोग से अर्जुन माली पर चल रहे यक्ष का प्रभाव दूर हो गया। वैसे ही कोई निमित्त मिल जाता है तो हमारे पर पड़ी हुई छाया दूर हो सकती है। शासन दीपिका श्री कल्याण कंवर जी म. सा. का योग बना और 'छाया' पर बाहर की छाया का प्रभाव हटने लगा। आज वह साध्वी के रूप में स्थित है। जिनको हम पहले छाया के नाम से जान रहे थे, अब इनकी नई पहचान नवदीक्षिता महासती श्री छवियशा जी म.सा. के नाम से करेंगे। छवि का अर्थ होता है, शोभा। छवि का अर्थ होता है, आकृति। जिसने अपने भीतर की शोभा देख ली, 'छवि अंदर की देखी जिसने, वह फिर बाहर क्या देखे'। जिसने अपने भीतर की शोभा निहार ली, देख ली, क्या उसे अब बाह्य शोभा प्रभावित कर पाएगी? यश संयमी जीवन का प्रतीक है। कहीं-

कहीं पर संयम के नाम से भी, संयम के रूप से भी यश शब्द का प्रयोग हुआ है क्योंकि संयमी जीवन, यशस्वी होता है। इसलिए इनका नाम नवदीक्षिता महासती जी छवियशा जी म.सा. होगा।

दूसरे नंबर पर कौन विराज रही हैं? लवली जी, जिनके बारे में पहले जान लिया है हमने। वे बड़ी उत्कंठित होकर देख रही हैं कि मेरा नाम क्या रख रहे हैं? क्षमा की कुल्हाड़ी हाथ में लेते हैं तो कषायों को काटा जाता है। 'शस्त्र अचूक क्षमा का लेऊं, दूर ही मार भगाऊं, भगवान...', कषायों को काटने का काम, मोह को काटने का काम तीक्ष्ण शस्त्र से हो सकता है। वैसे संयम को अशस्त्र कहा है किंतु वैसे वह तीक्ष्ण शस्त्र है। कभी आग जलाने वाली होती है और कभी खूब पाला पड़ जाए तो। जानते हो, पाला पड़ना किसको कहते हैं? बहुत ज्यादा ठंड पड़ जाती है यानी पाला पड़ जाता है तो वह भी फसल को जला देता है। वह भी तीक्ष्ण है। वैसे ही संयम को अशस्त्र कहा है किंतु मोह को काटने के लिए इससे बढ़कर और कोई शस्त्र नहीं होगा। इनकी पहचान अब हम नए सिरे से करेंगे। नवदीक्षिता महासती जी श्री लवियशा जी म.सा.। लवी धातु को काटने में प्रयोग होती है। ये कर्मों को, मोह को काटने की तरफ आगे बढ़ रही हैं। इसलिए इनका नाम, इनकी पहचान, इनके कर्म और गुण के आधार पर लवियशा जी म.सा. के रूप में किया जा रहा है।

सांखला जी क्या नाम रखना? अक्षिता सांखला, नाम अच्छा है, सुंदर है, पर हमारे यहां पर पहले ही मौजूद हैं, अक्षिता श्री जी म.सा.। इनकी पहचान के लिए ऐसा विचार बना हुआ है कि इनकी पहचान हम नवदीक्षिता महासती श्री अवियशा जी म.सा. के नाम से करेंगे। अवि का अर्थ होता है, सूर्य। अवि का क्या अर्थ होता है? सूर्य। इन्होंने संयम रूपी यशस्वी सूर्य को प्रकट किया है। सूर्य को उदित किया है। बाह्य सूर्य तो समय के साथ अस्ताचल की ओर चला जाता है किंतु हमारा संयम सूर्य, हमारा वैचारिक सूर्य दिनोंदिन यशस्विता को प्राप्त करे। इस दृष्टिकोण से इनको सतत् जागरुक रहना है और अपने संयम सूर्य को सदा याद रखना चाहिए कि मेरा नाम अवियशा है, तो मैं अपने संयम सूर्य को जागृत रखूं। मेरा संयम सूर्य किसी भी बाह्य बादलों से, बादलों की ओट में नहीं आना चाहिए और जब कभी बादल आने लग जाए तो अवियशा के हिसाब से सतत् विचार करेंगे। उन बादलों को हटाने का प्रयत्न करेंगे, जिससे हमारे अपने भीतर की छवि क्या हो जाएगी?

इन तीनों महासतियों को इस नए सिरे से, नई पहचान के रूप में हमें लेना है। कोई भी एक नाम रखना होता है क्योंकि उसके बिना पहचान हो नहीं सकती। नाम नहीं रखते हैं तो लोग 'ओ सती जी, ओ सती जी' कहेंगे। अब कौन से सती जी को बुला रहे हैं, पता नहीं चलेगा। इसलिए कोई न कोई नाम होगा तो उसके हिसाब से उनको बोल सकते हैं। पहला चरण पहले संपन्न हो चुका है। यह दूसरा चरण नामकरण का संपन्न हुआ और अब तीसरा चरण केश लोचन का, शासन दीपिका महासती जी मंजुलाश्री जी म.सा. (देशनोक वाले) के कर कमलों से संपन्न होगा। महासती नवदीक्षिता सुखदा श्री जी म.सा. और वरदाश्री जी म.सा. ने नवदीक्षित महासतियों का स्वागत पांच की तपस्या का पच्चक्खाण करके किया है।

03 अक्टूबर, 2019

13

जैसा खाए अन्न

शांति जिन एक मुज विनति...

'जैसा खाए अन्न, वैसा रहे मन।
जैसा पीये पानी, वैसी आए वाणी।'

इनको ठल्लक बोल कहा जाता है। कब बने हैं? किसने बनाए हैं? यह इतिहास अपने पास में नहीं है, किंतु जिसने भी यह बोल बनाया हो, है मार्मिक है और बहुत बोध देने वाला। अन्न जैसा होगा, व्यक्ति का मन वैसा बनेगा। भगवान महावीर की वाणी से यदि इस बात को जोड़ें तो भगवान महावीर कहते हैं, 'आहारमिच्छेमियमेसणिज्जं' अर्थात् आहार की गवेषणा करो। भोजन की आवश्यकता रहेगी क्योंकि शरीर भोजन के आधार पर ही टिका हुआ होता है। तपस्या एक दिन, दो दिन, तीन दिन, ज्यादा कर लें तो मासखमण, दो मासखमण, सौ मासखमण हो जाते हैं किंतु अंततोगत्वा वापस आना कहां पर होता है? कौनसे रास्ते पर आना होता है? भोजन के रास्ते पर ही आना होता है। मतलब यह है कि देह का संचय या देह का संवर्धन, वह आहार से होता है, खाने से होता है, भोजन से होता है। हम जैसा खाते हैं, उसके आधार पर शरीर की परत का निर्माण होता है।

एक आदमी हिंसा करता हुआ, पंचेंद्रिय जीवों का वध करता हुआ अपने शरीर का पोषण करता है और एक व्यक्ति बहुत यतना से, सावधानी रखता हुआ लक्ष्य रखता है कि अनावश्यक रूप से किसी भी जीव की विराधना नहीं हो। जितनी शरीर को जरूरत है, जितनी परिवार को आवश्यकता है, उसके अनुसार आरंभ-समारंभ कर रहा है। आरंभ की दृष्टि से दोनों आरंभ कर रहे हैं किंतु एक के विचार और दूसरे के विचार में बहुत अंतर है। पहले वाला हिंसा की भावना से जुड़ा हुआ हुआ है, आसक्ति से

जुड़ा है और दूसरा व्यक्ति, वह केवल शरीर के पोषण के लिए, शरीर को टिकाए रखने के लिए आहार का उपयोग करता है और हिंसा की भावना नहीं है, केवल अपने देह की, अपने परिवार की रक्षा की भावना है। आसक्ति जब होती है तो आसक्ति के साथ हिंसा का भाव जुड़ता है। 'किसी पदार्थ पर मेरी आसक्ति है, अब उस पदार्थ को पाने के लिए मेरा प्रयत्न होगा।'

किसी भी खाने के पदार्थ के प्रति आसक्ति है तो वह उसको बनाएगा तो वह उसकी हिंसा को करने वाला होता है क्योंकि उसके शरीर के लिए पदार्थ जरूरी है या नहीं है? उसके स्वाद के लिए उसको आवश्यकता है, उसकी आसक्ति की पूर्ति करने के लिए उसको आवश्यकता है तो आसक्ति में जीने वाला हिंसा को देखने वाला होता है, हिंसा करने वाला होता है। वह प्राणियों के वध की अपेक्षा करता है और दूसरी तरफ जो अपने शरीर के निर्वाह के लिए भोजन करने वाला होता है, उसके विचार शांत होते हैं, उसके विचार संयत होते हैं। उसमें जीवों की हिंसा की भावना नहीं होती है। उसका अपने शरीर के पोषण का लक्ष्य होता है। मैं जिंदा कैसे रह सकता हूं, उसके लिए उसका प्रयत्न होता है। जो व्यक्ति हिंसा के भावों से चलता है, आसक्ति के भावों से चलता है, उसकी परत कैसे सघन होती है उस पर हम थोड़ा विचार करेंगे। उसकी परत सघन हो जाती है।

एक उदाहरण लेते हैं हम, एक अलमारी, एक गोदरेज की अलमारी है। उसके भीतर सामान रखा हुआ है, तो उसके भीतर रखा हुआ सामान कुछ दिखता है क्या? कुछ नजर आता है क्या? और उसी अलमारी के कपाट पर कांच लगा हुआ है, ग्लास लगा हुआ है तो भीतर में रखी हुई चीज नजर आ सकती है या नहीं आ सकती है? नजर आ सकती है। कपाट दोनों में हैं; उसमें भी कपाट है और इसमें भी कपाट है। एक से भीतर रखी हुई चीज नजर नहीं आती है और दूसरे से भीतर रखी हुई चीज नजर आ जाती है। वैसे ही जो हिंसा लगा हुआ होता है, उसके कर्मों की परत सघन हो जाती है। आत्म बोध, आत्म दर्शन उसको सुलभ नहीं हो पाता। उसके लिए आत्मा का बोध दुर्लभ होता है, कठिन होता है। जान ही नहीं पाएगा, समझ नहीं पाएगा, क्योंकि हिंसा में जब तक मन बना रहेगा, हिंसा में जब तक मन अनुरक्त रहेगा तो वहां पर आत्मा का बोध कैसे होगा? आत्म बोध वहां जागृत होता है, जहां सभी आत्माओं को अपने आत्मा के समान समझने का लक्ष्य बनता है और अपनी पीड़ा जैसे व्यक्ति को पीड़ित करती है, वैसे

ही दूसरे की पीड़ा भी उसको पीड़ित करे। किसी में दुःख-दर्द देखकर उसके भीतर प्रकंपन होता है, उसके भीतर में एक प्रकार से अनुकंपा के भाव पैदा होते हैं, संवेदन होता है, वहां आत्म बोध प्रकट होने के चांस रहते हैं।

सम्यक्त्व के पांच लक्षण बताए गए हैं, सम, संवेग, निरवेग, अनुकंपा और आस्था। चौथा कौनसा है? अनुकंपा। दुःखी प्राणी को देखकर मन में कुछ होता है, मन में कंपन पैदा होता है। 'अहा! यह कितना पीड़ित हो रहा है? इसको कितना उपसर्ग आ रहा है? इसके सामने कितने कष्ट हैं?' और उन कष्टों के सामने उसकी आत्मा भी कंपायमान हो जाती है और रहम करने की दिशा में उसके मन में विचार पैदा होते हैं, उन विचारों को हम 'अनुकंपा' कहते हैं। ऐसे विचार जब पैदा होते हैं तो अपने भीतर भी आत्म बोध जागृत होता है या यूं कहूं कि हमें आत्मा का बोध हुआ होगा तो हमारे भीतर अनुकंपा की भावना जग पाएगी, अन्यथा संसार की दशा बड़ी विचित्र है, यहां किसी के विषय में हमारे मन में कहां विचार पैदा होते हैं? कितने लोग रोज मरते रहते हैं, कितने लोग जन्म लेते रहते हैं, हमारा उससे कोई सरोकार नहीं है, कोई संबंध नहीं है।

आए दिन अखबारों में पढ़ते हैं, टी.वी. पर भी आप लोगों को नजर आता होगा, अमुक जगह एक्सीडेंट हो गया, अमुक का एक्सीडेंट हो गया, यहां एक्सीडेंट हो गया। एक्सीडेंट, एक्सीडेंट। वहां ऐसा हो गया, वहां वैसा हो गया। कौन किसकी घात कर रहा है, कौन किसको मार रहा है, कौन किसके साथ कैसा व्यवहार कर रहा है, ये समाचार आए दिन अखबारों में आपको मिलते हैं। एक भी दिन शायद ही जाता होगा जिस दिन अखबार में ऐसे समाचार नहीं आवें। एक दिन भी ऐसा नहीं जाता होगा कि कहीं पर भी एक्सीडेंट नहीं हुआ होगा। कदाचित किसी अखबार में समाचार नहीं आया हो, अखबार में खबर नहीं मिली हो तो क्या यह मान सकते हैं कि भारत में कभी ऐसा दिन गया हो कि जहां किसी के साथ में कोई न कोई दुर्घटना नहीं घटी हो? क्या एक दिन भी दुर्घटना नहीं हुई हो ऐसा निकलता है? कई दुर्घटनाएं घट जाती हैं और कई लोग दुर्घटनाओं के शिकार हो जाते हैं किंतु हमारे मन में किसके प्रति कितना कंपन पैदा होता है? हो सकता है कि हमारे सामने किसी की दुर्घटना हो जाती है तो उस दुर्घटना को देखकर मन में उस दुर्घटना के शिकार व्यक्ति के लिए थोड़ा कुछ विचार हो, हमारे भीतर थोड़ा कंपायमान हो जाए। हो सकता है कि उस समय भय से हमारे रोंगटे खड़े हो

जाएं, पर वे रोंगटे हमारे स्वयं के भय के कारण खड़े होते हैं। वहां उसको भय लगा, उस कारण से रोंगटे खड़े हो सकते हैं, खड़े हो गए होंगे। हो सकता है कि सामने वाले की पीड़ा को देखकर भी मन विचलित हो जाए।

कुल मिलाकर यह व्यथा आत्म बोध की ओर प्रेरित करने वाली होती है। इसलिए कहा गया कि 'जैसा खाए अन्न, वैसा रहे मन'। भगवान महावीर कहते हैं 'आहारमिच्छेमियमेसणिज्जं'। आहार की गवेषणा करो। एषणा का अर्थ आहार की खोज। भोजन ऐसा होना चाहिए जो आपके शरीर का निर्वाह करने वाला हो। उसमें आसक्ति के भाव नहीं होने चाहिए। उसमें यह विचार नहीं होना चाहिए कि मुझे अमुक पदार्थ ही मिलने चाहिए। अमुक पदार्थ की ही यदि मुझे अपेक्षा है तो इसका अर्थ होता है कि उस पदार्थ के प्रति मेरा आसक्ति भाव है, लगाव है, ममत्व है। यदि ऐसी स्थिति है तो जैसा मैं पहले बोल गया, हम हिंसा की तरफ आकर्षित होंगे।

साधु जब भिक्षा के लिए किसी घर में जाते हैं तो गवेषणा की विधि बताई गई है। क्यों जाते हैं संत, किसी के घर में? भिक्षा के लिए जाते हैं क्योंकि उनको स्वयं आरंभ नहीं करना है, स्वयं भोजन पकाना नहीं है। वे स्वयं आरंभ करते नहीं हैं और किसी से करवाते भी नहीं हैं और करते हुए से वे गोचरी लेते नहीं हैं। वे स्वयं रांधने की क्रिया करते नहीं हैं, दूसरे को आदेश देकर करवाते नहीं हैं। देख लेना! क्या ऐसा होता है कि आज ये-ये पदार्थ होने चाहिए। मेन्यू जैसे तय किए जाते हैं, क्या ऐसा मेन्यू मुनि तय करता है? ऐसा होता है क्या? ऑर्डर देता है क्या? कि आज यह चीज तैयार हो जानी चाहिए। शास्त्र यह कहता है कि यदि कोई भावुक भक्त मुनि को आकर बोले कि मुनिराज मैं आज आपके लिए ये-ये पदार्थ बनाने की सोच रहा हूं तो मुनि को तत्काल, उसी समय निषेध कर देना चाहिए कि भाई हमारे लिए किसी भी प्रकार का आरंभ करना नहीं है। हमारे लिए किसी भी प्रकार का भोजन बनाना नहीं, हमारे लिए किसी भी प्रकार के भोजन का निर्माण करना नहीं। यदि हमारे निमित्त तुमने कुछ भी बनाया तो हम उसे ग्रहण नहीं करेंगे। वह हमारे लिए ग्राह्य नहीं होगा।

आचार्य पूज्य गुरुदेव का विहार चल रहा था और जैसा मैंने सुना कि लगभग तीन दिन हो गए। गोचरी होती थी किंतु साधुओं को जितनी जरूरत होती उतनी पर्याप्त नहीं हो पा रही थी। आगे के विहार के संबंध में पूछा तो, गांव का नाम याद नहीं रहा, गांव वालों ने बताया कि तीन किलोमीटर

अंदर जाने पर कुछ पांच-सात जैनियों के घर हैं। सहज ही विचार हो गया कि जैनियों के घर होंगे तो कुछ न कुछ जानकारी रखने वाले होंगे तो कुछ न कुछ सुविधा हो जाएगी। लेकिन तीन किलोमीटर तो जाना ही पड़ेगा और आज तीन किलोमीटर आना-जाना हर किसी को बड़ा कठिन लगता है। सड़क-सड़क चलना हो तो चल सकते हैं। अगर गांव में अंदर जाना हो और तीन किलोमीटर चलना हो तो, 'अरे! गांव के अंदर तीन किलोमीटर चलना है।' तीन किलोमीटर अंदर जाना पड़ेगा और जाना ही पड़ जाए कोई कह दें कि 'नहीं, नहीं, म.सा. गांव छोड़कर कैसे जा सकते हो? आपको चलना ही पड़ेगा।' तो माथे पर सोट पड़ जाते हैं। तीन किलोमीटर रोड से भीतर गांव में जाना भी मुश्किल हो जाता है। साल भर में कितने किलोमीटर चलते हैं? तीन सौ किलोमीटर सड़क पर साल भर में चलते हैं। सालभर में कितना चलना हो जाता है? तीन सौ क्या, तीन हजार भी चल जाता होगा किंतु तीन किलोमीटर सड़क छोड़कर अंदर जाना पड़ रहा है, वह बड़ा भारी पड़ जाता है।

किंतु गुरुदेव पधारे उस गांव में। गांव वालों को मालूम पड़ा कि कोई महाराज आए हैं। उस गांव में कोई धर्म स्थानक था नहीं। एक चबूतरा था, उस पर गुरुदेव विराज गए। एक जैनी भाई आया और वंदना की। विधि से वंदना जानता नहीं था, ऐसे ही नमस्कार किए और गुरुदेव को पूछा, 'म.सा. आप कितनी मूर्तियां हो? कित्तो सीधो लगाऊं?' भोजन बनाने को सीधा लगाना बोलते हैं। कितने जनों का खाना पकाऊं? वह पूछ रहा है कि कितने जनों का भोजन पकाऊं? आचार्य देव भांप गए।

कहते हैं कि गांव की बाड़ देखकर भांप लिया जाता है गांव के बारे में। गावं के घरों में बाड़ें होती थी ना? पहले गांवों में बाड़ें होती थी, कांटों की होती थी। घर कच्चे होते थे बाड़ें लगाई हुई होती थी। गांव कैसा है बाड़ों को देखकर मालूम पड़ जाता था। बाड़ अच्छी लगी होने का मतलब गांव संपन्न है और टूटी-फूटी बाड़ है, बिल्ली-कुत्तों के आने-जाने के रास्ते जगह-जगह बने हुए होते तो गांव ठीक-ठाक है। ऐसे लोग जान लिया करते थे कि गांव की स्थिति क्या है? और आज कैसे जान लेते हैं? किससे पता पड़ता है कि गांव कैसा है? बड़े शहरों में जाएंगे। अमूमन देखने में या शहर में प्रवेश करते ही सबसे पहले कौनसी दुकानें आती हैं? हमने दक्षिण और पूर्वांचल में विहार किया तो वहां प्रायः-प्रायः मांस-मछली, मटन आदि की दुकानें दिखती गांव

में घुसते ही पहले उन दुकानों के दर्शन होते। गांव में घुसते ही किसके दर्शन होते? जिस चीज़ के दर्शन होते हैं, वह चीज़ वहां पर मिलती है। इससे यह पता चल जाता है कि यहां के लोगों का खान-पान, रहन-सहन कैसा है?

हैदराबाद चातुर्मास के पहले कुछ बीच के गांवों में जाने का काम पड़ा। जो एक प्रकार से अपवाद के रूप में थे। वहां कोई दुकान नजर नहीं आईं। फिर बातचीत में, लोगों से पूछताछ की तो पता चला कि इस पूरे गांव में कोई मांस खाने वाला नहीं है। 400-500 घरों का कुनबा था, वहां कोई मांस खाने वाला नहीं है। लोगों ने बताया कि हमारे गांव में कोई भी मांस की दुकान नहीं है और कोई मांस खाता नहीं है और बाहर से लाकर भी कोई खाता नहीं है। उस तरफ ऐसे कई गांव दृष्टिगत हुए। तब मालूम पड़ा कि दक्षिण में भी अभी ऐसे गांव मौजूद हैं, जहां पर ऐसे खान-पान नहीं करते हैं। वे गांव लिंगायतों के थे। लिंगायत खाने-पीने में नहीं रहते हैं किंतु दूसरी कौम के लोग भी रहते थे तो उनकी संस्कृति ऐसी रहती थी कि उस गांव में साथ में रहने वाली दूसरी कौम के लोग भी मांस-मछली नहीं खाते थे? उनको खाने से कौन रोक सकता है? जहां पर लोग नहीं खाने वाले होते हैं वहां पर दो-चार दूसरे होते हैं तो उनमें भी वैसी संस्कृति बन जाती है। उनको देखकर, उनकी संस्कृति अपना लेते हैं, खाने-पीने से बचाव कर लेते हैं। वे लोग बाहर जाकर खा लेते हों तो अलग बात है, किंतु गांव में लाकर नहीं खाते।

तब मालूम पड़ा कि दक्षिण भारत में भी ऐसे गांव और ऐसे परिवार हैं जहां पूरे गांव के लोग शाकाहारी हैं। मांस इत्यादि चीजों का सेवन नहीं करते हैं। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि ऐसे भी गांव और घर दक्षिण में है। हमें सुनकर आश्चर्य नहीं होता है, हमने पहली बार देखा, सुना तब आश्चर्य हुआ किंतु अब यह आश्चर्य नहीं हो रहा है। भारत में ऐसे भी गांव हैं, जिन गांवों में न बीड़ी है, न सिगरेट है, न गुटखा है, न तंबाकू है। शराब की तो बात ही दूर की रह गई है।

जोधपुर में तो क्या, जैन समाज ही अछूता मिल जाए तो बड़ी बात है। क्या अछूता जैन समाज मिल जाएगा? क्या जोधपुर में जैन समाज के लोग कह सकते हैं कि यहां न बीड़ी पीने वाले हैं, न सिगरेट पीने वाले, न पान-पराग, न तंबाकू और न ही दारू। गुलाब जी[1] बोलो, जोधपुर जैन समाज

1. गुलाब जी चौपड़ा, जोधपुर

का सर्टिफिकेट दे सकते हो? दे सकते हो तो हम आगे जाकर बात कर सकते हैं कि जोधपुर वाले सर्टिफिकेट देते हैं। बोलो गुलाब जी? गुलाब जी बोल रहे हैं कि नहीं, मैं सर्टिफिकेट नहीं दे सकता हूं। अपनी बिरादरी का सर्टिफिकेट देने के लिए भी तैयार नहीं हो। सोचो, विचार करो कि हम कहां हैं? हम कितने पानी में हैं, हम कितनी गहराई में हैं? हम जैनी हैं और ये सारी चीजें कैसे हो रही हैं? ये कैसे हो रहा है? फिर हमारे संसार में आने का क्या अर्थ हुआ? हमारे संस्कार क्या हुए? हमने अपने आपको कितना संस्कारित बनाया? खाने की चीजें मतलब सब चीजें आ गईं। नशा करने वाले के संस्कार सही रहना बहुत मुश्किल है। नशा-पता करने वाले के संस्कार सही रह जाए यह कहना बहुत कठिन है, क्योंकि नशे के प्रति उसकी आदत बनेगी और वह नशा प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा।

आचार्य पूज्य गुरुदेव उदयपुर विराज रहे थे। एक भाई बाहर से आया। उसके परिवार के लोग उदयपुर में ही रहते थे। दर्शन करने के लिए आ गया और बात ही बात में उसने बताया कि मैं नशा-पता करता था। हेरोइन नशा करने में काम में लेता था। हेरोइन होता है ना कुछ? मुझे ये सब कुछ पता नहीं है, लोगों से सुना है और व्याख्यान में कुछ ऐसा ही विषय चला होगा तो उसने कहा कि म.सा. आज मैंने आपका व्याख्यान सुना है और मैं स्वयं भुक्त-भोगी आदमी हूं। रिवॉल्वर लेकर मैंने अपनी मां के सीने पर रख दी और कहा– मुझे पैसे दो। नशे में आदमी को कुछ भी नहीं दिखता है, उस समय उसका दिमाग खाली हो जाता है, नशे में दिमाग शून्य हो जाता है। फिर नशे की आदत जगती है कि वह चीज होनी चाहिए, हेरोइन होनी चाहिए। उसने अपनी मां के सीने पर बंदूक लगा दी, रिवॉल्वर रख दी कि पैसे दो नहीं तो सीने में गोली दाग दूंगा। वह व्यक्ति पुणे में या पुणे के आस-पास सुधार गृह में रहता था। वह कहता है कि जब तक सुधार गृह में रहता हूं, सारे लोग वैसे ही मिलते हैं तो कभी वहां पर विचार नहीं आता है, किंतु जैसे ही वापस घर आता हूं तो वही चीजें वापस याद आ जाती हैं, उसकी तलब लग जाती है, जो सुधार गृह में उसने छोड़ा था।

कहने का मतलब है कि शांत होने पर भी नशे के कारण आदमी कितना कायल हो जाता है? उसे कुछ नहीं दिखता है। सिर्फ नशा, नशा, नशा और नशा। नहीं मिले तो अकृत्य कार्यों को करने के लिए उतारू हो जाता है। अमेरिका में 13 जेलों में 17 हजार लोगों पर सर्वे हुआ। उस सर्वे में यह पाया

गया कि 50 प्रतिशत लोग या तो नशे के धुन में, नशे की लत में, नशे में धुत बने हुए अपराध करने वाले बने या नशे की चीज को प्राप्त करने के लिए अपराध किए।

मैंने सुना किसी से कि किसी से यदि कोई अपराध कराना हो, संगीन अपराध कराना हो तो उसको जमकर शराब पिला दो। यह चीज मत कर लेना, कहीं उल्टा-पुल्टा मत करना कि म.सा. ने फरमाया है तो अब यह चीज करनी पड़ेगी। ऐसा नहीं हो कि आप उस चीज को करवाने के लिए उतारू हो जाएं। मैं कोई फॉर्मूला नहीं बता रहा हूं किंतु हालत क्या है, वह बता रहा हूं। मैंने जो सुनी हुई है, उसको बता रहा हूं कि किसी को शराब पिला दो और उसके दिमाग में बार-बार जमा दो, दो-चार बार बोल दो तो नशे में उसे वही बात याद रहेगी। दूसरी बातें याद रहें न रहें पर वह बात याद रहती है। यदि किसी का मर्डर कराना हो, वैसा उसके दिमाग में जमा दिया हो तो वह उस आदमी को ढूंढ़कर उसका मर्डर करने के लिए तैयार हो जाएगा। उसको कहीं से कहीं तक कोई विचार नहीं आएगा क्योंकि वह नशे में है। नशे में वही बात उभरी हुई है कि ऐसा करना है, ऐसा करना है। और वह वैसा कर गुजरता है।

हमारे यहां पर एक 'स्त्यानगृद्धि निद्रा' का वर्णन आता है। बताया गया है कि वह नींद ऐसी होती है, वह बेहोशी ऐसी होती है, आत्म विस्मरण होता है कि मन में कोई विचार किया हो, दिन में उस विचार की पूर्ति नहीं हुई हो तो रात्रि के समय में उसके भीतर विचार फलीभूत हो जाएगा। उस नींद में, बेहोशी में वह उठकर चला जाएगा और दिन में जो सोचा हुआ है वह कार्य कर डालेगा और वापस आकर सो जाएगा। सुबह उठेगा तो उसे लगेगा कि मैंने कोई सपना देखा है। वह गुरु महाराज से आलोचना करता है कि गुरुदेव मैंने ऐसा-ऐसा सपना देखा है। सपने में मेरे से ऐसा कोई कुकर्म हो गया है। आचार्य महाराज उसकी तहकीकात करते हैं और यदि जैसा वह कहता है, वैसी चीजें मिल जाती हैं तो ज्ञात हो जाता है कि इसको 'स्त्यानगृद्धि निद्रा' आ गई है, बेहोशी आ गई है। अब यह संन्यासी जीवन में रहने योग्य नहीं है क्योंकि वह किस समय क्या कर देगा, कोई नहीं पता पड़ेगा। उसको समझाकर संयमी जीवन की पोशाक से रहित किया जाता है, रिक्त किया जाता है।

यह बेहोशी भी आत्म विस्मरण है और शराब, हेरोइन या ऐसी चीजें जब आदमी लेता है तो ये भी आत्म विस्मरण कराने वाली हैं और ऐसे

आत्म विस्मरण से बहुत बार व्यक्ति बहुत बड़े-बड़े अकृत्य कर गुजरता है, नहीं करने योग्य कार्य कर गुजरता है। अमरीका में जो शोध हुआ, 50 प्रतिशत लोग किस कारण से अपराध में जुड़े? नशे के कारण जुड़े।

एक तरफ हम कहते हैं कि अपराध वृत्ति बढ़ती जा रही है। नशे को बढ़ावा मिलेगा तो अपराध वृत्ति बढ़ेगी। अपराध वृत्ति को घटाना है तो नशे को घटाना होगा। अभी एक नया नशा निकला है, ई-सिगरेट। कमल जी बताओ क्या होता है ये? आप बोल रहे हो कि मुझे पता नहीं है, बड़े शहर में रहते हुए आपको पता नहीं है? एक प्रकार से इलेक्ट्रिक सिगरेट, बड़ी खतरनाक होती है और नशा भी बड़ा जबरदस्त होता है। जैसा मैंने सुना है, जाना नहीं है। मैंने देखा नहीं है किंतु सुना है कि ई-सिगरेट कुछ होती है। बहुत लोगों ने बताया ऐसी होती है। परमाणु आण्विक तरह की होती है, जो आण्विक रसायन उसमें नशे के रूप में होते हैं। निकोटिन जिसको कहते हैं। निकोटिन वैसे तंबाकू में भी होती है किंतु ई-सिगरेट बड़ी खतरनाक होती है। उसके लिए ऐसा बताया जाता है कि सरकार उस पर रोक लगाने की दिशा में कदम बढ़ा रही है।

(सभा में कुछ लोग कहते हैं रोक लगा दी है।)

अरे वाह! आप लोग बहुत जागरूक हैं। पर इस तरह से दूसरी सिगरेट पर क्यों नहीं लगाई जा रही है? क्या उस पर भी रोक नहीं लग सकती? राजस्थान में नहीं है, सरकार लगाने की तैयारी कर रही है। सभा में बैठे कुछ लोग बोल रहे हैं कि राजस्थान में सभी तंबाकू पर रोक लगा दी गई। अरे! कहां पर लगी रोक? इसको रोक बोलते हो क्या? जोधपुर में देखो तो किसी दुकान में सिगरेट वगैरह मिलती है क्या? पीने वाले होंगे तो मिलेगी। पीने वाले नहीं होंगे तो भी मिल जाएगी किंतु मिलेगी तो कोई गुपचुप रूप से लेकर जाएगा। सीधे रूप से नहीं ले जाए किंतु घूम-फिरकर ले जाएगा। कई बार इन सबके पीछे क्या-क्या खतरनाक खेल हो जाते हैं।

एक जगह विहार करके हम चल रहे थे। वहां रास्ते में एक होटल के बाहर लिखा हुआ था, 'शुद्ध शाकाहारी ढाबा'। संत चले गए कि देखते हैं कि पानी वगैरह मिल जाए तो। वहां गए और संतों ने थोड़ी दो-चार बार तहकीकात की तो वहां पर कुछ लोगों ने देखा और किसी ने कहा कि, 'महाराज, आपके लिए यह ढाबा सही नहीं है।' तो कहा कि यहां पर तो लिखा है कि शुद्ध

शाकाहारी ढाबा। तो उसने जवाब दिया कि शुद्ध शाकाहारी ढाबा बाहर तो लिखा हुए है लेकिन अंडे को लोग मांसाहारी मानते नहीं हैं, शाकाहारी मानते हैं। इसलिए यहां पर वह भी बनता है। मेरे ख्याल से कुछ तथाकथित ऐसे भी जैनी लोग हैं, जो नहीं मानते हैं कि अंडा मांसाहारी है।

एक गांव में हम गए और सड़क के किनारे एक जैनी की दुकान थी और उसमें अंडे रखे हुए थे, बाहर लिखा हुआ था कि जैन की दुकान है। दिगंबर जैन था शायद। हमने कहा कि यह कैसी बात है? उसने कहा, घर में खाते नहीं हैं, लेकिन बेचते हैं। इसमें क्या हो गया? यह अंडा ही तो है। यानी यह मांसाहारी नहीं है। महेश जी नाहटा साथ थे। उनको कहा यह क्या है? उन्होंने समझाया और उसने भी कह दिया कि, आगे से मैं नहीं बेचूंगा। उसको समझा दिया और नहीं समझाया होता तो बेच रहा था। किंतु कहने का आशय यह है कि कैसी-कैसी चीजें हमारे सामने आ जाती हैं। जब आदमी की आदत बन जाती है, उसका नशा बन जाता है तो आदमी को फिर वह चीज चाहिए तो चाहिए। इसलिए कहा गया है कि 'आहारमिच्छेमियमेसणिज्जं'। आहार कैसा होना चाहिए उसकी खोज होनी चाहिए।

मैं बता रहा था कि मुनि किसी चीज की गवेषणा करता है। वह कैसे करे? उसके लिए भगवान कहते हैं कि 'कस्सट्ठा केण वा कडं', यह भोजन किसने बनाया है और किसके लिए बनाया है? दूसरा आदमी क्या जानेगा कि किस लिए बनाया है? यह बनाने वाला ही बता सकता है। उस चीज को बनाने के पीछे भावना क्या है, यह किसको मालूम रहेगा? बनाने वाले को मालूम रहेगा कि किसलिए बनाया है? दूसरा आदमी कैसे बताएगा कि किस लिए बनाया है। हम लोग गोचरी के लिए जाते हैं और जब गवेषणा करते हैं तो जिनका कहीं से कहीं तक कोई लेना-देना नहीं है, जो मेहमान बनकर आया होगा, वह कहता है कि 'अरे बावजी, यह तो घर में रहता ही है। यह तो बनता ही है। वह घर में रहता नहीं। आज मेहमान बन कर आया है। उसे क्या पता कि बनाने वाले ने क्यों बनाया फिर भी बीच में पंचायत करने वाले होते हैं। संत पूछें तो जवाब किसको देना चाहिए? जिसने वह चीज बनाई है, उसको जवाब देना चाहिए और जब चार आदमी अलग-अलग जवाब देने लग जाते हैं तो कन्फ्यूजन होगा या नहीं होगा? संशय होगा या नहीं होगा? जिसने भोजन बनाया, जिसने धोवन बनाया है, उसको जवाब देना चाहिए कि किसलिए बनाया, किसके लिए बनाया? जल्दी बनाया या टाइम

पर बनाया? ज्यादा बनाया या बराबर बनाया? ये कौन जान सकता है? एक बहन के घर में पूछा तो उसने कहा कि बावजी, मुझे तो सासु जी ने आदेश दिया कि इतनी सब्जी बनानी है, इतनी रोटियां बनानी हैं। सासु जी जानें, उन्होंने जैसे बताया, वैसे मैंने बनाया है। क्यों बनाया, किसके लिए बनाया यह मुझे कुछ नहीं मालूम।

कुल मिलाकर साधु की गवेषण होती है, पूछताछ होती है। यहां तक भी बताया गया है कि साधु को भूखा रहना मंजूर हो जाए किंतु साधु के लिए कोई आहार बनाया गया है उसे मालूम हो जाए तो उसको वैसा आहार ग्रहण नहीं करना। उसको वैसा आहार नहीं लेना, चाहे भूखे रहना पड़ जाए। चाहे एक दिन, दो दिन या तीन दिन भूखे रहना पड़ जाए। हालांकि ज्यादा भूखा रहना नहीं पड़ता है क्यों कि खाना ऐसी चीज है जो हर घर में बनता है। किंतु कोई लोग भावुकता में दोष लगा लेते हैं। कोई ज्यादा बनाने में दोष लगा लेते हैं। कोई-कोई खाना बहुत जल्दी बना लेता है कि व्याख्यान होने के बाद संत आएंगे गोचरी के लिए इसलिए चार रोटी जल्दी उतारकर चली जाऊं। क्या होगा फिर? वह आहार दोष वाला होगा या निर्दोष होगा? वह दोष वाला होगा। इसलिए 'कस्सट्ठा केण वा कडं', साधु को पूछना चाहिए कि 'कस्सट्ठा' यानी किसके लिए और 'केण' यानी किसके द्वारा बनाया गया है। और पता चल जाए कि अमुक ने बनाया है तो साधु के सारे पूछने का भार उसी पर जाएगा कि किसलिए बनाया? और जब निर्दोष लगे तो ही उसको स्वीकार करना। यदि निर्दोष नहीं लगे तो उसको स्वीकार नहीं करना।

ये साधु की मर्यादा है क्योंकि यदि उसका खाना शुद्ध नहीं होगा तो उसका मन शुद्ध कैसे रहेगा? अब हम आते हैं मूल मुद्दे पर कि खाना यदि शुद्ध नहीं रहेगा तो उसका मन शुद्ध कैसे रहेगा? और साधु को मन शुद्ध रखना चाहिए या शुद्ध नहीं रखना चाहिए? साधु को मन पवित्र रखना चाहिए या नहीं रखना चाहिए? साधु को मन शुद्ध और पवित्र रखना चाहिए और श्रावक को? श्रावक को क्या करना चाहिए? पवित्र रखना चाहिए या नहीं रखना चाहिए? वह जान रहा है कि महाराज के लिए नहीं बनाना है और इसके बावजूद यदि महाराज के लिए खाना बनाता है तो मन शुद्ध रहेगा क्या? मन पवित्र रहेगा क्या? फिर महाराज पूछने लगेंगे तो वह सच बोलेगा या नहीं बोलेगा? झूठ बोलेगा क्या? वह झूठ बोलने वाला होगा या सच बोलने वाला होगा? बहुत कम लोग होते हैं जो एकदम सच बयां कर देते हैं।

एक घर में संत गोचरी के लिए गए और पूछने लगे तो पुत्रवधु ने कहा कि 'बावजी, मेरे को मत पूछो, नहीं तो घर में क्लेश हो जाएगा। आप को जो पूछना है सासु जी से पूछो।' इसे क्या समझना? (थोड़ा जोर देते हुए) क्या समझना इसे? वह जान रही है किंतु बोले तो घर में क्लेश हो जाएगा। गोचरी देवे तो उसको दोष लगता है और बोलती है तो घर में क्लेश हो जाता है और वह जानती है कि ये साधु को आहार नहीं बहराना है और झूठ बोलूं तो मैं दोष की भागी बनूं। इसलिए वह कहती है कि 'मैं जवाब नहीं दे सकती, मेरी सासु जी से पूछो, सासु जी जाने। आप सासु जी से पूछ लो।' ऐसा क्यों हो रहा है? घर में किसके भोजन नहीं बनता है? मेरे ख्याल से सभी के घर में बनता है। आप यह बताओ कि दान का लाभ कब होता है? चार रोटी, छः रोटी, पांच रोटी, आठ रोटी जितनी भी हम खाते हैं, हमारे लिए उतनी बनीं। बहुत स्पष्ट है कि हर घर में रोज-रोज ज्यादा बनेगी नहीं। रोज ज्यादा बना-बनाकर बाहर फेंकेंगे नहीं।

पहले के जमाने में गाय के लिए रोटी बनाते थे, कुत्ते के लिए रोटी बनाते थे, और एक रोटी क्या बोलते हैं ना? नाई और ब्राह्मण आदि के लिए एकाध रोटी बनाई जाती थी और घर में यदि टाबर (बच्चे) वगैरह होते थे तो दो रोटी ज्यादा बनाकर रख देते थे। क्योंकि उस समय चूल्हे की संस्कृति थी। चूल्हे को बार-बार कौन जलाएगा इसलिए खाना एक साथ बन जाता था। पहले चूल्हा पूरा तैयार करके फिर लगाना पड़ता था। अब तो हाथ से एक स्विच ऑन किया। हाथ घुमाया और स्विच ऑन हो जाता है। इतना ही करना पड़ता है और रोटी तैयार हो जाती है और खाने का भी समय निर्धारित नहीं है। कहीं-कहीं समय निर्धारित होता होगा किंतु वहां भी कभी कुछ गड़बड़ियां हो जाती हैं। अब रोज-रोज ज्यादा बना-बनाकर फेंकने का काम कौन करेगा? और ठंडा आहार करने वाले ज्यादा होंगे नहीं। लोग कहते हैं, लोगों का यह मानना है कि ठंडा खाने वाले बीमार हो जाते हैं। जरूरी नहीं कि बीमार ही हो जाते हैं। कई लोग ठंडा, तीन-तीन दिनों का बासी आहार भी करने वाले मिलते हैं। मिलते हैं या नहीं मिलते हैं? आदमी पवित्र भावों से खाता है तो ठंडा आहार भी उसके लिए अमृत के समान बन जाता है, मन को शांति देने वाला बन जाता है।

गुरुदेव फरमाते थे कि उसको चबाओ, मुंह में इतना चबाओ कि वह आहार गर्म हो जाए। वह तुम्हारे शरीर की ऊष्मा के बराबर हो जाएगा तो

अपने आप गर्म हो जाएगा। वह ठंडा रहेगा ही नहीं और जब गर्म आहार लेंगे तो उसको चबाना नहीं होगा तो सीधा भीतर में उतर जाएगा। सीधे ही उसको भीतर में उतार लिया तो वह सही से नहीं पचेगा। यदि तुमने बराबर चबाया, चबाया मतलब यह नहीं समझना कि स्वाद लेने के लिए उसको चबाना। शास्त्रकार कहते हैं कि खाने (खाद्य पदार्थ) को एक ही तरफ के जबड़े से चबाए। दूसरी तरफ से चबाने की आवश्यकता नहीं है। एक कवल को एक ही तरफ चबाए और एक तरफ से ऐसा चबाता है कि उसका चबाने का स्वाद से संबंध नहीं होता है। सिद्धांत में ऐसी बातें बहुत बताई हैं किंतु हम उनका आचरण करें, अनुसरण करें तो हमारे लिए लाभदायक हो सकती हैं। नहीं तो हम जल्दीबाजी में रहते हैं, भागादौड़ी में रहते हैं। देखते ही नहीं हैं कि कैसे खाना है, कब खाना है? होटल का खाना या घर का? कभी-कभी लोग सोचते हैं कि होटल में खा लेते हैं, लेकिन वह खाना कैसा होता है? कई होटल्स पर अच्छा होता भी हो किंतु बहुत से होटल्स के खानों को निर्दोष नहीं बताया है। वहां पर हिंसा ज्यादा होगी, पाप का भार ज्याद होगा। मैं इस विषय को ज्यादा लंबा नहीं करूंगा, किंतु इतना स्पष्ट है कि भले ही उसका स्वाद-जायका अच्छा हो सकता है किंतु पवित्रता और वात्सल्यपूर्ण भावना उसमें नहीं हो सकती।

एक गृहिणी स्वयं घर में रसोई बनाती है, उसकी जो पवित्र भावना होती है, वह भावना होटल में नहीं हो सकती है। वह पवित्र भावना किसी काम करने वाली की भी नहीं हो सकती। यदि गृहिणी स्वयं अपने हाथों से बनाती है, उस समय दिल में जो विचार होते हैं, परिवार वालों के लिए वे बड़े लाभकारी होते हैं, बड़े महत्त्वपूर्ण विचार होते हैं। भोजन से केवल काम नहीं चलता है, भोजन के पीछे रही हुई भावना, वह बड़ी काम की होती है। एक बोल है जिसमें कहा गया है, 'जिमणो मां रे हाथ रो'। क्या कहा गया है? 'जिमणो मां रे हाथ रो'। क्यों? क्यों? जो मां के वात्सल्य से जुड़ा हुआ आहार होगा, यदि उसमें जहर भी आ गया तो एक बार के लिए हो सकता है कि वह जहर भी अमृत बन जाए। जहर का असर नहीं होगा। किस कारण से मां के हाथों से जहर भी अमृत बन जाएगा? रसोई मां के हाथ की बनी हुई है और मां ही परोस रही है फिर क्यों बीमारी होगी? ऐसा हो जाए तो बीमारी कितने लोगों में मिलेगी? बीमार कौन नहीं होना चाहता? कौन चाहता है कि हम बीमार नहीं पड़ें? (किसी ने हाथ खड़ा नहीं किया।) सब बीमार पड़ना

चाहते हैं? नहीं पड़ना चाहते हैं तो होटल में खाना बंद करो। होटल में नहीं खाना है। कौन-कौन तैयार हैं? खुसर-फुसर नहीं करो। कुछ लोग कह रहे हैं कि बाहर जाते हैं तो होटल में खाना पड़ता है।

चलो एक बात बता दूं कि बाहर जाओ तो क्यों होटल का खाना खाना पड़े? एक सेठ की पत्नी का स्वर्गवास हो गया। उसने विचार किया था मैं दूसरी शादी नहीं करूंगा किंतु उसका बालक एक-दो महीने का था। सेठ जी उसको संभालते-संभालते परेशान हो गए, हैरान हो गए और पड़ोस वाले और परिवार वाले बार-बार आग्रह करने लगे तो भी सेठ ने कहा, 'नहीं, मैं दूसरी शादी नहीं करूंगा। मेरी पहली पत्नी ने कहा है कि आप दूसरी शादी मत करना, नहीं तो वह मेरे बच्चे के लिए अभिशाप हो जाएगी।' लोगों ने कहा कि सारी औरतें एक समान नहीं होती हैं। अच्छे से अच्छी औरत ढूंढ़कर शादी करो। अच्छी औरत मिल गई और उसने शादी कर ली। बात पहले ही बता दी कि ऐसी-ऐसी बात है तो ध्यान रखना। उस औरत ने कहा कि 'आप फिक्र मत करो। आप कोई चिंता, विचार मत करो।' उसने बच्चे की अच्छे से देखभाल की। उस बच्चे को कभी अहसास नहीं होने दिया। बड़े होने पर भी उसको मालूम नहीं पड़ने दिया कि 'मेरी मां सौतेली है, मेरी सगी मां नहीं है।' और उसको बहुत अच्छी तरह से संभाला।

शादी को 15-20 दिन निकले और वह कहने लगी कि 'क्या बात है, मुझे तो घर में कंटाला लगता है।' सेठ जी ने पूछा कि कंटाला क्यों लगता है? उसने कहा, 'कंटाला नहीं लगे तो और क्या लगे। मुझे समझ में ही नहीं आ रहा है कि यह घर है या क्या है?' पूछा कि क्यों, तुमको क्या लग रहा है? यह घर ही तो है। उसने कहा कि 'इतने दिन हो गए, कोई मेहमान नहीं आए, कोई अतिथि नहीं आए। वह घर घर क्या, जिस घर में अतिथि नहीं आवे।' सेठ ने कहा कि लोग तो बहुत आते हैं दुकान पर लेकिन मैंने तो जान-बूझकर सबको बाईपास कर दिया। दुकान में मेहमान आते हैं, व्यापारी आते हैं लेकिन मैं सबको होटल में भेज देता हूं। मैं सोचता हूं कि तुम अकेली पर भार पड़ जाएगा। जो दूजवर होती है तो उसका ज्यादा ध्यान रखना पड़ता है। क्यों?

(लोग हंसने लगे।)

हंसी क्यों आ गई? हां तो ऐसा ही होता है कि कहीं नाराज नहीं हो जाए। इसलिए राजी रखना पड़ता है। तो सेठ जी कहते हैं कि तुम्हें तकलीफ नहीं हो

इसलिए घर में लाता नहीं और होटलों में भेज देता हूं। पत्नी कहने लगी कि नहीं, नहीं, एक भी मेहमान होटल में नहीं जाना चाहिए। सारे मेहमान घर में आने चाहिए। उसके बाद लगभग 8-10 महीने के भीतर शायद ही कोई दिन ऐसा गया हो कि घर में कोई मेहमान नहीं आया हो। आने वाले मेहमानों की इतनी खातिरदारी करती, इतनी खातिरदारी करती कि लोग दंग रह जाते। कहते कि 'अरे वाह!' लगभग 8-9 महीने का समय बीता होगा। सेठ जी की पहले वाली जो औरत थी उसका नेचर/आचरण इससे भिन्न था। मेहमान घर में आने पर उसे कंटाला आता था। घर में मेहमान आ जाते तो उसकी कमर दर्द करने लग जाती। कभी कोई वी आई पी मेहमान आ जाते तो सेठ जी को खुशामद करनी पड़नी थी। सेठ जी घर में मेहमानों को लाते नहीं थे। होटल में ही उनको जिमाते थे, घर में नहीं लाते थे। होटल में ही होता था काम।

एक बार सेठ जी को कुछ दिनों के लिए, पांच-सात दिनों के लिए उगाई (वसूली) पर जाना था। उन्होंने पत्नी से कहा कि तुम सात दिन के लिए टिफिन तैयार कर देना। उसने कहा कि आप निश्चिंत रहिए, सब तैयार कर दूंगी। जाने का समय हुआ, गाड़ी वगैरह सब तैयार हो गई, अन्य सब तैयारी कर दी पर खाने का टिफिन नहीं रखा। सेठ जी को लगा कि टिफिन रखा हुआ है। सेठ जी चले गए और सात दिन का दौरा करके लौटे और लौटने के बाद कहा कि 'अरे! तुम्हारा टिफिन तो मैंने खोलकर देखा ही नहीं। तुम पहले उसको खोलो, उसमें पड़ा-पड़ा सामान खराब तो नहीं हो गया? उसमें फूलन तो नहीं आ गई, उसमें गंध तो नहीं आ गई। पहले उसको बाहर निकालो।' पत्नी ने कहा क्या भूखे ही रहे? सेठ ने कहा कि टिफिन खोलने की फुरसत ही नहीं मिली, मैं टिफिन खोलूं कब? जिस गांव में गया, वहां सब लोग आ जाते कि हमारे घर चलना पड़ेगा, हमारे घर चलना पड़ेगा। तो रोज सबके यहां ही खाना होता था इसलिए मुझे तो टिफिन खोलने का काम ही नहीं पड़ा। तब पत्नी ने कहा कि मैंने अलग से टिफिन भेजा ही नहीं। मुझे पूरा विश्वास था कि आपको टिफिन की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। मैं मेहमानों को भोजन करा रही थी तो मेरे पति यदि उन्हीं घरों में जाएंगे तो टिफिन लेकर क्यों जाएंगे? मैंने तो टिफिन पहले ही भेज दिया यहां से आपके लिए और कहीं भी उसको टिफिन की याद तक नहीं आई कि टिफिन में क्या है?

आपके घर में श्रीमती जी मेहमानों को घर में आने के लिए, भोजन कराने के लिए तैयार हैं या नहीं हैं? फिर देखना कि भोजन होटल में खाना

पड़ेगा, कहीं बाहर खाना पड़ेगा या अवसर ही नहीं आयेगा। मैंने उपाय बता दिया है। उपाय को अमली रूप में लोगे तो होटल में जाना ही नहीं पड़ेगा। आज तो इतनी सारी होटल हो गई हैं, गांव-गांव में होटल मिल जायेंगे। पहले कहां होटल होती थी? घर में मेहमानों को जिमाते थे। आजकल तो लोग होटलों में खुलेआम जा रहे हैं, मजे कर रहे हैं। कैसी भावना हो गई है? हमारे मन में भाव कैसे हैं? घर में आने पर विचारों में फर्क आता है या नहीं आता है? सोचने की बात है कि क्या होता है? आत्मीयता किससे बढ़ती है? वात्सल्य किससे बढ़ता है? होटल में खिलाने से वात्सल्य बढ़ेगा या वहां खिलाने से खर्च बढ़ेगा, होटल में खिलाने से आपस में प्रेम बढ़ेगा या प्रेम घटेगा? होटल में खिलाने से नुकसान है या फायदा है? बोल तो सभी रहे हैं कि नुकसान होगा तो ऐसा करना क्यों? और फिर करेंगे क्या? अब करना तो वही है। यह तो एक संस्कृति बन गई है, अब उसी संस्कृति के अनुसार चलने लग गए हैं। आप लोग सोचें, यह तो आप लोगों का विषय है कि क्या करना है और क्या नहीं करना है? किंतु ऐसा अवश्य है कि

'जैसा खाय अन्न, वैसा रहे मन'

हम जैसी चीज खाएंगे, हमारे पेट में जैसी चीजें जाएंगी, वैसे ही पेट का डाइजेशन बनेगा और वैसे ही पेट की नसें बनेंगी और वैसे ही शरीर की कोशिकाएं बनेंगी और उस प्रकार के संस्कार हमारे भीतर आएंगे। लोग कहते हैं कि मन नहीं लगता, जी नहीं लगता; सबका समाधान एक ही जगह पर है। पहले अपने खाने को, अपने रहने को सही बनावें। खान-पान, रहन-सहन को ठीक कर लो तो ये सारी समस्याएं गायब हो जाएंगी।

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सुवे...

भगवान ने कहा है कि सारा कार्य यतना से होगा तो उसमें कहीं पर भी मन को खराब करने की बात नहीं आएगी। मन चंगा रहेगा, मन दुरुस्त रहेगा, हमारा मन समाधि में रहेगा, मन शांति में रहेगा। ऐसा हमारा लक्ष्य बने।

गुलाब मुनि जी म.सा. के संथारे के आज कितने दिन हो गए? भूल गए क्या? आज 24वां दिन है संथारे का। पुद्गल तो शिथिल होंगे ही। मासखमण करने वाले के पुद्गल भी शिथिल हो जाते हैं, जिसमें ये तो बीच-बीच में कई बार दो-दो, तीन-तीन दिन पानी भी नहीं लेते हैं। चौविहार कर लेते हैं। नहीं मन माने तो नहीं लेना। उनकी रुचि पर निर्भर है, हम तो आग्रह कर देते हैं। पानी ले लिया तो ले लिया। उनकी रुचि हो तो ठीक, उनकी रुचि

नहीं हो तो जैसी उनकी शरीर की साता हो, समाधि हो वह सबसे अच्छी बात है। अपनी समाधि सबसे बड़ी बात होती है। वे बोलते हैं तो चौविहार का पच्चक्खाण करा देते हैं। जब तक नहीं पाला जाता है तो अपने आत्म भावों में रमण करते हैं। संत आग्रह करते रहते हैं और संत उनको स्वाध्याय आदि सुनाते रहते हैं। हम उनसे प्रेरणा लें।

अमित जी सांखला आप बताओ कि क्या गुलाब मुनि जी कभी जाते थे होटल? कभी गए क्या होटलों में? नहीं गए ना होटल में? कभी होटल में जाते ही नहीं थे तो उसी का परिणाम आज देख लो कि अपने खान-पान की सावधानी रखते हुए संथारे में चल रहे हैं। होटलों में जाते रहना आसक्ति का भाव है कि मन हो रहा है। हमारा मन तो होगा ही। हम भीतर में अपने आप में विचार करें। कई लोग कहते हैं कि बच्चे नहीं मानते हैं, बच्चे जिद्द करते हैं। हम क्यों बच्चों को ललक लगाएं? बच्चों को ललक नहीं लगने देंगे तो वे जिद्द नहीं करेंगे। इस तरह हम लक्ष्य रखें, होटल में खाना नहीं खाने का हम लक्ष्य रखें। इतना ही कहते हुए विराम।

04 अक्टूबर, 2019

14

सही दिशा में लगे ये तन-मन

शांति जिन एक मुज विनति...

भारतीय संस्कृति 'अध्यात्म' संस्कृति है। उसमें आत्मा की चर्चा की गई है। धर्म की चर्चा की गई है। आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय बताए गए हैं। आत्मा के स्वरूप की बात भी उसमें बताई गई है और आत्मा, परमात्मा बन सकती है, यह विषय, यह बात भी उसमें स्पष्ट की गई है। पाश्चात्य दर्शन के बारे में कहा जाता है कि वह अर्थ प्रधान है। भोग प्रधान है। वहां भोग को महत्त्व दिया गया है। और भारतीय संस्कृति में योग को महत्त्व दिया गया है। योग के अनेक अर्थ होते हैं। आत्मा से परमात्मा तक पहुंचने में भी योग सहयोगी होता है और चतुर्गति में रुलाने में भी योग की भूमिका होती है। योग यानी मन, वचन, काया। युज् धातु जोड़ने के अर्थ में होती है। आत्मा से जुड़ना और परमात्मा से जोड़ना योग का कार्य होता है, किंतु हम जानते हैं कि किसी भी अच्छी चीज का सदुपयोग के साथ दुरुपयोग भी होता है। चाहे कितनी भी बढ़िया चीज है, उसका दुरुपयोग करने वाला, उसका दुरुपयोग कर लेता है।

मनुष्य जीवन एक महत्त्वपूर्ण जीवन है या यूं कहें कि चार गति में सबसे ऊंचा राजा जीवन कोई है तो मनुष्य जीवन है। इस जीवन को प्राप्त करके भी बहुत लोग इसका दुरुपयोग कर रहे हैं। हम सोच सकते हैं, हम अपने आप में जान रहे हैं कि सदुपयोग करने वाले कितने हैं और दुरुपयोग करने वाले कितने हैं ? जैसे मनुष्य जीवन महत्त्वपूर्ण होते हुए भी आदमी उसके महत्त्व को नहीं जानता है और उसका दुरुपयोग करता है, वैसे ही हम योग को नहीं जानते हैं तो उसका दुरुपयोग करते हैं।

शांतिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए श्रीमद् आनन्दघनजी कहते हैं कि 'कहो मन केम परखाय रे', यानी 'तुमने मन को क्या जाना है?'

शांति की बात कर रहे हो तो मन की परीक्षा करो। मन की परीक्षा करोगे तो फिर शांति का स्परूप तुम्हारे ज्ञान से अलग नहीं रहेगा। तुम अपने आप जान लोगे कि मन बहुत बड़ी, बहुत ऊंची चीज है। अनादि काल से जीव भटकता रहा संसार में। केवल काया का योग उसे मिलता रहा। पांच स्थावर- पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय में भटकते हुए केवल शरीर मिला, केवल शरीर। न वचन मिला, न मन मिला। मनुष्य बने हैं तो मन मिला है, महान् पुण्यवाणी के योग से मिला है। इस मन का उपयोग हमारा कैसा होना चाहिए? होना तो यह चाहिए कि इसका हम भक्ति में उपयोग करें, श्रद्धा में उपयोग करें, आत्मा और परमात्मा से युक्ति जोड़ने में इसका उपयोग करें, क्योंकि काया वाला जीव न आत्मा को जान पाता है न परमात्मा को जान पाता है। जब जाने ही नहीं तो क्या युक्ति जोड़ेगा और क्या संबंध बनाएगा?

मन से हम आत्म तत्त्व का विचार कर सकते हैं, आत्म तत्त्व का बोध कर सकते हैं। बिना मन के ये बोध प्राप्त नहीं हो सकता। ये अपने आप में बड़ी अनमोल चीज हमको मिली है। मिली है या नहीं मिली है? पर हमारे मन का उपयोग हम किस रूप में कर रहे हैं? लड़ाई, झगड़े, विवाद, वितंडा में कर रहे हैं या किसमें कर रहे हैं? ये मन का सदुपयोग है या दुरुपयोग है? छोटी-छोटी बातों को लेकर व्यक्ति आज कितना परेशान हो रहा है, कितना तनाव में जा रहा है? जबकि उससे उसको कुछ भी मतलब नहीं है। हम जैनी बने हैं, हम भारतीय संस्कृति में जी रहे हैं किंतु हमारे पर छाया पाश्चात्य संस्कृति की है। भोगवाद को आज जो बढ़ावा मिल रहा है, किसकी बदौलत मिल रहा है? कौन देने वाला है? जो मन को जीने वाला है, जिसने मन को प्राप्त किया है वह भोगवाद में जा रहा है या बिना मन वाला भोगवाद में जा रहा है? आज जितने अपराध बढ़ रहे हैं, मन वाले के द्वारा बढ़े हैं या बिना मन वाले से? किससे बढ़ रहे हैं अपराध?

(वहां बैठे कुछ लोग जवाब देते हैं कि मन वालों के द्वारा अपराध बढ़ रहे हैं।)

सोचें कि हम मन का कैसा उपयोग कर रहे हैं? मन राम को भी मिला था और मन रावण को भी मिला था। रावण ने मन का उपयोग, मन का प्रयोग किसमें किया और राम ने किसमें उसका उपयोग किया? आज राम की जय-जयकार क्यों बोली जा रही है? और रावण का नाम

सुनने तक के लिए भी व्यक्ति तैयार नहीं होता है। क्या है इसके पीछे कारण? जिन्होंने मन का सही उपयोग किया, सही प्रयोग किया, मन का भली-भांति प्रयोग किया, आत्मा और परमात्मा से संबंध जोड़ने का काम किया; उनको आज याद किया जा रहा है। जिन्होंने भी मन को उत्तम कार्यों में लगाया, दुनिया उनको याद करती है। दुनिया उनको पूजती है। दुनिया किसी व्यक्ति विशेष से लगाव नहीं रखती। हजारों, लाखों, अरबों मनुष्य पैदा होते हैं और मर जाते हैं। खत्म हो जाते हैं, किंतु कुछ ही व्यक्ति, कुछ ही मनुष्य जनता-जनार्दन के द्वारा पूजित होते हैं। लोग उनका स्मरण करते हैं। सुबह उठकर उनका नाम लेते हैं और मन में एक प्रेरणा लेते हैं कि हम भी अपना जीवन जीयें। इसलिए हमें मन की भूमिका की परख करनी चाहिए। हमें समझना चाहिए और मन में यह विचार करना चाहिए कि मैं अपने मन का दुरुपयोग नहीं होने दूंगा। मैं अपने मन का कभी भी गलत कार्यों में प्रयोग नहीं करूंगा। जो मन मुझे मिला है, उसका सही संपादन करूंगा।

एक बहुत बड़े सेठ को एक संतान पैदा हुई। बड़ी पुण्यवान् संतान। पुण्यवान् कहने का अर्थ रूप, लावण्य और सारे अंग एकदम स्वस्थ। सर्वांग सुंदर। सुंदर हाथ, सुंदर पैर, सुंदर चेहरा। नहीं तो किसी के होता है कि चेहरा बहुत सुंदर है किंतु आंख छोटी सी है, चीरमी जैसी। किसी की आंख बड़ी हो गई और चेहरा छोटा हो जाता है। किंतु वह सर्वांग सुंदर था। यह जो सुंदरता मिलती है, वह पुण्य-वानी के योग से मिलती है। उसी पुण्य-वानी के योग से उसको सारा सर्वांग, सुंदर शरीर मिला। वह बड़ा हुआ, यौवन की दहलीज पर पहुंचा। एक घोड़े पर आरूढ़ होकर नगर भ्रमण करने के लिए चला। राजमहल के पास से गुजर रहा था। उधर से गुजरते हुए उस युवक को भरी जवानी में या यौवन में प्रवेश करते हुए, खिलते हुए पुष्प को महारानी ने देखा और उसका मन फिसल गया। तत्काल उसने दासी को प्रेषित किया। वह जाकर उस सेठ के पुत्र से धीरे से बात करती है। उस युवक ने भी उधर देखा। आंखें चार हुईं और वह चला गया।

विषय ऐसी चीज है जो आदमी की आंखों को बंद कर देता है। वह सोच नहीं पाता है कि ध्येय क्या है, उपादेय क्या है? ये कार्य मुझे करना चाहिए या नहीं करना चाहिए? रावण के पास रानियों की कमी नहीं थी किंतु सूर्पनखा द्वारा सीता के वर्णन को सुनकर वह बावला हो गया और उसने

अकृत्य किया। वह महासती सीता को उठाकर ले गया। उठाकर ले जाने के पीछे भाव क्या ये था कि 'सीता की मैं रक्षा करूं?' 'ये जंगल में रहती हैं, इस जंगल में इसकी सुरक्षा नहीं होगी,' उस भावना से ले गया होता तो बात कुछ और ही होती। उसने मन कलुषित किया। मन को संक्लेशित किया। मन में विषय डोल रहा था। उस कारण से वह ले गया। ललितांग कुमार को भी महारानी ने इशारा किया और वह पहुंचा। जो नहीं होना-जाना चाहिए था, वह हो गया। इतने में आवाज आई, 'जय हो, विजय हो, महाराजाधिराज पधार रहे हैं।' महाराज के कोई शारीरिक अड़चन हो गई, इसलिए राजसभा को जल्दी बर्खास्त करके वे राजमहल में आ रहे थे।

महारानी घबराई। ललितांग भी घबराया और कहा कि 'बचाओ!' महारानी ने कहा, 'मैं कैसे बचाऊं? मैं क्या करूं?' थोड़ा तर्क-वितर्क होने लगा। महारानी कहने लगी कि 'मैं हल्ला करूंगी।' ललितांग ने कहा, 'मैं बता दूंगा कि ये सब कैसे हुआ, क्या हुआ?' महारानी ने कहा कि 'जनाब, मैं आपके घर पर नहीं आई, आप मेरे महल में आए हैं। आपकी बात कौन सुनेगा? बात मेरी सुनी जाएगी। मेरे पास कोई बचाने का उपाय नहीं है।' ललितांग ने देखा कि यहां अकड़ने से काम नहीं चलेगा। अब वह याचना करने लगा, दीन बन गया। कैसे-कैसे रोल अदा कराता है, यह विषय। आदमी को कितनी हिम्मत से हरा देता है? मनोबल उसका कितना कमजोर कर देता है?

महारानी ने कहा कि 'ये पाखाना, संडास है, मैं रस्सी से बांधकर इसके नीचे नाले में उतार सकती हूं, वहां संडास में तुम छुपकर रह सकते हो। इसके अलावा यहां दूसरा और कोई उपाय नहीं है। यहां कोई और जगह नहीं है। जहां तुम छुपकर रह सकते हो।' मरता क्या न करता? उसी संडास में रस्सी से बांधकर उसको नीचे लटका दिया गया। महाराज का उदर खराब हो गया था। पेट खराब हो गया था। वे गए संडास में। अब ललितांग का दिल धड़क रहा है कि 'अभी कुछ हो न जाए। अभी कुछ हो न जाए।' हुआ तो कुछ भी नहीं किंतु जो नहीं होना था, वह हो गया। उस नाले से सब मल-मूत्र-अपशिष्ट पदार्थ उसके शरीर के ऊपर से पास हो रहे थे। महारानी ने विचार तो किया कि राजा चले जाएंगे तो फिर हम बाद में रंगरलियां करेंगे किंतु राजा की तबीयत ठीक नहीं होने से राजा फिर वहीं पर रहा और रानी भूली तो ऐसी भूली कि याद ही नहीं रहा।

लगभग नौ महीने का समय निकल गया। वर्षा ऋतु आई। घनघोर वर्षा हुई। उस वर्षा के कारण नीचे तक पानी आया और उसी बीच में नाले में, उसी में से पानी निकलना था और उधर नौ महीने में जिस रस्सी से ललितांग कुमार लटका था, वह रस्सी भी टूट गई। वह उस पानी में गिर गया। सफाईकर्मी ने बाहर निकाला। उसे उठाया और सेठ जी को सूचना दी। सेठ उसे घर ले गया।

मैं इस बात को इसलिए बता रहा हूं कि कैसे आदमी दुरुपयोग करता है अपने शरीर का, अपने जीवन का और अपने मन का। वह बेभान हो जाता है। भान भूल जाता है और नहीं करने योग्य कार्य भी कर लेता है। सेठ उसको घर पर ले गया और बढ़िया डॉक्टरों से, चिकित्सकों से उसका इलाज करवाया। छः महीने लगे इलाज में और फिर से वह तंदुरुस्त हो गया। वैसी ही चेहरे पर लाली आ गई और वैसा ही सौन्दर्य उसके चेहरे पर छलकने लगा। अब वापस घोड़े पर आरूढ़ होकर वह उधर से निकलता है। फिर रानी की आंखें चार होती हैं। रानी इशारा करती है। रानी दासी को भेजती है। अब ललितांग को क्या करना चाहिए? यदि आप उसके परामर्शदाता हों, आप उसके एडवाइजर हों, वह आप से एडवाइज (सलाह) मांगे तो आप उसे क्या राय देंगे?

सभा में बैठे लोग बात का जवाब देते हैं कि वापस वहां नहीं जाना चाहिए।

खाली उसको राय देंगे या अपने मन को भी वैसा बनाएंगे? ये राय केवल दूसरों के लिए है या अपने लिए भी है? जो राय हम ललितांग को देने के लिए तैयार हो रहे हैं, वह केवल ललितांग के लिए ही है या हमारे लिए भी है? कुछ लोग कहेंगे कि नहीं, नहीं, राय हम केवल दूसरों को ही दे सकते हैं। हमारे लिए वह राय नहीं है, हमारे जीवन के लिए वह राय नहीं है। हमारे लिए गिनती कुछ अलग है। हमारे सिद्धांत कुछ अलग हैं और दूसरों को बताए जाने वाले सिद्धांत कुछ अलग हैं। हालत यह होती है कि दूसरों को हम बड़ी सुंदर, अच्छी बातें बताएंगे किंतु अपने जीवन में उन बातों को हम जी कहां पाते हैं? उनको अपने स्वयं के जीवन में नहीं जीते हैं तो वे बातें बड़ी महत्त्वपूर्ण होते हुए भी हमारे लिए उनका महत्व क्या? हमारे लिए महत्त्वपूर्ण तब होंगी जब स्वयं हम जीएं। जीने के बाद कहता है तो वह प्रभावकारी होती है।

मैंने सुना है, पढ़ा है, आप लोगों ने भी सुना होगा कि महात्मा गांधी के पास एक महिला अपने पुत्र को लेकर आई और कहने लगी कि 'महात्मा जी, ये मेरा पुत्र गुड़ बहुत खाता है। आप इसको उपदेश दीजिए कि ये गुड़ खाना कम कर दे या छोड़ दे।' महात्मा जी ने कहा कि 'बहन, एक सप्ताह बाद आना। अभी मैं इसको कुछ कहने की स्थिति में नहीं हूं।' एक सप्ताह बाद वह माता अपनी संतान को, पुत्र को लेकर फिर गई महात्मा जी के पास। महात्मा जी ने उसको समझाया और बड़े तरीके से समझाया। बच्चे ने महात्मा जी की बात को स्वीकार कर लिया। उसने गुड़ खाना छोड़ दिया या कम कर दिया, जो भी समझ लीजिए। यह सब देखकर उस बहन ने महात्मा जी से नया प्रश्न कर दिया कि 'महात्मा जी, यही बात उसको समझानी थी तो आप उसी दिन उसको समझा सकते थे। आपने उसी दिन इस बात को नहीं समझाया और कहा कि सात दिन बाद में आना। सात दिन बाद मैं तो आ गई किंतु मेरे मन में प्रश्न आ गया कि इस बात को आपने उसी दिन क्यों नहीं समझाया? आप उसी दिन इस बात को समझा सकते थे?'

महात्मा जी ने कहा कि 'बहन बात यह है कि मुझे भी गुड़ बहुत प्रिय है। मेरा खाना भी गुड़ के बिना उठता नहीं है। जिसमें मैं इतना आसक्त हूं, जो मेरे खाने की रुचि का विषय है, मैं उसको छोड़ने के लिए कहूंगा तो मेरी बात को कोई कैसे स्वीकार करेगा? मेरा मन इतना स्ट्रॉन्ग नहीं हो पाएगा। मैं कहूंगा जरूर किंतु मेरा मन नहीं मानेगा। मेरा मन मुझे धिक्कारने लगेगा। मेरा स्वयं का मन कहेगा कि यह उपदेश तुम दे रहे हो, पहले स्वयं देखो कि उपदेश देने के योग्य हो या नहीं? दूसरों को उपदेश देने की कुशलता है या नहीं है? तुम स्वयं क्या कर रहे हो? अगर मैं उस दिन उसको समझाता तो मेरी आवाज में वह बुलंदी नहीं होती। इसलिए मैंने पहले गुड़ को छोड़ने का अभ्यास किया। मैंने गुड़ छोड़कर अपने मन को समझाया इसलिए मैंने सात दिन का समय लिया और अब जब मैंने गुड़ छोड़ दिया है तो उसको भी आसानी से समझा सका और इसने भी मेरी बात को मान लिया।'

हमारे तीर्थंकर पहले जीते हैं उसके बाद उपदेश देते हैं। साधुओं को भी पहले स्वयं जीने का अभ्यास करना चाहिए और जीने के साथ ही अपने मन को पवित्र रखते हुए उपदेश देना चाहिए। ललितांग की बात पर आपने

परामर्श दे दिया कि उसे वापस नहीं जाना चाहिए। यह परामर्श हमें हमारे लिए भी समझना चाहिए।

एक प्रश्न पूछ लेता हूं बीच में ही। साधुओं के प्रति आपके भाव कैसे हैं? श्रद्धा के भाव हैं। बहुत अच्छी बात है। आपके गांव का कोई भाई या बहिन दीक्षा लेना चाहे उसके लिए वह आपसे राय ले तो आप क्या राय देंगे? अच्छा मार्ग है। दीक्षा लो। बहुत उत्तम बात है। आपका उत्तर श्रावकत्व के अनुरूप है। मान लो आपकी संतान दीक्षा लेने को तैयार हो तो उसे आप क्या राय देंगे ? सोच में पड़ गये? क्या जवाब दें! क्या कहें? बस यहीं आकर हमारे में न्याय समान नहीं रह पाता। अपनी संतान को शायद कहेंगे कि जल्दी नहीं करनी चाहिए। माता-पिता का मन रखना चाहिए। भगवान महावीर ने भी माता-पिता की बात मानी थी, भाई की बात मानी थी। वैसे ही तुमको सोचना चाहिए। आप यह भी कह सकते हैं कि इसमें हमारा कोई अंतराय नहीं है। हम उसमें कोई अंतराय नहीं देने वाले हैं, किंतु केवल इतना ही कहना है कोई भी काम समय के साथ होना चाहिए। जैसे ललितांग को पुनः रानी के पास नहीं जाना चाहिए। यह जो आप लोगों ने कहा वैसे ही अन्य लोग भी कहेंगे कि उसे नहीं जाना चाहिए, उसे इनकार करना चाहिए। उसमें यदि रंच मात्र भी विवेक होगा, थोड़ा भी विवेक होगा तो वह हरगिज नहीं जाएगा। थोड़ी सी भी समझ होगी तो उसे हरगिज नहीं जाना चाहिए और नासमझ के लिए क्या कहा जाए? नासमझ के लिए कोई उपदेश है ही नहीं।

समझदार के लिए उपदेश है। जो नहीं समझे उसको क्या उपदेश देना? इसलिए उपदेश समझदार के लिए होता है। जो समझने के लिए तैयार होता है, उसको उपदेश देने की बात होती है और जो ये विचार कर ले कि मुझे तो कुछ सुनना ही नहीं है, मुझे कुछ समझना ही नहीं है। मैंने जो धारा है, जो सोचा है, वही करूंगा। उसको क्या उपदेश देंगे? उसको क्या समझाना है? क्योंकि उसने अपनी खिड़कियां बंद कर दी हैं, उसने अपने दरवाजे बंद कर लिए हैं कि मुझे और कुछ भी सुनना नहीं है, मुझे कुछ भी समझना नहीं है। मैंने जो सुन लिया, मैंने जो समझ लिया, जो मान लिया, वही पर्याप्त है।

हम कहते हैं– उसको समझना चाहिए। ललितांग को रानी के पास वापस नहीं जाना चाहिए। आपका कहना एकदम ठीक है। आपकी संतान

जो दीक्षा लेना चाहती है वह यदि कहे जब आप ललितांग को जाने को मना कर रहे हो तो मुझे क्या सुझाव देंगे? जैसे ललितांग 9 महीने तक संडास में लटकता रहा, क्या मैं भी माता के गर्भ में वैसे ही लटकता रहूं? जैसे ललितांग की हालत हुई, वैसी ही मेरी हालत हो? ललितांग एक सेठ का लड़का है, वैसे ही मैं संसारी जीव हूं, जो ललितांग के समान है। रानी विषय का पर्याय है, उसको विषय रूप में समझा जाए। रानी की दासी, कुमति का रूप है और राजा यमराज है। विषय वासना में जो जीव उलझ गया संसार में, उसे जब यमराज सामने आने लगते हैं और जब मालूम पड़े कि यमराज आ रहा है तो वह कांपने लग जाता है। बचने का उपाय सोचता है। क्या बचाव हो सकता है? नहीं। ललितांग को संडास में छिपाया गया वैसे जीव माता की कोठरी में, माता के गर्भ में छिपने चला जाता है, जैसे मल-मूत्र उसके ऊपर से निकला, वैसे ही माता के गर्भ में, माता का मल-मूत्र उसके ऊपर से निकलता है। उससे वह गंदा होता है। माता जो खाती है उसका रस, उसको खाने के लिए मिलता है, उसी का रस उसे मिलता है।

यह जिंदगी मैंने इस प्रकार से प्राप्त की है। आप चाहते हो कि मैं पुनः-पुनः जन्म लूं, पुनः-पुनः माता के गर्भ में जन्म धारण करूं? विषय भोग यदि मैंने भोग किए तो विषय भोग का परिणाम यह संसार होगा और इस प्रकार माता के गर्भ में जन्म लूंगा। बार-बार जन्म लेकर वे ही विषय भोग सामने आयेंगे और 'पुनरपि जन्मं, पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।' मैं पुनः-पुनः जन्म-मरण करूं, पुनः जन्म लूं और मर जाऊं? यह जन्म-मरण के झटके सहन करता रहूं? क्या यह अच्छी बात होगी? अब आप क्या जवाब देंगे? यह तो कह नहीं सकते हैं कि हां, पुनः-पुनः जन्म-मरण होना चाहिए। ये सब होते रहना चाहिए।

यही बात आचार्य सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं। ऐसा ही उपदेश गुरु भगवन् फरमाते हैं। मैं समझ पाया, नहीं तो मैं भी अज्ञान में भटक रहा था। मैं भी नादान था, मैं भी विषय वासना के चक्कर में पड़ा हुआ था किंतु गुरु भगवंतों ने मुझे ये पथ दिखलाया है। उन्होंने अक्षय सुख का मार्ग दिया है। उन्होंने लोकोत्तर-अलोकोत्तर का ज्ञान दिया है। उन्होंने मेरे भीतर दिव्य ज्योति जगा दी है। अब आप ही बताओ, क्या इस दीप को बुझा दूं? क्या मैं अक्षय सुख को ठोकर मार दूं? क्या मेरी भुजाओं ने जो बल पाया है,

उसको मैं संसार के भोगों में विषाक्त कर दूं। जैसी हालत ललितांग की हुई, मेरी दशा भी वैसी ही हो? अब बोलो, आप क्या कहना चाहेंगे? ये गुरु के चरण मिले हैं। इन चरणों के द्वारा आप भी अपने जीवन को धन्य बना लें। आपको भी समझने की आवश्यकता है, आप समझें। सच्चे सुख की राह पर आगे बढ़ें।

सुख का मार्ग यही है। आप यदि सुख प्राप्त करना चाहते हो, अपना कल्याण करना चाहते हो तो आप भी इसी मार्ग का आचरण करें। इसे धारण करके कल्याण पथ पर चलें। आत्म सुख का आप विचार करो। इंद्रिय सुख के मार्ग पर चलने से कभी भी जीव शांति पाता नहीं है। जीव कभी भी समाधि को प्राप्त हुआ नहीं है। समाधि को प्राप्त करना है तो संयमी मार्ग से ही प्राप्त कर पाएगा। संयम से आत्म-शौर्य जागृत हो जाता है तो वह अपने कर्मों को तोड़ने में, अपने कर्मों को काटने में प्रखर हो जाता है। वह अपने कर्मों को काटकर अपने भीतर आत्म-शांति, आत्म-समाधि को प्राप्त करने में समर्थ हो पाता है। जैसे बिना अंक के शून्य की कीमत नहीं होती है, वैसे ही बिना वैराग्य, बिना सम्यक्त्व के तप-जप-नियम कोई काम नहीं आते हैं।

बन्धुओ! जब तक हमारे भीतर समझ नहीं है, सही दिशा नहीं है, तब तक आदमी चलता रहता है, वह भटकने वाला कहलाता है। वह भटकता है। मंजिल को निश्चित करके जो चलता है, उसका गमन ही गमन होता है। वही सही दिशा में चलने वाला होता है। इसलिए आप विचार करें। थोड़ी देर के लिए आप अपने मन में शांति से सोचें कि इस दुनिया में कौन किसका है? कौन तुम्हारा है, कौन पराया है? आज तुम्हारी देह सुंदर है, तुम्हारी यौवन अवस्था है, तुम्हारे भीतर ताकत है, तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। कल को इस शरीर की दयनीय दशा बन गई तो शरीर का उस समय इलाज करवाने वाले करा देंगे, पैसे खर्च करने वाले पैसे खर्च कर देंगे किंतु क्या पैसा खर्च करने से स्वास्थ्य मिल जाएगा? तुम स्वस्थ हो जाओगे? यह मत सोचना कि पैसा है तो सब कुछ हो जाएगा। कोई जरूरी नहीं है कि पैसा होने पर भी इलाज हो जाए। गंभीर बीमारी आ जाए तो आज भी हम देखते हैं कि बहुत से लोग बीमारी से आक्रांत होकर त्राहि माम्-त्राहि माम् करते हुए यहां से प्रस्थान कर जाते हैं। यदि ज्यादा उपदेश हमारी समझ में न आ पाए तो कम से कम इतना अवश्य सोचें कि हमें यह जीवन मिला है, हमें

यह मन मिला है, हमें यह योग मिला है तो संसार के भोग के लिए मिला है या आत्मा से परमात्मा तक यात्रा करने के लिए? आत्मा से परमात्मा का संबंध जोड़ने के लिए या संसार में भटकने के लिए मिला है? यह हमें विचार करना चाहिए।

अभी महासती जी ने जैसा कहा कि एक मुनि ने खीर उकरड़ी पर डाल दी। बहुत से भाई एकदम विचार करने लगे, आपने ऐसा कैसे कर दिया? वह तो एक रूपक है। यह तो एक समझाने की बात है। हमें उस रूपक के माध्यम से समझना चाहिए। हम विचार करें कि मुनि का उखरड़ी पर खीर डालना उचित नहीं लगा, वैसे ही हमारे को हमारे जीव को भोगों में डालना और संसार के चतुर्गति में उड़ेलना क्या अच्छा हो सकता है? क्या उसको सही कहा जा सकता है?

आचार्य पूज्य गुरुदेव संयम जीवन के लिए निरंतर सतर्क रहने वाले, बंबई जैसे शहर में पहुंचे। वहां पर भी जिन क्षेत्रों में संयम की आराधना दुर्भर थी, वहां गए और निकल गए। वहां पर ज्यादा रुके नहीं। जहां-जहां संयमी जीवन की आराधना संभव थी, उन्हीं क्षेत्रों में रुके। माटुंगा उनमें से एक था। वहां के लोगों ने आग्रह किया तो माटुंगा में आचार्य श्री पधारे। साधु के लिए दो चीजें खास चाहिए। एक गोचरी-पानी की सुविधा और दूसरी परठने की सुविधा। उस समय तक संतों को बाहर जाने का स्थान मिलता था। बाहर जाने के स्थान की खोज किया करते थे। आज वह सुविधा नहीं है या कम है। आज भी वह सुविधा होती है तो वैसा सोचा जाता है, किंतु वैसी सुविधा नहीं होने पर परठने के स्थान की सुविधा देखी जाती है, क्योंकि जैन मुनि का बहुत ऊंचा विचार होता है। ऐसा नहीं कि इधर-उधर गंदगी बिखेर दें। यह कभी भी उसके द्वारा नहीं होना चाहिए।

माटुंगा में गुरुदेव पधारे और पंचमी के लिए गए। एक दिन, दो दिन ढूंढ़ा तो स्थान इतना मिल गया कि 50 साधु यदि हों तो उनको बाहर जाने की, परठने की सुविधा हो जाए। बाहर पंचमी समिति के लिए सुविधामय स्थान की बात जब गुरुदेव ने व्याख्यान में फरमाई तो माटुंगा के प्रमुख लोग, जो अग्रणी श्रावक थे, वे कहने लगे कि म.सा. हम भी उस जगह को देख सकते हैं? ताकि हमारे भाई और हम पौषध, संवर आदि करें तो उस जगह का उपयोग कर सकेंगे। गुरुदेव ने कहा, 'भाई आपको किसने रोका है? देखना

है तो आराम से देखो। संत जब पंचमी के लिए जाते हैं तो आप लोग उनके साथ दया पाल सकते हो।'

उन्होंने देखा। 5-7 भाई साथ में गए। देखने के बाद उन्होंने गुरुदेव से कहा कि 'हम इतने वर्षों से रह रहे हैं, हमें इस जगह का पता नहीं था।' आचार्य श्री ने फरमाया कि जिसको आवश्यकता होगी वह उसको ढूंढ़ेगा। आपको आवश्यकता ही नहीं होगी तो ढूंढ़ेंगे नहीं, जब आवश्यकता होगी तब ढूंढ़ेंगे। जरूरत ही नहीं है तो खोज क्यों करेंगे? आपको शौच आदि घरों में जाना होता है तो बाहर जाने की जगह क्यों ढूंढ़ेंगे? केवल इसी की बात नहीं है। किसी अन्य कार्य के लिए भी जब किसी बात की आवश्यकता होती है, जरूरत लगती है तब उस चीज की खोज होती हैं। आपको जब जरूरत नहीं होती है तो क्यों खोज करेंगे? मेरे कहने का आशय है कि यह संयमी जीवन जो हमें मिला है, वह कोहनूर से कम नहीं है। कोहनूर का फिर भी मूल्य आंका जा सकता है किंतु संयमी जीवन का मूल्य नहीं आंका जा सकता। कई कोहनूर भी संयम के सामने फीके होते हैं। श्रावक जीवन के सामने भी सब फीके हैं।

हमें विचार करना चाहिए। साधुओं को साधु के हिसाब से विचार करना चाहिए, श्रावकों को श्रावक के हिसाब से विचार करना चाहिए कि जो अनमोल अवसर हमें प्राप्त हुआ है, उसका उपयोग हम कैसे करें? हम यदि उसका उपयोग कर रहे हैं तो वह सही है या दूसरी दिशा में उपयोग करना चाहिए? यह विचार, यह चिंतन अवश्यमेव हमारे भीतर कौंधना चाहिए। हमें इस प्रकार से विचार करना चाहिए कि हम सही दिशा में अपने आपको लगाएं। यदि हम सही दिशा में नहीं जा पा रहे हैं तो हम अपने जीवन को, मनुष्य जन्म को, मन, वचन, काया को सही दिशा में नहीं लगा पा रहे हैं। हमें उसको सही दिशा में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

संथारा अपने आप में गतिमान है। जोधपुर वाले अपना गौरव गा रहे हैं। हमारे संघ संरक्षक ने संथारा-संलेखना लिया, दीक्षा ली किंतु जैसा उमंग और उत्साह इस संथारे के प्रति होना चाहिए, वह उल्लास कम देखने में आ रहा है। जोधपुर में कितने लोगों की 5-5 सामायिक होनी चाहिए रोज? बोलो भाई? कितनी सामायिक होनी चाहिए? जब तक संथारा चल रहा है तब तक प्रतिदिन 5 सामायिक करना। जो करना चाहते हैं, वे खड़े हो जाएं।

बहनें भी तैयार हो जाएं। सोचने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। आपके नगर की शोभा है। आपके ही नगर का विकास है इसमें। महत्त्व किसको देना है? संथारा दस बार होगा क्या? जबरदस्ती की बात नहीं है। किसी के साथ जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए। मन से हो तो करना है। मन से करने की ही बात है। जिसका मन होगा वही करेगा। यह तो अपने आपमें गौरव करने की बात है। हमें अपने आपमें समग्र गौरव प्राप्त करना है। (अनेक भाई-बहन खड़े हो प्रतिज्ञा लेते हैं)

05 अक्टूबर, 2019